# सामान्य - शिक्षा

[GENERAL EDUCATION]

लेखक

डा० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०

व

एम० एल० मूनावाला

गयाप्रसाद एण्ड सन्स : आगरा

गयाप्रसाद एण्ड सन्स : आगरा

प्रकाशन-विभाग : सिटी स्टेशन रोड, आगरा
फून २७२५

विक्रय-विभाग : हॉस्पीटल रोड, आगरा
फून ३१५३

मुद्रण-विभाग : बाँके विलास, आगरा
फून २७२५

प्रमुख-विक्री-केन्द्र : लॉयल बुक डिपो, गवालियर
फून ३

: पॉपूलर बुक डिपो, जयपुर
फून ४४३४

: कैलाश पुस्तक सदन,
*हमीदिया रोड, भोपाल*

: ऑरियन्टल पब्लिशर्स,
४०७८ परेड, कानपुर

मूल्य ६)

प्रथम संस्करण : जुलाई १९६०

जगदीश प्रसाद, एम० ए० द्वारा एज्यूकेशनल प्रेस; आगरा से मुद्रित

# भूमिका

सामान्य शिक्षा नवीन बी० ए० परीक्षा के पाठ्य-क्रम में नया विषय है। अभी अध्यापकों और विद्यार्थियों के मन में इसकी रूप रेखा भी नहीं बनी है। हमने पाठ्य-क्रम को सामने रखकर ठीक उसके अनुसार इस पुस्तक का निर्माण किया है और पाठ्य-क्रम भी प्रकाशक ने इसमें छाप दिया है। इस विषय पर किस प्रकार के प्रश्न आने चाहिये, उनकी सूची भी हमने दी है। गत दो वर्षों के प्रश्नपत्र भी दे दिये गये हैं। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

इस युग में ज्ञान का विस्तार इतना बढ़ गया है कि केवल साहित्यादि का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर कोई व्यक्ति शिक्षित नहीं कहला सकता और यही बात केवल विज्ञान की शिक्षा के विषय में कही जा सकती है। अतः यह आवश्यक समझा गया है कि ापा आदि पढ़ने वालों को विज्ञान की भी मुख्य-मुख्य बातों का ज्ञान हो और विज्ञान ने वाले भी साहित्य आदि से अपरिचित न हों। अर्थात् प्रत्येक विद्यार्थी की शिक्षा ासम्भव सर्वाङ्ग सुन्दर हो। इसको दृष्टि में रखकर ही विश्वविद्यालय ने सामान्य शिक्षा का यह पाठ्यक्रम बनाया है और फिर इसको लक्ष्य में रखकर यह पुस्तक लिखी गई है।

इसके पूर्व भाग में मानव सभ्यता के विकास की रूप रेखा दी गई है और दूसरे में विज्ञान के विकास का संक्षिप्त तथा सुबोध वृत्तान्त है। इसमें केवल यह बतलाया है कि इस समय विज्ञान कितना उन्नत हो गया है और हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसने किस प्रकार प्रवेश किया है।

यह पुस्तक तीन-वर्षीय डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष के (1st year of the Three Year Degree Course) के विद्यार्थियों के लिए तो मुख्यतः है ही परन्तु अन्य पाठकों के लिये भी यह उपयोगी है।


मथुरालाल शर्मा

एम० एफ० सूनावाला

# SYLLABUS
## GENERAL EDUCATION
(1st year of Three Years Degree Course)

There will be one paper carrying 100 marks. The paper will be divided in to two sections—Natural Sciences and Social Sciences as given below :—

NATURAL SCIENCES :—

1. Evolution of the Earth.
2. The exterior and interior of the Earth.
3. Work, energy and power.
4. Matter.
5. Atomic nuclei and atomic-energy.
6. Building of molecules.
7. Uniqueness of carbon
8. Characteristics of living organism.
9. Structure of the cell.
10. Nutrition.
11. Plant and animal metabolism.
12. Reproduction.

SOCIAL SCIENCES :—

1. History of Social Evolution :—
   (a) Early processes. Primitive societies. Origins of social institutions, principal factors in social growth. Role of Technology.
   (b) Development of civilisation and culture. Salient features of Ancient and Mediaeval Civilisations ( e. g. the River-Valley Civilisations, Ancient Chinese, Greco Roman, Arab and Mediaeval European Civilisations ).
   (c) Patterns of economic organisation (Pre-industrial).
   (d) Major Political ideas.
   (e) Religion & Philosophy; outlines of Hinduism, Buddhism, Jainism, Christianity and Islam—their correlation—the fundamental unity of basic princi. ples of religions; Vedanta and Sankhaya.

(f) Principles of literature (Poetry and Prose) with suitable examples and universally accepted principles of literary appreciation.

2. Heritage of India :—

(a) Indus Valley Civilisation and the coming of the Aryans—Vedic age—Synthesis of Aryan and pre-Aryan cultures—Caste and social institutions, Buddhism and Jainism—Social and Cultural significance.

(b) Classical Indian Civilisation.

(i) Government and Society.

(ii) Intellectual and Cultural attainments.

(iii) Cultural Relations with foreign countries.

(c) The Turkish conquest—The impact of Islam.

(d) Government and society in Mediaeval India.

(e) Growth of a composite Indian culture.

(f) Disintegration of the Mughal Empire and the British conquest of India—Factors and processes.

(g) British Indian Administration.

(h) Social and Religious Movements.

(i) National Movement ( 1857-1947).

# विषय सूची

## भाग १

## समाज विज्ञान १–१९५

### अध्याय १

#### सामाजिक विकास का इतिहास

पृथ्वी की उत्पत्ति; सृष्टि क्रम; आदि मानव जीवन; कुलोत्पत्ति; मातृ प्रधान कुल; पितृ प्रधान कुल; विवाह संस्था; व्यवसाय विकास; सामाजिक विकास; समाज और राष्ट्र । १–८

### अध्याय २

#### चीन की प्राचीन सभ्यता

आदि सभ्यतायें; चीन की प्राचीनता; प्राचीन राजवंश; महाराज शीवांगटी; लिपि और रेशम; कोनफ्यूसियस; चीन यूनान सम्पर्क; कब्रों में पाषाण चित्र । ९–१४

### अध्याय ३

#### प्राचीन मिश्र की सभ्यता

इतिहास के साधन; नील नदी, कृषि आदि; लिपि और कागज; तांबा और पत्थर का उपयोग; विशाल पिरामिड; शव रक्षा; विलास की वस्तुयें और कलायें; मूर्तिकला; देव मन्दिर और राज मन्दिर; सुख सामग्री; प्राचीन धर्म; अपने होतेय के धार्मिक सुधार; इकत्तीस राजवंश; फेरोह व पैरामिड । १५–२९

### अध्याय ४

#### बेबोलोनियां

अनेक राजवंश; लिपि विकास; ज्योतिष विज्ञान; मूर्तिकला; भाषा और साहित्य आदि; धर्म और समाज व्यवस्था; पुजारी पुरोहित; शासन की झांकी । ३०–३६

### अध्याय ५

#### अरब की संस्कृति

छोटे-छोटे राज्य; विदेशों से सम्पर्क; पैगम्बर मोहम्मद; खलीफों द्वारा राज्य विस्तार; खलीफा हारूं-अर-रशीद ३७–४१

अध्याय ६

ईरान, यूनान आदि की संस्कृति

प्राचीन ईरान; रोम के साथ संघर्ष; योरोप में सभ्यता का प्रवेश; क्रीट की सभ्यता; फिनिशियन सभ्यता।

यूनान की सभ्यता

आर्यों का प्रवेश; शासन और कानून; नगर राज्य; निरंकुश शासन ऐथीनियाँ और स्पार्टा का संघर्ष; सिकन्दर महान; उसके साम्राज्य का अन्त; महाकवि होमर; एकता के सूत्र; काव्य की उन्नति; यूनानियों का विस्तार; पेरीक्लीज के कार्य; दास प्रथा; सुकरात आदि विद्वान्; यूनानी संस्कृति का विस्तार। ४२–५५

अध्याय ७

रोम की संस्कृति

रोम नगर; गणराज्य; आमोद प्रमोद; धार्मिक विचार; दास और मजदूर; रोम की संसार को देन। ५६–५८

अध्याय ८

मध्यकालीन यूरोपीय सभ्यता

मध्यकालीन प्रवृत्तियाँ; चर्च का इतिहास; धार्मिक युद्ध; चर्च का उत्कर्ष और अन्त; नगरों का विकास और वैभव; जातीयता का विकास; व्यापारिक वृद्धि; मुख्य राजनैतिक विचार। ५९–६५

अध्याय ९

भारतीय संस्कृति

सिन्धु घाटी की सभ्यता; नगरों में व्यवस्थित मार्ग; स्तम्भ, रसोई, नालियाँ आदि; स्नान कुण्ड और सामन्त भवन; शिव प्रतिमायें; देवियों पशु, वृक्षों, घड़ियाल, सर्प व मिश्रित प्रतिमायें; सूर्योपासना; शिवलिंग और येनी पट्ट; धार्मिक नृत्य; सिन्धकाल की परम्परायें; पुरुष व स्त्रियों के वस्त्र; केशविन्यास; दाढ़ी की शैली; स्त्रियों के अलंकार; बटन, दर्पण और काजल; चित्र कला; विविध प्रकार के पात्र; बन्दरों की उत्कृष्ट प्रतिमायें; हाथी और उसके दाँत का उपयोग; सुइयाँ और सिलाई; बैलगाड़ी, रथ और खिलौने; विविध प्रकार के खिलौने; तौलने के बाँट और तुला; शतरंज, चौपड़ और उनकी सारें; ढोल, गुरगुड़ी आदि वाद्य। ६६–७६

अध्याय १०

आर्यों का आगमन और द्रविड़ों का संघर्ष

ऋग वैदिक संस्कृति; विभिन्न व्यवसाय; आर्यों का विस्तार; आर्थिक दशा; विविध विषयों में उन्नति। ७७–८१

अध्याय ११

बौद्ध धर्म व जैन धर्म

महावीर का जन्म; बौद्ध धर्म का प्रचार; जैन धर्म का प्रचार; सामाजिक परिवर्तन; बौद्ध व जैन धर्म की देन। ८२–८६

अध्याय १२

भारतीय सभ्यता का स्वर्णयुग

तत्कालीन शासन प्रणाली; मूलतः एक प्रणाली; राजनीतिक ग्रन्थ; गणराज्य और एकतन्त्र राज्य; तत्कालीन राजनीति के मूल सिद्धान्त; तत्कालीन राजनीति के मूल सिद्धान्तों के अनुसार चन्द्रगुप्त का शासन; उस समय के महकमे; पाटलिपुत्र की नगर पालिका; प्रतिवेदक व्यवस्था; दण्ड व्यवस्था; भूमिकर तथा अन्य कर; यात्रियों के लिए सुख व्यवस्था; सुदर्शन झील; सेना का परिमाण और प्रबन्ध; वमनम् और मध्यकर आदि; देश की समृद्धि; शासन का नैरन्तर्य; कण्व, शुङ्ग राज्य के सिक्के और श्रेणियाँ; गुप्त युग और उसका शासन; प्रान्तों का प्रबन्ध; वाहिनी व्यवस्था; शान्ति और सचरित्र का वायुमण्डल; तत्कालीन समृद्धि और सम्पन्नता; शिष्ट और उच्च जीवन; महाराज हर्ष का राज्य प्रबन्ध; सच्चरित्र के एक सहस्र वर्ष। ८७–१००

अध्याय १३

कला और साहित्य

कुषाण काल की कला; गुप्तकालीन गृह निर्माण और मूर्ति कला; गुप्तकालीन उत्कृष्ट विविध कलायें; कालिदास की काव्य कीर्ति; गणित शास्त्र की उन्नति; चिकित्सा ज्ञान की उन्नति; वैदिक देव देवियां मनुष्यों से दूर थे; ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अन्य देव देवियां; बौद्ध व जैन धर्म में देव व देवियां। १०१–१०७

अध्याय १४

विदेशों में भारतीय संस्कृति।

विदेशों में जाने के मुख्य मार्ग; विदेशों से व्यापार करने के जल मार्ग; गन्धार व सिंहल द्वीप में उपनिवेश; ब्रह्मदेश और पूर्वी द्वीप समूह में

भारतीय संस्कृति; चम्पा तथा अन्य उपनिवेश; उपनिवेशों में संस्कृत भाषा; उपनिवेशों में देव और देवियाँ; उपनिवेशों में महाभारत और रामायण आदि ग्रन्थ; महायान धर्म; मन्दिर तथा प्रतिमायें; पश्चिम और मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति। १०८–११५

## अध्याय १५

### तुर्कों और मुगलों की भारत विजय और इस्लाम का प्रभाव

तुर्कों के आक्रमण; समस्त पंजाब पर मुस्लिम प्रभुत्व; अन्य स्थानों पर आक्रमण; मतों का जाल और खतरे की उपेक्षा; शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण; मुहम्मद तुगलक की तरंगें; मुसलमान वंश; दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न; तैमूर का आक्रमण; विजय नगर राज्य; मुगल साम्राज्य। ११६–१२८

## अध्याय १६

### सलतनत काल की मिश्रित संस्कृति

हिन्दू मुस्लिम संस्कृति; हिन्दू मुस्लिम धर्म; हिन्दू प्रतिमा पूजन; हिन्दू धर्म में क्षोभ व इसकी रक्षा के प्रयत्न; स्वामी रामानन्द; कबीर साहब व उनके सिद्धान्त; गुरु नानक; रहदास, धर्मदास; भाषा का विकास; अमीर खुसरो; अर्बी फारसी का प्रवेश; कबीर साहब और १५ वीं शताब्दी की भाषा; समन्वित कला; पारस्परिक समन्वय के अन्य साहित्यिक प्रयास। १२९–१४०

## अध्याय १७

### मुगलकालीन मिश्रित संस्कृति

अकबर का धर्म; मुगलकालीन साहित्य की देन; अकबर की कला; जहाँगीर और शाहजहाँ की कला; मुगल कला का पतन; चित्र कला।

#### संगीत कला

मुगल और गजल; अकबर का दरबारी संगीत; मुगलों के सम्पर्क का प्रभाव। १४१–१५०

## अध्याय १८

### मुगलों का पतन और अंग्रेजों का राज्य

मुगलों का पतन; मराठों की लूट मार; अंग्रेजों का राज्य-विस्तार; योरोपियन लोगों से सम्पर्क।

सांस्कृतिक चेतना

राजा राममोहन राय; ब्रह्म समाज व अन्य संस्थायें; अंग्रेजों की आशा विफल; राष्ट्रभाषा का विकास; आर्यसमाज; थियोसोफिकल सोसायटी; ऐनीवेसेन्ट का आगमन; ऐनीवेसेण्ट की प्रतिभा और कार्य; हिन्दुओं में आत्माभिमान जागृत क्रिया; ऐनीवेसेन्ट राजनीति में; स्वामी विवेकानन्द का वेदान्त प्रचार व उनकी देन। १५१-१६२

अध्याय १९

राष्ट्रीय संघर्ष और आन्दोलन

कांग्रेस का जन्म; कांग्रेस में उग्रदल का उदय; कांग्रेस के दो दल; सर सैयद अहमद के कार्य; आतंकवाद का उदय; भेदनीति का आरम्भ मुस्लिम लीग की स्थापना; हिन्दू मुसलमानों का मेल; गरम और नरम दल का मेल; महात्मा गांधी और सत्याग्रह; उनका राजनैतिक; नेतृत्व; वर्तमान भारत का निर्माण। १६३-१७२

अध्याय २०

औद्योगिक विकास से पहले आर्थिक संगठन

कृपि जीवन; व्यापारिक जीवन; विदेशों से व्यापार; प्राचीन काल में जहाज; भारत-अरब व्यापार; व्यापार विस्तार; संघ और श्रेणियाँ। १७३-१७९

अध्याय २१

प्रधान राजनैतिक विचार

एकराट्तन्त्र; जनतन्त्र; वर्तमान जनतन्त्र; तानाशाहीतन्त्र; सर्वतन्त्र; साम्यवाद; कम्यूनिजम; फासिजम और नाजिजम; व्यक्तितन्त्र; अराजकतन्त्र। १८०-१८५

अध्याय २२

धर्म और दर्शन

धर्म का उदय; हिन्दू धर्म, वेद और उपनिपद; बौद्ध धर्म; महायान; हीनयान; जैन धर्म; श्वेताम्बर; दिगम्बर; बौद्ध धर्म और जैन धर्म; वर्तमान हिन्दू धर्म; इस्लाम; ईसाई मत। १८६-१९१

अध्याय २३

साहित्य के सिद्धान्त

काव्य शरीर; काव्य की आत्मा। १९२-१९५

---

# भाग २

## सामान्य विज्ञान १–६७

### अध्याय १

ब्रह्मांड में पृथ्वी का स्थान

सागर का भय; सागर यात्रा। १–८

### अध्याय २

पृथ्वी

पृथ्वी की उत्पत्ति; पृथ्वी के धरातल पर क्रियायें; पर्वतों का निर्माण; संतुलन, फूपर्पटीका; भूकम्प; ज्वालामुखी; महाद्वीप व्यवस्था; पृथ्वी का अन्तर्गर्भ। ९–२०

### अध्याय ३

गति, बल, ऊर्जा और शक्ति

जड़ता और बल; गुरुत्वाकर्षण; कार्य और ऊर्जा; ऊर्जा, उसके विभिन्न रूप और उसका संचय; शक्ति; तरंगें; प्रकाश, किरण और वर्णपट। २१–३१

### अध्याय ४

पदार्थ रचना, अणु और परमाणु ३२–४८

### अध्याय ५

मणिभ

विद्युत और मेग्नातीस; मौलिक कण, इलेक्ट्रोन, पोजिट्रोन, प्रोटोन, न्यूटोन; एटम (परमाणु) की रचना; समस्थानीय तत्व; केन्द्रीय ऊर्जा; यूरेनियम का विखंडन; Fusion। ३९–५६

### अध्याय ६

जीवशास्त्र

चिन्ताजनक भविष्य; जीवन के लक्षण; कोष; भूतलीय पौधों का पोषण; पौधों में पुनरुत्पत्ति; प्रकाश संश्लेषण और विपाक बीज; मानव शरीर का पोषण; पाचन और विपाक; पुनरुपत्ति।
प्रश्न भाग १
प्रश्न भाग २
विश्वविद्यालय प्रश्न पत्र १९५९ तथा १९६० ५७–६७

# पहला अध्याय

## सामाजिक विकास का इतिहास

### पृथ्वी की उत्पत्ति

यह निश्चित रूप से कोई नहीं कह सकता कि पृथ्वी कब उत्पन्न हुई। हिब्रू लोग यह मानते थे कि इसकी उत्पत्ति ईसा से ४००४ वर्ष पहले हुई है। विज्ञान वेत्ताओं का मत है कि पृथ्वी का जन्म लगभग दो अरब (२०००,०००,०००) वर्ष पूर्व हुआ होगा। हिन्दू-शास्त्रों में पृथ्वी को अनादि माना जाता है और पृथ्वी की उत्पत्ति लगभग दो अरब वर्ष पूर्व बतलाई जाती है। यहाँ इस विवाद में प्रवेश करना लाभदायक नहीं है। केवल इतना जान लेना काफी है कि पृथ्वी अत्यन्त ही प्राचीन है और इसका उत्पत्ति काल निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता।

### सृष्टि-क्रम

पृथ्वी की रचना भी बड़ा रोचक विषय है। ऐसा माना जाता है कि आदि में प्रकृति तरल और व्याप्त अवस्था में थी। फिर यह घनीभूत होने लगी और इसके कई स्वरूप बनने लगे। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का निर्माण हुआ। उस समय पृथ्वी धधकती हुई विशाल और भयंकर भट्टी दिखाई देती होगी। फिर भाप से बादल बनने लगे और तदुपरान्त पानी बरसने लगा। धधकती हुई प्रचंड अग्नि पर पानी पड़ता था तो अति उत्तुंग भाप उछलती थी। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। कालान्तर में पृथ्वी ठंडी हुई, भाप और वर्षा से समुद्र बने और फिर यहाँ जीव का आविर्भाव होने लगा।

आरम्भ में घोंघे उत्पन्न हुये। इनके अन्दर एक प्रकार का जीव था जिसको घोंघा मछली कह सकते हैं। इसका सिर पुष्प के समान था और शरीर एक सूक्ष्म सा तना। फिर समुद्र में अन्य प्रकार के जीव उत्पन्न होने लगे। इनमें बड़े बड़े समुद्री बिच्छू थे। इनका आकार बड़ा लम्बा चौड़ा था, कोई कोई तो नौ फुट तक लम्बे थे।

फिर करोड़ों वर्ष बाद मछलियों की उत्पत्ति हुई। इनके आँखें और दांत थे और यह तैर सकती थी। यह युग आज से पचास करोड़ वर्ष पहले का होना चाहिये। उसी समय समुद्र में ऐसे जीव उत्पन्न होने लगे जिनके रीढ़ की हड्डी थी। यह प्रायः दो तीन फुट लम्बे होते थे परन्तु कोई-कोई इनमें बीस फुट लम्बे भी थे। इसके पश्चात् उथले पानी में से जल के जीव स्थल पर आने लगे। इन जीवों के अनेक पैर थे। इनमें कई प्रकार के कीड़े, केंकड़े, बिच्छू और ऐसी बड़ी-बड़ी मक्खियाँ थीं जिनके पर उनतीस इंच लम्बे थे। इसी युग में पौधों की उत्पत्ति हुई। यह जीव ऐसे थे जो जल में रहते थे और स्थल पर भी। इन्हीं में पेट के बल चलने वाले जन्तु थे। कछुये, मकर, छिपकली, साँप आदि इसी कोटि के जन्तु थे। इनमें कुछ अत्यन्त विचित्र थे परन्तु इनमें से अनेक प्रकार के जीव कालान्तर में लुप्त हो गये। यह युग आज से लगभग आठ करोड़ वर्ष पूर्व का है। इसी युग में ऐसे वृक्ष उत्पन्न होने लगे जिनसे बीज निकलते थे। फिर अति दीर्घ काल के पश्चात् दूध वाले जन्तु उत्पन्न हुए। ये शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के थे। धीरे-धीरे जन्तुओं में कुछ समझ का विकास होने लगा। तब इनमें घोर संघर्ष हुआ। निर्बल नष्ट हो गये और सबल जीवित रह कर और अधिक विकसित होने लगे।

अब से लगभग छः लाख वर्ष पूर्व एक लम्बा हिम युग आया। यह दीर्घकाल तक रहा। फिर दूसरा हिम युग आया। इसके बाद तीसरा ऐसा ही युग आया और अन्तिम हिम युग आज से लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व आया। इन युगों की सन्धियाँ ऐसी गर्म थीं जिनमें जन्तु जीवित रह सकते थे। विज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि अन्तिम हिम युग में ऐसे जीव उत्पन्न होने लगे जिनका डील-डौल मनुष्य का सा था। विकसित होते-होते ये बिल्कुल मनुष्य जैसे बन गये। यह निश्चित रूप से पता नहीं है कि मानव सृष्टि सबसे पहले कहाँ हुई। हमारे यहाँ ही नहीं एशिया भर में अभी किसी ने इस विषय की स्वतंत्र खोज नहीं की है। परन्तु योरप के विद्वानों ने गहन अध्ययन के बाद यह निश्चय किया है कि लगभग चालीस हजार वर्ष पूर्व फ्रांस और स्पेन के उपयुक्त स्थानों में मनुष्यों की सृष्टि हुई। परन्तु यह सम्भव है कि दूसरे स्थानों में यह सृष्टि इससे पहले हुई हो या बाद में। उस समय मनुष्य बिल्कुल जंगली था। पशु और मनुष्य में प्रत्यक्षतः केवल शारीरिक भेद ही था। सम्भव है कि उसमें कुछ सोचने की शक्ति भी आने लग गई हो।

**आदि मानव जीवन**

आरम्भ में मनुष्य या तो फल पत्ते खाता होगा या पशुओं को मार कर निर्वाह करता होगा। उस समय मनुष्य को शस्त्र बनाना नहीं आता था। इसलिए वह पशुओं का शिकार पत्थर द्वारा करता था। या तो पास आकर वह पशु पर किसी भारी पत्थर

का प्रहार करता था या उसको पत्थर फेंक कर मारता था। शायद उस समय मनुष्य को अग्नि उत्पन्न करना भी नहीं आता था। वह प्राकृतिक गुफाओं में निवास करता था। अपनी रक्षा करने के लिए गुफा के द्वार पर वह भारी पत्थर रख लिया करता होगा और आवश्यकतानुसार वह उसको हटा दिया करता होगा। इस युग को पाषाण युग कहा जाता है। शनैः-शनैः मनुष्य पत्थर के ही औजार बनाने लगा। किसी पत्थर को वह नोकीला और तीखा बना लेता था। किसी में वह छेद करता था और उसमें लकड़ी का डंडा लगा लिया करता था। ऐसे शस्त्रों का उपयोग वह प्रायः शिकार के लिये करता था। परन्तु आत्म-रक्षा या शत्रु पर प्रहार करने के लिये भी इनका उपयोग किया जाता होगा। जिस काल में मनुष्य पत्थरों के औजार बनाने लगा उसको नवीन पाषाण युग कहा जाता है।

### कुलोत्पत्ति

स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध अनादि है। ये दोनों साथ-साथ उत्पन्न हुए है। तभी मानव-सृष्टि हुई है। कोई ऐसे काल की कल्पना नहीं कर सकता जब केवल पुरुष ही पुरुष थे, या स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ थीं। इसलिये हमको यह मानकर चलना पड़ेगा कि पचास हजार वर्ष पूर्व या उससे पहले या पीछे जब मानव का विकास हुआ तो स्त्री और पुरुष दोनों की सृष्टि साथ-साथ हुई। परन्तु उस समय स्त्री पुरुष कोमल नहीं थे। पुरुष पशुओं की भाँति बलवान थे और स्त्रियाँ भी मादा पशुओं की भाँति सशक्त थीं। जैसे मादा पशु अपने बच्चे की रक्षा करता है उसी प्रकार आदि स्त्रियाँ भी अपने बच्चों को संभालती होंगी। परन्तु धीरे-धीरे प्रसव के बाद स्त्रियाँ अपने स्थान पर रहने लगीं और पुरुष उनकी देख रेख करने लगे तथा उनके लिये फल फूल या जानवर मार कर लाने लगे। उस समय एक दो दिन में ही स्त्रियाँ अपने बच्चों को गोद में लेकर चल देती होंगी और बच्चे भी बहुत जल्दी पैदल चलने लगते होंगे। अभी स्त्री-पुरुष घर बना कर साथ-साथ नहीं रहने लगे थे। परन्तु अब उनकी यह प्रवृत्ति होने लगी कि जिनका परस्पर अनुराग था वे किसी एक स्थान पर एकत्र रहें। वहीं अपना खाद्य एक दिन का या दो दिन का रक्खें और वहीं बच्चे की देख रेख करें। इस प्रकार कुल-निर्माण होने लगा।

### मातृ-प्रधान कुल

प्रसव के बाद आरम्भ में एक दो दिन स्त्री अपने स्थान पर रहती होगी। फिर ज्यों-ज्यों इस प्रकार के जीवन में सुख का अनुभव होने लगा तब कुछ अधिक समय तक रहने लगी होगी। अभी पति और पत्नी का सम्बन्ध निश्चित नहीं हो पाया था। इसलिये जिस पुरुष से एक संतान उत्पन्न हुई हो उसी के साथ सम्बन्ध बना रहे यह आवश्यक नहीं था। प्रायः दूसरा पुरुष उस स्त्री से सम्बन्ध जोड़

लेता था और उसको खाने के लिये देता था। फिर तीसरे, चौथे या इससे भी अधिक पुरुषों से उसका सम्बन्ध हो जाया करता होगा। इस प्रकार स्त्री प्रायः सदैव अपने स्थान पर रहने लगी होगी और समय-समय पर कई पुरुष उसके पास आते होंगे। वच्चे अपनी माँ के साथ रहते होंगे। इनके वास्ते भी ये पुरुष ही खाना लाते होंगे। कभी-कभी उनकी माता भी आस पास से ही कोई जानवर मार लाती होगी। इस प्रकार माता और उसके बच्चों का स्थाई परिवार या कुल वन जाता होगा। हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि कालान्तर में अगणित कुल वन गये होंगे। ऐसे कुलों में माता की प्रधानता थी और उसके वच्चे उसके आश्रित थे। स्वाभाविक स्नेह या प्रवृत्ति के कारण वड़े वच्चे माता के लिये जानवर मार कर लाया करते थे। इनमें और इनके पिताओं में कोई स्नेह सम्बन्ध नहीं था। पिता स्वभावतः सन्तान को भूल जाते होंगे। ऐसे कुलों को विद्वान लोग मातृ-प्रधान कुल कहते हैं।

**पितृ-प्रधान कुल**

स्वाभाविक प्रवृत्ति से कोई-कोई स्त्री पुरुष सदा साथ रहने लगे। साथ-साथ ही ये शिकार करते थे और घर वना कर साथ-साथ ही रहते थे। इनके वच्चे भी इन्हीं के साथ रहते थे। सवकी रक्षा का भार धीरे-धीरे पुरुष पर आने लगा। प्रकृति से ही पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक वलवान था। इसीलिये पशुओं से और अपनी जाति के शत्रुओं से वह अपने साथ रहने वाली स्त्री की और उससे उत्पन्न होने वाले वच्चों की रक्षा करता था। कभी-कभी स्त्री और वच्चे अपने निवास-स्थान पर ही टिके रहते थे और पुरुष उनके वास्ते शिकार करके लाता था। इस प्रकार के परिवार में अधिकांश भार पुरुष पर होता था। धीरे-धीरे स्त्री का भार कम होने लगा, पुरुष का वढ़ने लगा। यहाँ तक कि कुल-रक्षा का सारा भार पुरुष पर जा पड़ा और स्त्री अपेक्षाकृत हल्का काम करने लगी। ऐसे कुलों में पुरुष की प्रधानता थी। वही कुल का पालन और संचालन करता था। इसलिये समाज-शास्त्री ऐसे कुलों को पितृ-प्रधान कुल कहते हैं।

**विवाह संस्था**

प्रकृति से ही कोई स्त्री सुन्दर होती थी और कोई कुरूप। स्वभाववश पुरुष सुन्दर स्त्री की ओर अधिक आकर्षित होता था। एवं एक सुन्दर स्त्री को कई पुरुष अपने साथ रखना चाहते थे। इससे आपस में लड़ाई हुआ करती थी। जो अधिक वलवान होता था वह निर्वल और अशक्त लोगों को मार कर या भगा कर उस स्त्री पर अपना एकाधिकार कर लिया करता था। मानव समाज में इस प्रकार की घटनायें रात-दिन हुआ करती थीं और इस विधि से ऐसे कुल वनते जाते थे जहाँ स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध काफी लम्बा हो। अभी ऐसा तो नहीं होने लगा था कि ऐसे सम्बन्ध स्थायी हों और ऐसी प्रथायें वनने लगी हों जिनके अनुसार ऐसे सम्बन्ध का विच्छेद बुरा माना

जाता हो। उस समय मनुष्य इतनी उन्नत अवस्था में नहीं था। परन्तु धीरे-धीरे समाज ने यह अनुभव करना शुरू किया कि लड़ाई करके जो सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित हो गये हैं उनको चलने दिया जावे। यह विवाह संस्था का आरम्भ था। फिर इसका विकास होता गया और सुदीर्घ काल के पश्चात् विवाह प्रथा स्थापित हो गई। जो स्त्री-पुरुष साथ-साथ रहने लगे वे पति-पत्नी कहलाने लगे। परन्तु विवाह कई प्रकार से होते थे। पारस्परिक अनुराग से, लड़ाई से या समझौते से। हिन्दू शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह माने जाते हैं। यह प्राचीन काल की विवाह विधियों के द्योतक हैं।

बच्चों को माता के पास दीर्घ काल तक रहना पड़ता था। वह उनको खिलाती-पिलाती और सँभालती थी। इसलिये उसके प्रति बच्चे प्रेम करने लगे। इसके अतिरिक्त माता का बच्चों पर और बच्चों का माता पर स्वाभाविक प्रेम भी होता ही है। यह सहज प्रवृत्ति पशु-पक्षियों में भी पाई जाती है। इस प्रकार यत्र-तत्र मानव परिवार बसने लगे। इनमें अधिकांश परिवार पितृ-प्रधान थे और कितने ही मातृ-प्रधान भी। ऐसे परिवारों की बस्तियाँ ऐसे जङ्गलों में बसने लगीं जहाँ शिकार बहुत मिलती थी। धीरे-धीरे जङ्गली जानवर कम हो जाते थे। उनको मनुष्य मार कर खा जाते थे और बहुत से भयभीत होकर भाग जाया करते थे। ये बस्तियाँ ऐसे स्थानों पर रहा करती थीं जहाँ जल सुलभ होता था। अनुभव से लोगों ने यह भी समझा कि कई परिवारों का साथ-साथ रहना ठीक है। ऐसी बस्तियाँ जङ्गली पशुओं से आत्म-रक्षा आसानी से कर सकती थीं और बीमार होने पर दूसरों की सहायता मिल सकती थी। बड़े-बड़े जङ्गलों में ऐसे मानव समूह यत्र-तत्र बस गये थे। ये मनुष्यों के आदि गाँव थे। कालान्तर में मनुष्य ने अग्नि का आविष्कार कर लिया। आरम्भ में संयोगवश दो पत्थरों के परस्पर संघर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई होगी। उसके पश्चात् मास पकाने में अग्नि का उपयोग होने लगा। मानव बस्तियों में जलती अग्नि देखकर पशु भागने लगे। इस प्रकार अग्नि आत्म-रक्षा का सुलभ साधन बन गया। आदि काल में सब मनुष्य नग्न रहा करते थे। फिर पशु चर्म से अपने शरीर को ढकने लगे। पशु मांस मानव का भोजन हो गया और चर्म उसका परिधान। अब मनुष्यों ने गुफाओं में रहना छोड़ दिया। वे जहाँ-तहाँ जङ्गलों में पड़ाव डाल कर रहने लगे। परन्तु ऐसे पड़ाव चिरस्थायी नहीं थे। आवश्यकतानुसार एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर पड़ाव डाले जाते थे। तो भी मनुष्यों ने ऐसे पड़ावों में निवास के लिये घर बनाने शुरू किये। प्रसव के समय ऐसे घरों की विशेष आवश्यकता प्रतीत हुआ करती होगी।

### व्यवसाय विकास

आदि मानव शिकार करके जीवन निर्वाह करता था। जब मनुष्य समूह रूप से

बनाने लगे तब भी वे शिकार करते रहे। परन्तु फिर उनको कहीं स्वभावतः जंगली गेहूं मिले। इनके दाने उनको अच्छे लगे। और फिर गेहूं की खेती होने लगी। मानव सभ्यता के क्षेत्र में मनुष्य का यह पहला कदम था। जब तक मनुष्य शिकार करता रहा तब तक वह एक स्थान पर लम्बे अरसे तक नहीं बस सकता था। उसको एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता था। इसलिये न वह स्थायी घर बनाता था और न जम कर एक निश्चित व्यवसाय का अनुसरण कर सकता था। जब गेहूं की खेती का आरम्भ हुआ तो सभ्यता के विभिन्न स्तम्भ स्वतः ही विकसित होने लगे। कृषि व्यवसाय के लिये किसी नदी के तट पर निवास आवश्यक था जहाँ जन-समूह को पर्याप्त जल मिल सकता था। नदी तट की भूमि भी कृषि के लिये उपयुक्त थी। पानी पीने के लिये जो पशु नदी पर आते थे उनका शिकार भी आसानी से हो सकता था। नदी तट पर स्नान और पान के लिये जल सदैव मिल सकता था। इसलिये वहां पर आरम्भ में छोटे-छोटे गांव बनने लगे। नदियों के तट पर कितने ही गांव बस गये। क्रमशः इन गांवों का आकार बढ़ने लगा। इन ग्राम-समूहों में एक दो गांव अच्छे बड़े कस्बे बन गये और एक दो ने साधारण नगर का रूप धारण कर लिया। ऐसे प्रदेश में जो पुरुष बलवान, चतुर और साहसी होता था वह सब गांवों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता था। इस प्रकार की मानव सभ्यतायें एशिया, योरोप और अमेरिका के नदी प्रदेशों में विकसित होने लगीं। चीन में ह्वांगहो और यांगटीसियांग नदी के तटों पर ऐसी बस्तियां बस गईं। भारतवर्ष में पंजाब की नदियों के आस-पास और गंगा-यमुना के मैदानों में आदि आर्य सभ्यता का विकास हुआ। इसी प्रकार ईरान की नदियों ने मानव सभ्यता को जन्म दिया और मिस्र में नील नदी के तट पर एक भव्य सभ्यता विकसित हुई। योरप और अमेरिका में भी बड़ी-बड़ी नदियों के किनारों पर मानव समाज स्थापित हो गया और छोटे-छोटे राज्य बन गये।

### सामाजिक विकास

परिवार निर्माण में स्वाभाविक स्नेह और जीवन की आवश्यकताओं का बहुत बड़ा हाथ था। स्त्री और पुरुष पारस्परिक आकर्षण के प्रभाव से साथ-साथ रहते थे। बच्चों के साथ माता का स्वाभाविक स्नेह था, फिर पितामह में भी यह भावना उत्पन्न होने लगी। इस प्रकार मानव कुल की उत्पत्ति हुई। शिकार में परिवार के सशक्त लोग साथ-साथ रहते थे। कृषि कार्य के लिये मिल कर कार्य करना अनिवार्य था। बच्चे भी माँ या बाप के साथ अपने बूते के अनुसार कार्य कर सकते थे। इस काम में उनके लिये उतना खतरा नहीं था जितना शिकार करते समय था। कृषि-कार्य के साथ-साथ पशु-पालन, हल-निर्माण, क्षेत्र-रक्षा, पशु पक्षियों के निवारण तथा मारण के वास्ते शनैः-शनैः और उपयुक्त अस्त्र और शस्त्रों का निर्माण होने लगा। आरम्भ में ये शस्त्र-

अस्त्र पत्थर के ही बनाये जाते थे, परन्तु आगे चलकर कितने ही हजार वर्षों के बाद मनुष्य इस काम के लिये लोहे, ताँबे और अन्य धातुओं का भी उपयोग करने लगा। तब हर एक गाँव में बढ़ई, लोहार और रस्से बनाने वाले मिलने लगे। ऐसे कार्य करने वालों के अलग वर्ग बसने लगे। गाँव में अधिकांश लोग खेती करते थे। कोई बढ़ई का काम करता था। जिनके पास खेत नहीं थे वे मजदूरी करते थे। इस प्रकार कार्य कौशल और अपनी स्थिति के आधार पर मनुष्य समाज में वर्गों की सृष्टि होने लगी। उस आदि काल में भी इस विकास में कुशलता और निपुणता का बहुत बड़ा हाथ था। जो लोग शिकार करने में चतुर थे वे शिकार करते थे। इनमें कोई तो शिकार पर निर्वाह करते थे और कोई समय मिलने पर पुरानी आदत की प्रेरणा से शिकार किया करते थे। इसी प्रकार कोई खेती करते थे, कोई मजदूरी और कोई बढ़ई और लोहार का काम। एक लम्बा युग बीत जाने पर मनुष्य ने पहिये का आविष्कार किया। सभ्यता के क्षेत्र में यह महत्वपूर्ण कदम था। बैलों से वह जमीन जोतता था, गायें बैल पैदा करती थीं और दूध देती थीं। बैलों को हलों में जोता जाता था। पहिये का आविष्कार होने के बाद गाड़ी बनाने में अधिक समय नहीं लगा। केवल हजार पाँच सौ वर्ष लगे होंगे। तत्कालीन विकास के इतिहास में यह युग अधिक दीर्घ नहीं कहा जा सकता। बैलगाड़ी बन जाने पर मनुष्य की गति पूर्वापेक्षा अधिक तेज हो गई। यात्रा की कठिनाइयाँ कम हो गई। मनुष्य सुख पूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने लगा। आवागमन के इस नये साधन के द्वारा चतुर और बलवान पुरुष कई गाँवों पर धाक और शासन जमाने लगे। परस्पर लड़ाइयों में भी इस साधन का उपयोग होने लगा।

**समाज और राष्ट्र**

जब अनेक मानव परिवार एक स्थान पर बसने लगे और जब नदियों के तट पर इस प्रकार की कितनी ही बस्तियाँ या गाँव बन गये तो यह आवश्यक हो गया कि उनका नियंत्रण किया जावे जिससे सब लोग अपना काम धन्धा भली प्रकार करते रहें, सबका शरीर और सम्पत्ति सुरक्षित रहे और दूसरे लोग गाँव पर अक्रमण करके उसे नष्ट न कर डालें। परिवार पर सबसे बड़े और बलवान पुरुष का शासन होता था। इसी प्रकार सारे गाँव पर भी वहाँ के निवासियों में से जो सबसे अधिक योग्य और शक्तिशाली होता था वह स्वतः ही गाँव का मुखिया बन जाता था और फिर उपरोक्त नियन्त्रण कार्य करने लगता था। इसी प्रकार आरम्भ में दस पाँच गाँवों का एक नियंता और फिर सौ पचास गाँवों का एक नियंता बनने लगा और ज्यों ज्यों सभ्यता उन्नत होती गई और नियन्त्रण और शासन की आवश्यकता को लोग अनुभव करने लगे त्यों-त्यों वह योग्य और बलवान पुरुष का शासन और नियन्त्रण भी मानने लगे और अवसर देखकर शक्तिशाली पुरुष भी अपना आधिपत्य जमाने लगे। इस प्रकार

ज्यों ही मानव समाज का निर्माण हुआ त्यों ही उसने एक छोटे से राज्य का या राष्ट्र का रूप धारण कर लिया। विभिन्न देशों में नदियों के तट पर इस प्रकार के कई राज्य स्थापित हो गये। इनमें परस्पर लड़ाइयाँ हुआ करती थीं और एक राज्य को नष्ट करके दूसरा राज्य स्थापित हो जाया करता था या एक राज्य को दूसरे राज्य में मिला लिया जाता था। इस प्रकार राज्यों का विस्तार बढ़ने लगा और पारस्परिक युद्धों के लिये सेनायें रक्खी जाने लगीं। मिस्र की नील नदी, भारतवर्ष की सिंध और गंगा नदी तथा चीन की ह्वांगहो और यांगटीसिक्यांग नदियों के समाज और राष्ट्र इसी क्रम से उत्पन्न और विकसित हुये थे। वास्तव में हम ऐसे मानव समाज की कल्पना नहीं कर सकते जिस पर राज्य का नियन्त्रण न हो। समाज और राज्य का विकास साथ-साथ ही हुआ है और समय के अनुसार दोनों का ही स्वरूप बदलता रहा है।

---

# दूसरा अध्याय
## चीन की प्राचीन सभ्यता

### आदि सभ्यताएं

प्राचीन और मध्यकाल की सभ्यताओं का विकास प्रायः नदियों की घाटियों में हुआ है। जब मनुष्यों ने खेती करना आरम्भ किया तो सभ्यता का विकास होने लगा। मानव जीवन व्यवस्थित हो गया। समाज में स्थिरता आ गई। राष्ट्रों का निर्माण हो गया। सुख और विलास की वस्तुयें बनने लगीं। अनेक जानवर पाले जाने लगे। विविध प्रकार के भवनों का निर्माण होने लगा। लिपि का आविर्भाव हुआ। फिर ग्रन्थ बनने लगे और साहित्य की सृष्टि होने लगी। पहले की अपेक्षा खाने पीने की चिन्ता कम हो गई। नियत समय पर खेत जोते जाते थे। बीज बोये जाते थे और फसल आती थी। शेष समय खेल-कूद, आनन्द प्रमोद या चिंतन और विचार में व्यतीत होता था। इसलिये लोग सूर्य, चन्द्र, तारे, वायु, जल, समुद्र, नदी, आँधी, तूफान, घोर गर्जन, बिजली की छटा, इन्द्र-धनुष, उन्नत पर्वत शिखर, उल्कापात, ऊषा, ज्वालामुखी आदि पर विचार करने लगे। कहीं-कहीं इनमें से अनेक पदार्थों को देवता माना जाने लगा। जिन घटनाओं का कारण मनुष्य की समझ में नहीं आता था उनके विषय में वह सोचने लगा कि यह किसी अदृश्य शक्ति का कार्य है इसलिये वह वर्षा, वायु आदि प्राकृतिक कार्यों के पीछे और रोग, मृत्यु, टीढ़ी, ओले और अन्य विपत्तियों के पीछे एक दैवी शक्ति की कल्पना करने लगा। इस प्रकार कहीं सूर्य की पूजा होने लगी, कहीं इन्द्र को देवता माना जाने लगा। कहीं भूत प्रेतों की कल्पना हुई। कहीं अनेक प्रकार के देवों की पूजा होने लगी और कहीं सब देवों के ऊपर एक अधिदेव या महादेव का विचार विकसित हुआ। ज्ञान, विचार, रहन-सहन, व्यवसाय, कला और युद्ध-विधि की दृष्टि से संसार के विभिन्न स्थानों में कई संस्कृतियों और सभ्यताओं का विकास हुआ जिनका विवरण अब पृथक-पृथक किया जावेगा।

### चीन की प्राचीनता

चीन देश में ह्वांगहो और यांग्टीसिक्यांग दो बड़ी-बड़ी नदियां हैं जो हमेशा बहती रहती हैं। इनके आस-पास की भूमि अति उपजाऊ है और यहाँ का जलवायु भी अच्छा है। इसलिये इस प्रदेश में ईसा से हजारों वर्ष पूर्व चीन संस्कृति का आविर्भाव और विकास हुआ। इसी प्रकार मिस्र, बेबीलोनिया और भारतवर्ष में भी नदियों के

तट पर ही आदि सभ्यताओं का उद्गम हुआ था। अन्य प्राचीन देशों की भाँति चीन देश में भी कई नगर-राज्य स्थापित हो गये।

कुछ इतिहासकारों की यह धारणा है कि चीन की आदि सभ्यता मिस्र से आई होगी। इस धारणा का कारण यह है कि चीन और मिस्र की लिपि, कब्रें, रथ और समाज व्यवस्था में अनेक आश्चर्यजनक समानतायें हैं। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने से यह पता लगता है कि अति प्राचीन काल में ही नहीं बल्कि आगे चलकर भी चीन और मिस्र में कोई ऐसा सम्पर्क नहीं रहा जिससे सभ्यता का आदि पाठ पढ़ता। चीन सभ्यता वास्तव में हजारों वर्ष पुरानी है। चीन में यह किंवदन्ती है कि ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व इस देश में आदर्श राजा थे और आदर्श शासन व्यवस्था थी। परन्तु राजाओं का और उनकी व्यवस्था का ऐसा आदर्श चित्र उपस्थित किया जाता है कि उसकी सभ्यता में आधुनिक लोगों को विश्वास नहीं होता। कुछ भी हो यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि ईसा से चार हजार वर्ष पहले चीन देश में कितने ही नगर राज्य ह्वांगहो और यांग्टीसिक्यांग के तटों के आसपास स्थापित हो चुके थे और ऐसा प्रतीत होता है कि चीन सभ्यता का उद्गम स्वतन्त्र रूप से हुआ है। इसीलिये इसमें कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो तत्कालीन अन्य सभ्यताओं में दिखाई नहीं देतीं।

**प्राचीन राजवंश :**

आरम्भ में चीन देश में कितने ही छोटे छोटे राज्य थे। परम्परा से इनकी संख्या ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व लगभग छः हजार मानी जाती थी। यदि यह संख्या ठीक है तो प्रत्येक राज्य में केवल दो चार गाँव होंगे और उन्हीं में से एक कसबा या नगर राजधानी कहलाता होगा। ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व चीन देश में इन छोटे-छोटे राज्यों को मिला कर बड़े राज्य कायम किये जाने लगे। जब यह प्रवृत्ति एक बार चल पड़ी तो बन्द नहीं हुई। परिणाम यह हुआ कि ईसा से १७५० वर्ष पूर्व शांग वंश ने प्रायः समस्त देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। तो भी छोटे-छोटे राज्य बने रहे। परन्तु अब वे सब शांग वंश के अधीन हो गये और एक छत्र राज्य केवल शांग वंश का माना जाने लगा। इस वंश का राज्य छः शताब्दी तक चला। फिर ईसा से ११२५ वर्ष पूर्व दूसरे राजवंश ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसका नाम चू राजवंश था। इसने ईसा से ११२५ वर्ष पूर्व से २५० वर्ष पूर्व तक राज्य किया। इसके पश्चात् सीन राजवंश का आरम्भ हुआ। इसने ईसा से २५० वर्ष पूर्व से ५० वर्ष पूर्व तक राज्य किया। इस वंश के पीछे हेन वंश का राज्य शुरू हुआ जो ईसा से ५० वर्ष पूर्व से ३५० वर्ष बाद तक अर्थात् ४०० वर्ष तक चलता रहा।

## महाराज शीवांगटी

शांघ वंश का राज्य स्थापित होते ही चीन की राज्य-व्यवस्था बदल गई। अब पहले जैसे छोटे छोटे राज्य नहीं रहे। वे सब शांघ वंश के अधीन हो गये। ये सब सामन्तों के राज्य थे जो शांघ कुल को अपना स्वामी मानते थे। अतः ये राज्य तो नाम मात्र के ही थे परन्तु अपनी प्रजा के लिए प्रत्येक सामन्त राजा से कम नहीं था। इनकी संख्या पाँच और छः हजार के बीच में थी। इनमें बारह राज्य बड़े बड़े भी थे। परन्तु ये बड़े सामन्ती राज्य भी सार्वदेशिक राजवंश के अधीन थे। यह स्थिति शांघ वंश के आरम्भ से सीन वंश के आरम्भ तक अर्थात् लगभग १५०० वर्ष तक चलती रही। फिर शीवांगटी नामक सीन वंशीय राजा ने इसका अन्त कर दिया। यह राजा बड़ा पराक्रमी वीर और विद्याप्रेमी था। इसके समय में चीन के पश्चिम की ओर से हूण लोगों ने कई वार आक्रमण किये। ऐसे आक्रमण चीन देश पर पहले भी कई वार हुए थे। परन्तु अब इनकी प्रवलता और भयंकरता और बढ़ गई। हूण लोगों के हमलों से बचने के लिए शीवांगटी ने चीन के उत्तर-पश्चिम में एक दीवार बनवाई। यह १८०० मील लम्बी है और बीस फीट चौड़ी। प्रत्येक दो सौ गज के फासले पर ऐसे मीनारे बने हुए हैं जो एक प्रकार की चौकियाँ हैं और जिनमें कई सिपाही रह सकते थे। इस प्रकार की १८०० मील लम्बी दोहरी दीवार बनी हुई है और दोनों दीवारों के बीच काफी फासला रक्खा गया है। उद्देश्य यह था कि आक्रमणकारी यदि एक दीवार को फाँद ले तो दूसरी को न फाँद सके और दीवारों के बीच फंस जाने पर उसको आसानी से मारा जा सके। संसार में जो सप्त आश्चर्य माने जाते हैं उनमें यह दीवार भी एक है। शीवांगटी स्वयं बड़ा वीर नरेश था और उसके पास बहुत बड़ी सेना थी। यह लम्बी और सुदृढ़ दीवार एक प्रकार का किला था। इसलिए शीवांगटी ने हूण लोगों को खदेड़ कर वापस भगा दिया। इन लोगों ने बार-बार आक्रमण किये परन्तु हर बार इनकी हार हुई।

हेन वंशीय राजाओं ने और भी अधिक पराक्रम दिखाया। इनकी विजयी सेना मध्य एशिया, पामीर और खोखन्द तक जा पहुँची और इन देशों के राजाओं को हरा-कर कम से कम कुछ दिन के लिए तो अधीन कर लिया। परन्तु प्रत्यक्ष में तो चीन की सेना देश के बाहर विजय कर रही थी और वास्तव में उसी समय चीन की आन्तरिक दशा क्षीण होती जा रही थी। चीन के अन्दर कई बलवे हुए, कई वार उत्पात हुए और राज-शक्ति क्षीण होने लगी। आन्तरिक व्यवस्था बिगड़ते-बिगड़ते चीन की यह हालत हो गई कि वांगमेंग नामक एक सैनिक सरदार ने चीन सम्राट को विष देकर मार डाला और वह स्वयं राजसिंहासन पर बैठ गया। परन्तु उसका पाप-घट जल्दी ही फूट गया। उसके अनुयायी उसके दुष्कर्मों से बहुत असन्तुष्ट हो गये और

उसके विरुद्ध बहुत बड़ा बलवा खड़ा हो गया। तब हेन राजवंश का एक राजकुमार पुनः अपनी पैतृक गद्दी पर बैठ गया और शासन पूर्ववत् जम गया। हेनवंशी नरेश भारतवर्ष के गुप्त वंश के समकालीन थे। जैसे भारतवर्ष में गुप्तवंशी राजाओं के समय में अभूतपूर्व सर्वतोमुखी उन्नति हुई उसी प्रकार चीन में भी हेन नरेशों के शासन काल में सर्वाङ्गीण उन्नति हुई।

### लिपि और रेशम

ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व चीन में भी चित्रात्मक लिपि का आविर्भाव हुआ। यह सिद्धान्त में मिस्र की पुरानी लिपि से मिलती जुलती है परन्तु व्यवहार में और ढंग में यह उससे भिन्न है। काल चक्र में मिस्र की लिपि तो विलीन हो गई परन्तु चीन की लिपि जिसका उदय आज से लगभग छः हजार वर्ष पूर्व हुआ था इस समय पुष्ट और प्रौढ़ अवस्था में प्रचलित है। चीनी लोग आरम्भ से ही विद्या-व्यसनी हैं। चू राजवंश के राज्य में चीन देश में विद्या की बड़ी उन्नति हुई। उस युग में ग्रन्थ लकड़ी के और विशेषकर बांस के बारीक बारीक तख्तों पर लिखे जाते थे। इसी प्रकार पत्र लिखे जाते थे। यदि किसी शब्द को मिटाना होता था तो उसको चाकू से खुरचा जाता था। कलम बांस या वरु की बनाई जाती थी। इसका अन्ट चिरा हुआ होता था। ऐसे अन्ट में स्याही आसानी से भर जाती थी और अच्छी बरसती थी। तीन-चार शताब्दियों के बाद पत्र और ग्रन्थ रेशमी कपड़े पर लिखे जाने लगे। रेशमी कपड़ा बनाने का हुनर चीन देश में ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व विकसित और प्रचलित हो चुका था। रेशमी कपड़े पर उस समय कितने ही ग्रन्थ लिखे गये और नित्य प्रति का पत्र-व्यवहार इसी पदार्थ पर होता रहा। ईसा के बाद प्रथम शताब्दी में रेशम के साथ-साथ वृक्ष की छाल, सन और चीथड़ों से कागज बनाया जाने लगा। परन्तु रेशमी कपड़े का उपयोग भी साथ साथ जारी रहा। कागज के आविष्कार और उसकी सुलभता के पश्चात् चीन साहित्य की खूब उन्नति हुई।

### कोनफ्यूसियस

ईसा से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व चीन में कोनफ्युसियस नामक एक बड़ा विद्वान धर्म-प्रचारक हुआ। इसने अपने धर्म के प्रचार के निमित्त और लोक शिक्षा के हेतु कितने ही ग्रन्थ लिखे जिनका चीन में बड़ा आदर और प्रचार हुआ। साहित्य-वृद्धि की ओर सबसे अधिक ध्यान शीवांगटी ने दिया। इसने नये साहित्य की सृष्टि करवाई और विद्वानों का खूब पोषण और सत्कार किया। परन्तु अपनी झक में आकर इसने एक ऐसी बात कर डाली जिसके कारण साहित्य की वृद्धि उतनी नहीं हुई जितनी क्षति हो गई। इसने आदेश दिया कि पुराना साहित्य सब नष्ट कर दिया जाय। प्राचीन ग्रन्थ जला दिये जावें। जो लोग ग्रन्थों को छिपावें उनको प्राणदंड दिया जावे। फिर भी

चीन का कुछ प्राचीन साहित्य वच गया। चीनी लोग कोनफ्यूसियस के धर्म ग्रन्थों को अपने प्राणों के समान समझते थे। इसलिये येनकेन प्रकारेण उन्होंने इन ग्रन्थों की रक्षा की। जब हेन वंश का राज्य स्थापित हुआ तो साहित्य की अपूर्व उन्नति हुई और उस समय कोनफ्यूसियस के ग्रन्थों का पुनः प्रकाशन होने लगा।

**चीन यूनान संपर्क**

हेन वंश के नरेश बड़े वीर और प्रतापवान थे। उनके शासनकाल में तातार और हूण लोगों ने कई हमले किये। ये लोग विशाल और विस्तृत दीवार को लाँघ कर भी कई वार चीन देश में घुसे। परन्तु हेन वंश के नरेशों ने इनके पैर नहीं जमने दिये। जब भी ये लोग घुसे तभी इनको देश से खदेड़ कर निकाल दिया। इतना ही नहीं, कई वार चीन की सेनाओं ने इनका वहुत फासले तक पीछा किया और इनको दूर-दूर तक भगा दिया। इन युद्धों में चीनियों का सम्पर्क वेक्टिरिया के यूनानी लोगों से हुआ और इस प्रकार चीन-यूनान सम्वन्ध स्थापित हुआ। इस सम्पर्क के पश्चात् चीनियों ने यूनानी लोगों से कई वातें सीखीं जिनके द्वारा चीनी सभ्यता उन्नत हुई। यूनानियों के सम्पर्क के वाद चीन में अंगूरों की खेती होने लगी और पानी की घड़ी का प्रचार हुआ। पहले चीनी लोग धूप घड़ी से काम लेते थे। इसके द्वारा केवल दिन के ही विभाग किये जा सकते थे, रात्रि के नहीं। पानी की घड़ी का ज्ञान हो जाने के पश्चात् रात और दिन का यथेष्ट विभाग होने लगा। चीनियों ने वर्ष पंचांग का ज्ञान भी यूनानियों से ही लिया था। कहते हैं कि सवसे अधिक प्रभाव चीन पर यूनानियों की संगीत प्रणाली का पड़ा। चीनियों को यूनानी पद्धति इतनी प्रसन्द आई कि शनैः-शनैः उसको पूर्णतः अपना लिया और चीन संगीत वास्तव में सव अंशों में यूनानी संगीत हो गया।

**कब्रों में पाषाण चित्र**

मिस्र देश में मूर्ति कला का ज्ञान ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व विकसित होने लग गया था। परन्तु चीन में यह विकास वहुत देर में हुआ। यहाँ ईसा से लगभग तीन-सौ या चारे-सौ वर्ष की पुरानी मूर्तियाँ मिली हैं। यह भी कोई अच्छी वनी हुई नहीं हैं। इनकी शैली वेवीलोनिया की शैली से मिलती जुलती है। वहाँ पाषाण चित्र वनाये जाते थे और चीन में भी पाषाण चित्र वनाने का प्रचार हुआ। परन्तु इससे पहले चीन में रंग के चित्र भी वनने लग गये थे। व्रुश जानवरों के वालों का वनाया जाता था और इसके द्वारा लकड़ी के तख्तों पर, रेशमी कपड़ों पर और कागज पर चित्र वनाये जाते थे। परन्तु इस क्षेत्र में चीनियों ने कोई विशेष उन्नति प्राप्त नहीं की। इसकी अपेक्षा पाषाण चित्र अधिक वने। ईसा से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व चीन में वड़ी सुन्दर कब्रें वनने लगीं। इससे पहले भी वड़ी-वड़ी कब्रें वनाई जाती थीं।

परन्तु उनमें विशेष सुन्दरता नहीं थी। कब्रों के विषय में भी चीनियों का वैसा ही विश्वास था जैसा मिस्र के निवासियों का। चीनी लोग समझते थे कि जिन चीजों की आवश्यकता मनुष्य को अपनी जीवित अवस्था में होती है उन्हीं की जरूरत उसको मरने के बाद भी हुआ करती होगी। इसलिए बड़ी-बड़ी कब्रों को सब आवश्यक चीजें रक्खी जाती थीं। यहाँ तक कि मृतक के दास भी उसी के साथ जीवित दफना दिये जाते थे। ईसा से तीन-सौ वर्ष पूर्व जो नरेशों की कब्रें बनाई गई थीं उनमें अनेक पाषाण चित्र मिले हैं। इनमें रथों की, उनके वाहकों की और उनमें बैठनेवालों की प्रतिमायें हैं। शिकारों और युद्धों के दृश्य दिखलाए हैं। मछलियाँ पकड़ते हुए लोगों की प्रतिमायें हैं। ऐसे जुलूसों की प्रतिमायें भी मिली हैं जिनमें हाथी, ऊँट, रथ सेना आदि बने हुए हैं। इन चित्रों से तत्कालीन समाज और राज्य-व्यवस्था का आसानी से अनुमान हो सकता है। इसलिए इतिहास के लिए ये प्रतिमायें बड़े महत्व की हैं।

चीन की समाज व्यवस्था भी मिस्र और भारत से अनेक अंशों में मिलती-जुलती थी। सर्वोच्च स्थान राजवंश का था। विद्वान लोग सबसे ऊँचे माने जाते थे। उनके बाद कृषकों का, फिर कारीगरों का और अन्त में व्यापारियों का स्थान था। इस समाज व्यवस्था में विशेषता यह थी कि सैनिक या योद्धाओं को ऊँचे वर्ग में नहीं माना जाता था। इतना ही नहीं उनको हीन दृष्टि से देखा जाता था।

---

# तीसरा अध्याय
## प्राचीन मिस्र की सभ्यता

### इतिहास के साधन

मिस्र देश की सभ्यता अति प्राचीन मानी जाती है। ईसा से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व यहाँ के निवासी मिट्टी के बर्तन बनाते थे, पत्थर की भी कई अच्छी चीजें बना सकते थे और उनको ताँबे का ज्ञान था। उस समय नील नदी के मुहाने के पास एक राज्य था और उसके ऊपर के भाग पर दूसरा। इस प्रकार मिस्र के दो भाग थे। वहाँ के लोगों का विश्वास था कि मनुष्य के मरने के बाद उसका परलोक जीवन शुरू होता है और वहाँ उसको उन सब पदार्थों की आवश्यकता होती है जिनका वह इस जीवन में उपयोग किया करता है। इसलिए वे लोग मुर्दे के साथ नित्य के उपयोग की अनेक चीजें कब्र में गाड़ दिया करते थे। इसी विश्वास के कारण कब्रें अच्छी और बड़ी-बड़ी बनाई जाती थीं। ज्यों-ज्यों उन्नति होती गई त्यों-त्यों उनका निर्माण और अच्छा होता गया, यहाँ तक कि फिर पिरेमिड बनने लगे जिनकी भव्यता और विशालता देख कर लोग इस समय भी चकित होते हैं। ज्यों-ज्यों कब्रें बड़ी बनने लगीं त्यों-त्यों इनमें अधिक चीजें रक्खी जाने लगीं और अन्दर के भागों में ऐसे दृश्यों के चित्र बनाये जाने लगे जिनका मृतक के जीवन से सम्बन्ध था। ये बड़ी कब्रें सब तत्कालीन नरेशों की हैं। इसलिये इनके चित्रों से और उनके अन्दर रक्खे हुए पदार्थों से उस समय की सभ्यता का स्वरूप सामने आ जाता है। मिस्र का प्राचीन इतिहास प्रायः इन चित्रों और पदार्थों के आधार पर ही तैयार किया गया है।

### नील नदी कृषि आदि

लगभग सात हजार वर्ष पूर्व मिस्र के निवासी खेती करके अन्न उत्पन्न करते थे और कपड़े बनाते थे। यहीं से अन्न और वस्त्र यूरोप में जाते थे और फिर यूरोपीय निवासियों ने स्वयं ये चीजें उत्पन्न करना शुरू किया था। मिस्र में खेती नील नदी के पानी से होती थी और इस पानी पर उस समय के नरेशों का अधिकार था। ये लोग पानी देते तो फसल होती थी वरना सूख जाती थी। इसलिए किसान लोग इन नरेशों को अपना अन्न और सन का कुछ भाग हर फसल पर दिया करते थे। इस प्रकार वहाँ राजाओं को कर देना शुरू हुआ था। नील नदी ही मिस्र निवासियों के जीवन का आधार थी। इसलिए वे इसको देवता मानते थे और इसकी स्तुति किया करते थे।

## लिपि और कागज

ऐसा प्रतीत होता है कि लिखने की कला सबसे पहले मिस्र में ही विकसित हुई। इसका आरम्भ चित्रों से हुआ था। भूख, प्यार, हर्ष, शोक, लेन-देन, जन्म-मृत्यु, विवाह आदि चित्रों द्वारा प्रकट किये जाते थे। इस कला में शनैः-शनैः उन्नति होती गई। आदि में प्रत्येक विचार के लिये एक चित्र बनता था और अपने विचारों को प्रकट करने के लिये मनुष्य को सैकड़ों चित्र बनाने पड़ते थे। उन्नति होते-होते लिपि का विकास हो गया और लगभग छः सात हजार वर्ष पूर्व चौबीस चिह्न या अक्षर बन गये जिनके द्वारा मनुष्य अपने विचार लिख कर दूसरों पर प्रकट करने लगे। इतिहासकारों का मत है कि मिस्र की यह लिपि संसार की सब से अधिक प्राचीन लिपि है और इससे ही फिर अनेक लिपियों का विकास हुआ है। हजारों वर्ष पहले मिस्र में कागज, कलम, स्याही, दवात और कलमदान का उपयोग होता था। कागज़ पेपिरस के पौधे से तैयार किया जाता था। इसलिये अंग्रेजी भाषा में कागज के लिये पेपर शब्द है। योरप वालों ने कागज बनाने की कला मिस्र से ही सीखी है। कागज बनाने की प्राचीन विधि जो मिस्र में प्रचलित थी वह यह थी कि पेपिरस पौधे के बड़े-बड़े लम्बे डंठलों को, चीर-चीर कर, पास-पास मिला कर, रख दिया जाता था और फिर इन पर दूसरे डंठल चीर कर आड़े रख दिये जाते थे। पेपिरस पौधे की लम्बाई बीस पच्चीस फुट तक हुआ करती है। इसलिये इस विधि से बड़े-बड़े तख्ते बन जाया करते थे। फिर गोंद या कोई दूसरी चीज का पतला लुब्बाब बनाकर इस तख्ते पर लीप दिया जाता था। इस प्रकार के तख्ते आपस में जोड़-जोड़ कर एक लम्बा तख्ता या कुंडली बनाली जाती थी। हमारे देश में बहुत समय से जन्म पत्रिकायें और जैनियों के विज्ञप्ति पत्र ऐसे लम्बे कागजों पर लिखे जाते हैं जो जोड़कर बनाये जाते हैं। विज्ञप्ति पत्र तीस फुट तक लम्बे मिले हैं। इंगलैण्ड के ब्रिटिश म्यूजियम में मिस्र में मिला हुआ पेपिरस का बना हुआ पत्र सुरक्षित है जो करीब डेढ़ फुट चौड़ा और एक सौ पैंतीस फुट लम्बा है। कलमें नरगिस या बरू की बनाई जाती थीं। स्याही बनाने के वास्ते पानी में गोंद मिलाया जाता था और फिर उसमें कोई रंगदार धातु या जले हुये पत्ते डाले जाते थे। कलमदान लकड़ी के बनते थे। लकड़ी के चिपटे टुकड़े के दोनों सिरों पर सूराख कर दिये जाते थे और मध्य भाग खोद कर गहरा कर दिया जाता था। सूराखों में दवातें जमाई जाती थीं और बीच के खुदे हुये भाग में कलमें रखी जाती थीं। सिरे के सूराखों के बीच में लकड़ी का इतना भाग खोदा जाता था जिसमें नौ दस इंच लम्बी कलम रक्खी जा सके। दवातें मिट्टी की बनती थीं। इस प्रकार की कलमें, दवातें और कलमदान इस समय भी भारत के गांवों और कसबों में काम आते हैं। भेद केवल नाम और सफाई का ही है।

### तांवा और पत्थर का उपयोग

ऐसा माना जाता है कि धातुओं का पता सबसे पहले मिस्र के निवासियों को ही लगा था। नील नदी के मुहाने से कुछ दूर सिनाई अन्तरीप में उस समय ताँवे की खानें थीं। उस समय के मनुष्य इसको नहीं जानते थे। परन्तु ताँवे के छोटे-छोटे कण मिट्टी में मिले हुए थे। आग जलाने पर ये कण चमका करते होंगे। इन्हें देखकर लोगों को कौतूहल होता होगा कि यह क्या चीज है। यहाँ से ही ताँवे की खोज शुरू हो गई होगी और कालान्तर में ताँवे का प्रयोग जारी हो गया होगा। इसके पश्चात् ताँवे के हथोड़े और सावले वननी शुरू हो गई और इनके द्वारा लोग पत्थर काटने लगे। पहले मकान और कवरें मिट्टी की वनाई जाती थीं परन्तु अव पत्थरों का उपयोग होने लगा। उस युग में रहने के मकानों को इतना महत्व नहीं दिया जाता था जितना कब्रों को। इसलिये सब से पहले पत्थरों का उपयोग कब्रों के लिये हुआ। शुरू में मिट्टी की कब्र पर पत्थर का पटान हुआ, फिर सारी कब्र पत्थर की वनाई जाने लगी और उसके पश्चात् वड़ी-वड़ी कब्रें पत्थर की वनाई जाने लगीं। यहाँ तक कि ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व यह कला पराकाष्ठा पर पहुँच गई और संसार को चकित करने वाले पिरेमिडों का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् लगभग पाँच शताब्दी तक पिरेमिड वनाने का रिवाज जारी रहा। नरेशों की स्मृति में पिरेमिड वनते रहे और उनके आस-पास उनके वन्धु-वान्धव, सामन्त और कर्मचारी वर्ग की अच्छी-अच्छी कब्रें वनती रहीं। इनमें तत्कालीन घटनाओं के सुन्दर चित्र वनाये गये और मृतकों को परलोक में आराम हो इसलिये उनके साथ दैनिक उपयोग की अनेक चीजें रक्खी गईं। इन चित्रों और पदार्थों से तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का सजीव सा चित्र हमारे सामने आ जाता है।

### विशाल पिरेमिड

मिस्र में सब से अधिक आश्चर्यकारी चीज है एक पाँच हजार वर्ष पहले का पिरेमिड। यह किसी तत्कालीन शक्तिशाली और वैभवशाली नरेश की कब्र है जो तेरह एकड़ अर्थात् लगभग पैंतालीस वीघा जमीन के घेरे में वनी हुई है। इसमें तेईस लाख पत्थर लगे हुए हैं और हर एक पत्थर का वजन औसतन सत्तर मन के लगभग है। मिस्र में परम्परा से यह कहानी चली आई है कि इस पिरेमिड के वनाने में एक लाख आदमियों ने वीस वर्ष तक अथक परिश्रम किया था। यह चार सौ इक्कीस फुट ऊँचा है और इसकी नीचे वाली पहली चौकी का हर एक पक्ष सात सौ पचपन फुट लम्बा है। जब यह पिरेमिड वनाया गया था तो उत्तर मिस्र की राजधानी मेम्फिस नगर में थी जो अब नष्ट हो चुका है। यह नगर कच्ची ईंटों का वना हुआ था। यह कैसे आश्चर्य की वात है कि नरेश जव जीवित था तव तो वह कच्ची ईंटों के महल में

रहता था और जब वह मर गया तो उसकी कब्र ऐसी विशाल पिरेमिड के रूप में बनी जिसको देखकर लोग दंग रह जाते हैं और जो अब तक ज्यों का त्यों गर्व के साथ अपना सिर उठाये खड़ी है।

**शव रक्षा**

मिस्र के लोगों ने ईसा से लगभग छः हजार वर्ष पूर्व एक ऐसा पदार्थ तैयार कर लिया था जिसके लेप से लाश सड़ती नहीं थी। इससे प्रकट होता है कि उस समय ये लोग विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करने लग गये थे। इस मसाले को लगाकर शव को जमीन के अन्दर एक कमरा बनाकर रक्खा जाता था। इस कमरे के ऊपर फिर दूसरा कमरा बनाया जाता था जो भूमि के ऊपर रहता था। ऊपर के कमरे में मृतक के उपभोग के लिये नाना प्रकार के पदार्थ रक्खे जाते थे और चारों ओर दीवारों पर नीचे से ऊपर तक तत्कालीन घटनाओं और जीवन के चित्र बनाये जाते थे। कई हजार वर्ष बाद नीचे की कब्रों में शव ज्यों के त्यों मिले हैं जिससे स्पष्ट है कि ऐसा मसाला बनाने में मिस्र के निवासियों ने कितनी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

**विलास की वस्तुयें और कलायें**

उस समय मिस्र में कुशल लोहार थे जो तांबा आदि धातुओं की कई अच्छी उपयोगी चीजें बना सकते थे। कुम्हार मिट्टी के कई प्रकार के सुन्दर बर्तन बनाया करते थे। कांच का काम भी होता था और बारीक कपड़ा बुना जाता था। कुर्सियों और दीवानों पर अच्छी गद्दियाँ लगाने का काम किया जाता था। नरेश-गण और सम्पन्न लोग नाना प्रकार की विलास-वस्तुओं का उपयोग करते थे। बढ़ई लोग उनके वास्ते कुर्सियाँ, पलंग और दीवान बनाते थे जिन पर सोने चाँदी का काम किया जाता था। उस समय उस देश में सुनार तो इतने दक्ष और कुशल थे कि इस समय के अच्छे से अच्छे सुनार भी सुन्दर और मनोहर गहने बनाने में शायद उनका मुकाबला नहीं कर सकते। इन गहनों को रखने के लिये लकड़ी की बड़ी-बड़ी सुन्दर सन्दूकचियाँ बनाई जाती थीं। तत्कालीन मिस्र के लोग बड़े सुन्दर और सुखद मकानों में रहते थे। इनमें सब प्रकार की सुख सामग्रियाँ एकत्र की जाती थीं और मकान सब भाँति भव्य और मनोहर बनाये जाते थे। बड़े आदमियों के मकानों के पास प्रायः बाग होते थे जिनमें स्नान के लिये कुंड बने होते थे और बड़े बागों में छोटे-छोटे तालाब बनाये जाते थे जिनमें सुन्दर कमल खिले रहते थे। संगीत की अच्छी उन्नति हो चुकी थी। सम्पन्न लोगों के यहाँ गवैये रक्खे जाते थे जो वायु और तार के बाजों पर मधुर गाना गाया करते थे। स्त्रियों को गाने और नाचने का शौक था और बच्चे कई प्रकार के खिलौनों से तथा पालतू बन्दरों, बिल्लियों और कुत्तों से तथा पक्षियों से खेला करते थे। मिस्र के निवासियों को जहाज बनाना और चलाना आता था। इनके द्वारा वे

भूमध्य सागर को पार करके दूसरे देशों के साथ व्यापार करते थे। नील नदी के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर गधों के कारवाँ जाया करते थे। इनके द्वारा वहाँ मिस्र का माल भेजा जाता था और वहाँ से माल लाया जाता था।

## मूर्ति कला

मूर्ति कला मिस्र में पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। उस समय संसार का कोई अन्य देश इस विषय में मिस्र की बराबरी नहीं कर सकता था। मूर्तियाँ पत्थर और लकड़ी दोनों की बनाई जाती थीं। इस कला के सैकड़ों शिलाविद उस युग में वहाँ विद्यमान थे। मूर्तियाँ कई आकार और प्रकार की बनाई जाती थीं। ऐसी मूर्तियाँ भी बनती थीं जिनका कुछ भाग पशु जैसा और कुछ भाग मनुष्य जैसा हो। यह प्रथा और कला सिन्ध में भी ईसा से तीन हजार वर्ष पहले प्रचलित थी। परन्तु सिन्ध में मूर्तियाँ छोटी-छोटी बनाई जाती थीं और मिस्र में सब प्रकार की, अर्थात् छोटी, बड़ी और बीच की भी बनाई जाती थीं। मिस्र के शिलाविद इतने दक्ष थे कि वे जिसकी मूर्ति बनाते थे वह ठीक उस जैसी ही प्रतीत होती थी। यह सजीवता आसान कला नहीं थी परन्तु मिस्र के कारीगरों ने इस कला में अच्छा कमाल हासिल किया था। मूर्तियों के विषय में इतनी निपुणता अन्य युग में किसी भी देश ने प्राप्त नहीं की। सबसे अधिक आश्चर्य में डालने वाली प्रतिमा मिस्र में एक 'स्फिन्क्स' की है। इस प्रतिमा का सारा शरीर तो सिंह का-सा है और केवल सिर मनुष्य का-सा। अनुमान लगाया जाता है कि यह सिर तत्कालीन एक प्रतापशाली शासक का है परन्तु इसका पूर्ण निश्चय नहीं है। अतः इस मूर्ति को इतिहास की दृष्टि से नहीं केवल संस्कृति और कला की दृष्टि से देखना चाहिए। यह एक सौ आठ फुट लम्बी और सत्तर फुट ऊँची है। इसका सिर तैंतीस फुट लम्बा और लगभग चौदह फुट चौड़ा है। इसका डील-डौल आकार-प्रकार और अनुपात आदि सब उच्च और पुष्ट मूर्तिकला के सिद्धान्तों के अनुसार हैं और कहीं किसी प्रकार का कोई दोष नहीं है। यदि इसकी कोई तुलना हो सकती है तो केवल एक मूर्ति से हो सकती है जो जैन आचार्य गोमट की प्रतिमा है और मैसूर राज्य में श्रवण बेल गोला नामक पहाड़ी पर स्थित है, परन्तु यह प्रतिमा बहुत पुरानी नहीं है। यह ईसा से लगभग नौ सौ वर्ष बाद बनाई गई है। मिस्र की मूर्ति-कला उत्तरोत्तर उन्नत होती गई। ईसा से चौदह सौ वर्ष पूर्व एक राजा ने अपनी रानी की प्रतिमा तैयार करवाई थी जिसकी तद्रूपता आश्चर्यजनक है। ऐसा माना जाता है कि ऐसी तद्रूप प्रतिमा संसार के किसी अन्य देश में नहीं बनी। इस प्रकार अपनी और अपने आत्मीय जनों की प्रतिमा बनवाने का रिवाज मिस्र में कई शताब्दियों तक चलता रहा और राजा लोग इस कला का पोषण करते रहे जिससे यह उन्नत होती गई। एक राजा ने अपनी दो मनोहर प्रतिमायें बनवाई थीं जिनमें एक अस्सी फुट और दूसरी नब्बे फुट ऊँची हैं।

### देव मंदिर और राज मंदिर

मूर्ति-कला की भाँति गृह-निर्माण कला ने भी मिस्र में खूब उन्नति प्राप्त की। पहले समाधि निर्माण कला पर लोगों का ध्यान रहा परन्तु फिर राजमहल और सम्पन्न सामन्तों के निवास स्थान भी कला और चातुरी के साथ बनाये जाने लगे। इनमें कई भवन इतने भव्य और विशाल हैं कि देखते ही बनता है। ईसा से करीब सोलह सौ वर्ष पूर्व थीबीज नामक नगर प्रायः समस्त मिस्र की राजधानी थी। यहाँ करनाक का प्रसिद्ध मन्दिर है जो कला, सौन्दर्य, विशालता आदि के लिये संसार में अद्वितीय है। कहते हैं कि इस मन्दिर के निर्माण में लगभग दो हजार वर्ष लगे थे। कई राजवंशों की कितनी ही पीढ़ियाँ व्यतीत हो गईं। उनमें प्रायः हर एक ने इस मन्दिर को अधिक सुन्दर और कलामय बनाया और इस प्रकार यह अधिक सुन्दर और विशाल होता रहा। यह लगभग दो फर्लाङ्ग लम्बा है। इसकी कुर्सी ३३८ फुट लम्बी और १७० फुट चौड़ी है। इसमें खम्भों की सोलह पंक्तियाँ हैं जिनमें सब मिलाकर १३६ खम्भे हैं। मध्य के बारह खम्भों में प्रत्येक ७६ फुट लम्बा है और इसके ऊपर के सिरे पर एक सौ आदमी आसानी से बैठ सकते हैं। इसके आसपास और कई मन्दिर बने हुये हैं। कभी ये सब मन्दिर दिव्य रंगों से जगमगाया करते थे। अब ये रंग विलीन और नष्ट या क्षीण होते जाते हैं। परन्तु इस समय भी ये ऐसी दशा में अवश्य हैं कि इनके विलीन वैभव का आसानी से अनुमान हो सकता है।

मन्दिर के गर्भगृह में घुसकर प्रतिमा के ऊपर पड़ती थीं। मन्दिर के सम्मुख निर्माण करवाने वाले राजा की चार प्रतिमायें हैं। ये भी रेतीले पत्थर की बनी हुई हैं। प्रत्येक प्रतिमा एक ही पत्थर में से तराशी गई है और साठ फुट ऊँची है। मिस्र के इतिहास में लगभग छः हजार वर्ष तक विशालता का युग रहा। इस काल में विशाल समाधियाँ, विशाल प्रतिमायें और विशाल राज-भवनों का निर्माण हुआ। जैनियों में विशाल प्रतिमायें बनाने की प्रथा है। इनके शास्त्रों में तीर्थङ्करों के शरीर की अद्‌भुत विशालता का वर्णन है। इसलिये ये लोग तीर्थङ्करों की विशाल प्रतिमायें बनाते हैं। साथ ही अपने आचार्यों और महापुरुषों की भी विशाल प्रतिमायें बनाने का इन लोगों में बहुत काल से रिवाज जारी है। यही प्रथा बौद्ध लोगों में भारतवर्ष में ही नहीं, जहाँ-जहाँ भी बौद्ध-धर्म पहुँचा, वहाँ ग्रहण की गई। उत्तर भारत में बुद्ध की और बोधिसत्वों की प्रायः सब ही प्रतिमायें बहुत बड़ी-बड़ी बनाई गई हैं। मिस्र और भारत का प्राचीन काल में कोई विशेष सम्बन्ध तो नहीं रहा, परन्तु फिर भी सम्भव है कि विशाल प्रतिमायें बनाने की प्रवृत्ति शायद किसी प्रकार मिस्र देश से ही हमारे यहाँ आई हो और बौद्ध जगत में प्रचलित हो गई हो।

### सुख सामग्री

मिस्र में ईसा से लगभग पन्द्रह शताब्दी पहले सुख विलास की वस्तुयें भी बड़ी उत्तम बनने लग गई थीं। साधारण लोगों के उपयोग की चीजें कैसी होती थीं इसका तो पता नहीं चला है परन्तु राजाओं की समाधियों में से जो चीजें मिली हैं उनसे तत्कालीन कला और राजसी वैभव का अन्दाजा हो सकता है। राजा ऐसी कुर्सियों का उपयोग करते थे जिनमें चमड़े की सुन्दर और मुलायम गद्दियाँ ठुकी रहती थीं और जिन पर सोने चाँदी की चद्दरें चढ़ी हुई होती थीं। उस युग की एक कुर्सी तो ऐसी है जिसको देखकर चकित हो जाना पड़ता है। यह साफ और टिकाऊ लकड़ी की बनी हुई है। इस पर सोना चढ़ा हुआ है और काँच तथा मूल्यवान पत्थर का इस पर पच्चीकारी का काम है। यह काम बारीक कला के साथ किया गया है। बेल बूटे ठीक हिसाब से बनाये गये हैं और बड़े मनोहर हैं। इसकी पीठ पर अन्दर की ओर राजा और रानी पच्चीकारी के काम में बनाये हुए हैं। रानी लहंगा पहिने हुए है और राजा ने तहमत सा लगा रक्खा है। दोनों के गलों में झालरदार कालर है। ऐसे कालर इङ्गलैंड के राजा रानी सोलहवीं शताब्दी तक लगाया करते थे। उस समय मिस्र में जेवर रखने के वास्ते आबनूस के बड़े सुन्दर छोटे-छोटे बक्स बनते थे। इन पर भी काँच की पच्चीकारी की जाती थी। इत्र आदि रखने के वास्ते छोटी-छोटी सन्दूकचियाँ बनाई जाती थीं। इनको भी पच्चीकारी और खुदाई के काम से सजाया जाता था। सोने के पलंग बड़े कीमती और सुखद बनाये जाते थे। इनके पायों, ईसों और ऊपलों पर कारीगरी का

काम किया जाता था। ईस और ऊपले तो केवल चौकोर या गोल किये जाते थे परन्तु पायों को कई प्रकार के कामों से सजाया जाता था और विभिन्न रंगों से रंगा जाता था। ये पशुओं या मनुष्यों की शक्ल के भी बनाये जाते थे। इस प्रकार के पाये इस समय भी राजस्थान में कहीं-कहीं मिल जाते हैं। पचास वर्ष पूर्व तक पलंग के इस प्रकार के पायों का इस प्रान्त में प्रचार था। सवारी के लिये रथों का उपयोग होता था। यह वाहन ईसा से दो तीन हजार वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया के देशों में शायद भारत से आया था। जनता में साधारण रथों का उपयोग होता था किन्तु राजाओं के रथ बड़ी कारीगरी के साथ बनाये जाते थे। इनके कई भागों पर चाँदी सोना चढ़ा रहता था और बैठकों पर मुलायम तथा लचकदार गद्दियाँ होती थीं। एक राजा की समाधि में सन् १९२२ में ऐसा रथ मिला जो बाहर निकाला तो सोने चाँदी और जवाहरात के प्रकाश से जगमगा रहा था। राजा बहुमूल्य सोफों और दीवानों पर बैठते थे। इनमें कीमती कपड़ा लगाया जाता था और सोने चाँदी तथा रत्नों का काम होता था। सन्दूकों पर हाथी दाँत और आवतूस का काम किया जाता था। ये ऐसे सुन्दर और आकर्षक बनते थे कि वर्तमान शौकीन राजा-रानी भी इनको पसन्द कर सकते हैं। कमरों में रखने के वास्ते बड़े लुभावने फूलदान बनाये जाते थे। राज-सिंहासन पर सर्वत्र सोना जड़ा रहता था और रत्न भी लगे रहते थे। राजाओं की पोशाकें अत्यन्त बारीक कपड़ों की बनती थीं जिन पर जरी का बढ़िया और सुन्दर काम होता था। वास्तव में ईसा से पन्द्रह सदी पहले मिस्र तत्कालीन जगत् में उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया था। कला-कौशल उन्नत हो चुके थे। भोग-विलास के समस्त साधन देश में उपलब्ध थे। राजमहल और समाधियों की छटा को देख कर संसार चौंधिया रहा था। देश देशान्तरों से व्यापार होता था। मिस्र के जहाज भूमध्य सागर के सब देशों को जाते थे। यहाँ के लोग हजारों वर्ष पहले लिपि का आविष्कार कर चुके थे और ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व ग्रन्थों का निर्माण होने लग गया था। मिस्र का योरप के तथा पश्चिमी एशिया के कितने ही देशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। एशिया के कुछ देशों से उसका राजनैतिक संघर्ष भी चला करता था।

**प्राचीन धर्म**

मिस्र निवासियों ने विविध क्षेत्रों में बड़ी उन्नति की थी। परन्तु धार्मिक क्षेत्र में उन्होंने उल्लेख योग्य उन्नति नहीं की। ईसा से एक हजार तीन सौ वर्ष पूर्व तक वे लोग सैकड़ों देव और देवियों की पूजा करते थे। इनमें सबसे प्रधान सूर्य था। प्रत्येक देव के साथ उसकी देवी अर्थात् उसकी स्त्री को भी पूजा जाता था और देव-दम्पतियों के अनेक पुत्र और पुत्रियां मानी जाती थीं। इस प्रकार मिस्र का वायुमंडल देव देवियों से और उनकी सन्तानों से परिपूर्ण था। देव अधिकांश भयंकर और दुखदायी

माने जाते थे। सूर्य देव की कल्पना एक भीषण देव के रूप में की गई थी। उसकी पूजाविधि और उसके मन्दिर इस प्रकार के थे कि उनको देखकर भक्तों के हृदय में प्रायः भय उत्पन्न हुआ करता था। उसके पुजारी ऐसे कपड़े पहिनते थे कि उपासक लोग उनको देखकर प्रायः डर जाया करते थे। सूर्य मन्दिरों में प्रार्थना के गाने भी इसी उद्देश्य से रचे गये थे। देव और देवियों की प्रतिमायें भी सुन्दर या मनोहर नहीं वनाई जती थीं। उनमें क्रूरता और विशालता तथा भयंकरता प्रदर्शित की जाती थी। प्राचीन यूनान के लोग भी कितने ही देव देवियों की पूजा करते थे परन्तु इनमें कोई देव कोमल, कोई स्नेही और कोई भयंकर या क्रूर था। इसी प्रकार भारत के आर्य भी अनेक देवी देवियों को मानते थे परन्तु वे यह भी जानते थे कि अनेक देवी देव एक ही ईश्वर के विविध रूप हैं और ईश्वर समस्त ब्रह्माण्ड का नियन्ता है। मिस्र निवासियों के दिमाग में यह कल्पना हजारों वर्ष तक नहीं आई। वे ईसा के लगभग चौदह सौ वर्ष पूर्व तक सूर्य देव, मानव देव, न्याय देव, पाप देव और उनकी पत्नियों की तया पुत्र-पुत्रियों की पूजा करते रहे और इनके कोप निवारण के यत्न में लगे रहे।

मिस्र के प्रायः प्रत्येक जिले, नगर, कस्बे और गाँव में अलग-अलग देव माने जाते थे। ऐसे प्रत्येक देव के स्त्री थी और एक पुत्र था। यह भी माना जाता था कि प्रत्येक स्थान में एक राक्षस भी रहता है जिसका काम है लोगों को उत्पीड़ित करना। ऐसा अनुमान होता है कि मिस्र के देव-देवियों और उनकी सन्तानों की तथा जगह-जगह के राक्षसों की संख्या तीन सहस्र के लगभग होगी। विचित्र देव-देवियों के इस महा-जंजाल में मिस्र निवासी हजारों वर्ष तक फँसे रहे। उनके दिमाग में उस देवातिदेव महादेव की कल्पना नहीं आई जो विश्व का निर्माता और नियन्ता है।

### अमन होतेप के धार्मिक सुधार

ईसा से १३७५ वर्ष पूर्व अमन होतेप चतुर्थ नामक एक राजा हुआ। राज्याभिषेक के समय उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी और इसने केवल अठारह वर्ष तक राज्य किया। परन्तु इसकी धार्मिक दृष्टि बड़ी सूक्ष्म थी। उसने धार्मिक क्षेत्र में ऐसे विचारों का प्रचार किया जो उस काल तक भारतवर्ष के अतरिक्त अन्यत्र किसी को नहीं सूझे थे। इस राजा ने अपना नाम अखनेतन रक्खा जिसका अर्थ है सूर्य सन्तोष। राजसिंहासन पर बैठने के बाद उसने घोषणा करवाई कि अफ्रीका और एशिया में जहाँ उसका राज्य है वहाँ केवल 'एतन' (सूर्य) की ही पूजा की जावेगी, अन्य किसी देव की नहीं। उसने प्राचीन देव मन्दिर बन्द करवा दिये। यहाँ तक कि उसने करनाक के मन्दिर के भी ताले लगवा दिये। अब केवल सूर्य देव की पूजा होने लगी। इस को मिस्र निवासी पहले भी पूजते थे परन्तु इसके साथ सैकड़ों अन्य देव भी पूजे जाते थे और उस समय इसकी कल्पना बिल्कुल भिन्न थी।

ऐसा माना जाता था कि एतन देव (सूर्य) की महत्ता या सत्ता का एक स्वरूप है। सूर्य आग का विशाल गोला है, और वह इतना भयंकर है कि उसकी शक्ति का मनुष्यों को अनुमान नहीं हो सकता। उपासक उसकी भयंकरता से थर्राया करते थे। वे डरते थे कि न जाने कब उसका कोप उनको नष्ट कर डाले। उसके कोप की अनेक कथायें प्रचलित थीं। एक कथा यह थी कि एक बार एतन देव को मानव जाति पर बैठे-बैठे ही बड़ा क्रोध आया और उसने हाथोर नामक देवी को आदेश दिया कि समस्त मनुष्य जाति को समूल नष्ट कर दिया जावे। इस देवी ने अपना संहार कार्य शुरू कर दिया, परन्तु एतन देव को फिर कुछ विचार आया और उसने संहार बन्द कर दिया। परन्तु यह मानव प्राणियों से तंग आ गया था। अतः उसने कई अन्य देवों से परामर्श किया और अपने शासन कार्य से वह उपरत हो गया। फिर उसने अपने लिए एक सुखलोक की रचना करली और वहाँ वह स्वार्थ-पूर्वक विलासमय जीवन व्यतीत करने लगा। अखनेतन (अमन होतेप ने यह नाम धारण कर लिया था) की कल्पना सूर्यदेव के विषय में बिल्कुल भिन्न थी। उसकी यह धारणा थी कि एतनदेव समस्त जगत् का परम पिता है और प्राणीमात्र का पालक और रक्षक है। मनुष्यों को ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी उसके स्नेह और करुणा की अनुभूति होती है। जब पक्षीगण आनन्द से कल्लोल करते हैं और गद्गद् होकर अपने पंख फैलाते हैं और चेंचहाते हैं तो वे वास्तव में एतनदेव के गुणों का गान करते हैं। यह कल्पना नवीन थी और दिव्य तथा भव्य थी। इसमें मनन, चिंतन और परिमार्जन था।

पहले एतन के मन्दिर में ऐसा वातावरण होता था कि उसमें प्रवेश करते समय लोग काँपा करते थे। मन्दिर के अन्तःकक्ष में केवल पुजारी ही जाया करते थे। वहाँ कुछ प्रकाश होता था और कुछ अन्धकार। एतन की आज्ञा भंग करने वालों पर ऐसे शापों की वर्षा की जाती थी कि लोग उनको सुनकर भयभीत हो जाया करते थे। एतन वास्तव में त्रासदेव था। अब अखनेतन ने ये रोमांचकारी और भयोत्पादक त्रास क्रियायें बन्द करवादीं। उसने आदेश दिया कि एतन की पूजा या उपासना केवल प्रातः और सायं की जावे। इन वेलाओं में रवि-किरणों में कोमलता और अनुकूलता होती है। उनके स्पर्श से मनुष्य को अनुभव होता है कि सूर्य दयालु है और मानों स्नेह की वर्षा करता है। अखनेतन ने प्राचीन पूजा-विधि का क्रियाकलाप बन्द करवा दिया। पुजारियों की संख्या घटा दी और बलि बन्द कर दी। अब सूर्य देव को केवल फल फूल चढ़ाये जाने लगे और भजन गा कर उसकी स्तुति की जाने लगी। इस बात का प्रचार किया गया कि एतनदेव फल-पुष्प की भेंट से प्रसन्न नहीं होता। जब मनुष्य हृदय तल से उसकी प्रार्थना करता है तो वह स्नेह और कारुण्य की वृष्टि करता है। वह पक्षियों के कलरव से, पशु शावकों की कल्लोलों से और मनुष्यों के सुखद सन्तोष से प्रसन्न होता है।

अखनेतन ने अपने राज्य में प्रतिमा-पूजन का निषेध किया। उसका मन्तव्य था कि ईश्वर निराकार और सर्व-व्यापी है, इसलिए उसकी मूर्ति नहीं बनाई जा सकती। सिद्धान्त की दृष्टि से तो यह बात ठीक है परन्तु एतनदेव निराकार नहीं था। वह सबको प्रत्यक्ष दिखाई देता था और उसकी सुखद रश्मियाँ सबको स्पर्श करती थीं। ऐसा मालूम होता है कि अखनेतन ईश्वर को साकार और निराकार दोनों मानता होगा। उसका साकार स्वरूप एतनदेव था और निराकार स्वरूप दिखाई नहीं देता था। इससे मिलता जुलता भाव ऋग्वेद में भी है। वहाँ दृश्यमान सूर्य की स्तुति की गई है परन्तु उसको जगत का रचयिता और उपासकों की बुद्धि का प्रेरक तथा त्रिभुवन व्यापी भी माना गया है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि अखनेतन पर भारतीय आर्यो के विचारों का कोई प्रभाव पड़ा हो, परन्तु इतिहास को इस बात का पता है कि ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व मेसोपोटामिया के उत्तर में निवास करने वाली जातियाँ ऋग्वेदीय देवों को मानती थीं। सम्भव है यहाँ से ऋग्वेदीय विचार मिस्र में पहुँचे हों परन्तु साधारण लोग उनको नहीं समझ सके हों और अखनेतन ने ही प्रथम बार परम्परा के कोहरे के परे देखने का प्रयत्न किया हो। कुछ भी हो उसकी यह कल्पना "कि एतनदेव साकार और निराकार दोनों हैं" भारतीय कल्पना से बहुत मिलती जुलती है।

मिस्र के लोगों का विश्वास था कि मरणोपरान्त मनुष्य को ओसिरिस नामक देव के दरबार में उपस्थित होना पड़ता है। वहाँ जाते समय उसको मार्ग में कितने ही दुष्ट राक्षसों का सामना करना पड़ता है और बीस क्रूर देवों के पास होकर गुजरना पड़ता है जिनके पहरेदार तीक्ष्ण शस्त्र लिए सदैव खड़े रहते हैं। जब मनुष्य ओसिरिस के दरबार में पहुँच जाता है तो वह देव अपनी विचित्र विधि से फैसला करता है कि अमुक व्यक्ति ने अच्छे कर्म किये हैं या बुरे और अपने निर्णय के अनुसार वह उसको फल देता है। अखनेतन ने इन सब विचारों को हेय और त्याज्य माना। वह परलोक के क्रूर देवों के और राक्षसों के अस्तित्व को नहीं मानता था। उसका मन्तव्य था कि मरने के पश्चात मनुष्य की आत्मा सूक्ष्म रूप में स्वर्ग के स्थानों में विचरण किया करती है या धरणीतल पर जीवितावस्था में जहाँ-जहाँ उसको सुख मिला था वहाँ घूमा करती है। अखनेतन के ये विचार भी पौराणिक विचारों से मिलते जुलते हैं। गरुड़ पुराण में बतलाया है कि पापी मनुष्य को मरने के पश्चात् किन घोर यातनाओं का सामना करना पड़ता है और अन्त में उसको नर्क में निवास करना होता है। अच्छे कर्म करने वाले को ये दारुण यातनायें नहीं भोगनी पड़तीं और वह स्वर्ग में सुख पूर्वक निवास करता है। अखनेतन के विचारों में यह विशेषता थी कि वह नर्क को नहीं मानता था। उसकी धारणा थी कि ईश्वर परम दयालु है, वह अपने बच्चों

को यातना नहीं देता, वह उन पर सदा करुणा करता है, अतः मृत्यु के उपरान्त मनुष्य दुःख नहीं भोगता। वह सुख भोगता है। जिन लोगों का जीवन पाप और कुकर्मों में व्यतीत हुआ है, उनको केवल यह दंड मिलता है कि मरते ही उनके अस्तित्व का अन्त हो जाता है, वे स्वर्ग-सुख का उपभोग नहीं करते।

मिस्र के लोग अपने देवों की कीर्ति गाया करते थे। इन स्तुतियों में देवों के युद्धों का, उनके पराक्रम का और उनके जय-पराजय का वर्णन होता था। इसी प्रकार की स्तुतियाँ और कीर्ति-गाथायें ऋग्वेद में हैं, परन्तु साथ ही इन स्तुतियों में देवों के स्नेह और कारुण्य का भी उल्लेख है। मिस्र निवासियों को अपने देवों के प्रचंड प्रकोप और घोर गर्जन का वर्णन करते हुए बड़ा आनन्द आता था। अखनेतन के समय में यह प्रवृत्ति बदल गई। अब सूर्य देव की ऐसी स्तुतियाँ की जाने लगीं जिनमें उसकी आकर्षक और अलौकिक छटा का तथा उसकी स्नेह स्निग्ध रश्मियों के सुखद स्पर्श का वर्णन है। एक ऐसी स्तुति उद्धृत की जाती है :—

पूर्व क्षितिज में उदय हो रहा सुन्दर एतनदेव।
दिशि दिशि में सौन्दर्य भर रहा सुन्दर एतनदेव॥
सकल विश्व में तू है मनहर उज्ज्वल और महान।
तव किरणों से ढका हुआ है यह सम्पूर्ण जहान॥
अखिल जगत का तू स्वामी है सब पर तेरा प्रेम।
स्नेह रश्मि से जग को छूकर करता सबका क्षेम॥
अगणित प्राणी और पदारथ सब हैं तेरी सृष्टि।
जड़ चेतन पर दिन प्रतिदिन तू करता सुख की वृष्टि॥
देख देख कर तुझको प्राणी पल-पल प्रमुदित होते।
जब तू उगता वे उठते हैं तू जाता तब सोते॥

ऋग्वेद में सूर्य की स्तुतियों में भी इनसे मिलते जुलते विचार पाये जाते हैं। उपरोक्त पंक्तियों में साकार सूर्य और निराकार ईश्वर की साथ-साथ स्तुति की गई है। ऐसा जान पड़ता है कि कवि साकार को अनन्त और अलक्ष्य शक्ति का केवल प्रतीक समझता है।

अखनेतन महाराज अशोक की भाँति परम दयालु और शन्तिप्रिय था। वह रक्तपात से घोर घृणा करता था। वह स्नेह और शान्ति से शासन करना चाहता था। एक बार यहूदियों ने पेलेस्टाइन पर और हिट्टाइट लोगों ने सीरिया पर हमला करके इनको अपने-अपने राज्य में मिला लिया। ये दोनों देश उस समय अखनेतन के राज्य में थे। उसके पास इतनी सेना थी कि वह चाहता तो हमलों को रोक देता या लड़कर दोनों देशों को आक्रमणकारियों से छीन लेता। परन्तु उसकी प्रकृति कोमल और दयालु

थी। अतः वह रक्तपात नहीं देख सकता था। इसलिये लोगों के कहने पर भी उसने सेना-संचालन नहीं किया। इससे प्रकट होता है कि अहिंसा की दृष्टि से वह अशोक और महात्मा गांधी से भी आगे बढ़ा हुआ था। अखनेतन का पारवारिक जीवन भी शुद्ध और सुखी था। वह अपनी पत्नी और सन्तानों से बड़ा प्रेम करता था अपने बच्चों को वह प्रायः अपने साथ रखखा करता था।

अखनेतन ने अमरना नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया था। पुरातत्व-वेताओं ने जब यहाँ खुदाई करवाई तो उनको मिट्टी की ईंटों पर लिखे हुए लगभग तीन-सौ पत्र मिले। ये सब भूगर्भगत कमरे में रक्खे हुए थे। पढ़ने पर ज्ञात हुआ कि ये उन पत्रों की प्रतिलिपियाँ हैं जो मिस्र के शासकों ने दूसरे देश के राजाओं को समय-समय पर लिखे थे। इनमें प्रायः सारे ही पत्र पश्चिमी एशिया के शासकों को लिखे गये थे। इनसे पता चलता है कि मिस्र के राजाओं का अन्य राजाओं के साथ कैसा सम्बन्ध था। संसार के इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीय विषय का यह सब से प्राचीन और आदि पत्र-व्यवहार जान पड़ता है। अमरना नगर की दूसरी खुदाई में अखनेतन् की पत्नी का चित्र मिला है। इस देवी का नाम नेफरटिटि था। इसका देहान्त अखनेतन के सामने ही हो गया था। उसने अपनी पत्नी की स्मृति में कई सुन्दर कविताओं की रचना की थी। इस खुदाई में जो नेफरटिटि का चित्र मिला है वह उत्तम और प्रौढ़ कला का नमूना है। विशेषज्ञों का मत है कि किसी भी देश और किसी भी काल के उत्तम से उत्तम चित्र के साथ इसकी तुलना की जा सकती है।

अखनेतन ने केवल अठारह वर्ष राज्य किया और तीस वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया। इस अल्पकाल में उसने धर्म का सुन्दर स्वरूप जनता के सामने रक्खा और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में शान्ति का अनुसरण किया। यहाँ तक कि अपने राज्य की रक्षा के लिये भी उसने रक्तपात करना उचित नहीं समझा। परन्तु उसके मरते ही उसका किया हुआ काम सब नष्ट हो गया। मिस्र निवासियों ने एकेश्वरवाद को नहीं अपनाया। अखनेतन के बाद वे पूर्ववत् अनेक देवों की पूजा करने लगे और पुराने पुजारियों ने पुनः अपना व्यवसाय जमा लिया।

### इकतीस राजवंश

मिस्र देश का इतिहास संसार में सबसे प्राचीन माना जाता है। ईसा से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व इस देश में शासन व्यवस्था का आरम्भ हो गया था और कई बड़े-बड़े नगर बस गये थे। प्रत्येक नगर की शासन व्यवस्था अलग-अलग थी, एवं प्रत्येक नगर एक राज्य माना जाता था। कुछ समय बाद मिस्र देश में दो राज्य स्थापित हुये। एक उत्तर की ओर तथा दूसरा दक्षिण की ओर। बहुत अर्से तक इन दोनों राज्यों में परस्पर संघर्ष रहा। कभी एक राज्य प्रबल हो जाता था और कभी

दूसरा राज्य। जिस राज्य का शासक अधिक शक्तिशाली होता था उसकी यह अभिलाषा रहा करती थी कि दूसरे राज्य को जीत कर अपने राज्य में मिला ले। परन्तु फिर भी कई शताब्दियों तक ये दोनों राज्य अलग-अलग ही बने रहे। अन्त में ईसा से ३४०० वर्ष पूर्व मेनेस नामक राजा ने दोनों राज्य मिला कर एक विस्तृत राज्य कायम कर दिया और वह दोनों का अधिपति बन गया। इस प्रकार मेनेस ने मिस्र के प्रथम राजवंश की स्थापना की। इसके बाद तीस राजवंशों ने राज्य किया। जब इकतीसवें राजवंश का शासन था तब सिकन्दर ने मिस्र पर आक्रमण करके उस राजवंश का अन्त कर डाला।

**फेरोह और पिरेमिड**

मिस्र के शासक फेरोह कहलाते थे। प्रथम प्रसिद्ध फेरोह जोसर था जिसका राज्य काल ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व माना जाता है। इसकी कब्र पर एक इमारत बनाई गई थी जो आकार प्रकार और निर्माण में विचित्र और अद्भुत है। इसका निर्माता इमहोतेप था। इस प्रकार की इमारत को पिरेमिड कहते हैं। इसके बाद प्रत्येक बादशाह की कब्र पर पिरेमिड बनने की प्रथा चल पड़ी, जो लगभग ५०० वर्ष तक जारी रही। सबसे बड़ा पिरेमिड फेरोह एवुफुस का है। इसका निर्माण ईसा से लगभग २९०० वर्ष पूर्व हुआ था और यह गिज़े नामक स्थान पर इस समय स्थित है। इन पाँच शताब्दियों में कितने ही पिरेमिडों का निर्माण हुआ। इनके अन्दर कमरे बने हुए हैं जिनमें अनेक प्रकार के चित्र हैं। इन चित्रों से तत्कालीन समाज के जीवन का पता चलता है। इनमें कई प्रकार के जेवर, मूर्तियाँ, आइने, कुर्सियाँ, पलंग, रथ आदि मिले हैं। इन चीजों को फेरोह अपनी जीवित अवस्था में प्रयोग किया करते थे। इसलिए उनके साथ ये चीजें कब्रों में रक्खी जाती थीं।

फेरोह सब निरंकुश शासक थे। उनमें कोई प्रजा-वत्सल थे और कोई प्रजोत्पीड़क भी। पिरेमिडों का निर्माण ऐसे निरंकुश शासन काल में ही हो सकता था। उस समय लोगों से बेगार में या नाम मात्र की मजदूरी देकर काम करवाया जा सकता था। कला कौशल का पोषण भी निरंकुश शासक अधिक कर सकते थे।

ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व पिरेमिड काल समाप्त हो गया। इसके पश्चात् सातवें राजवंश का शासन स्थापित हुआ। परन्तु इस वंश में योग्य शासक नहीं हुये। इसलिये शासन बिगड़ने लगा। कहा जाता है कि सत्तर दिन में सत्तर फेरोह राजसिंहासन पर बैठे। यह अत्युक्ति हो सकती है परन्तु लगभग ऐसा ही समय अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतवर्ष में भी था। इसमें सैय्यद भाई चाहे जब किसी को भी दिल्ली का बादशाह बना दिया करते थे और चाहे जब उसको तख्त से उतार दिया करते थे। ऐसी ही अवस्था मिस्र में हुई होगी। परिणाम यह हुआ कि

मिस्र छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। लूट खसोट होने लगी। जन और धन सुरक्षित नहीं रहा और कई सुन्दर नगर ऊजड़ हो गये। फिर ईसा से लगभग २१६० वर्ष पूर्व ग्यारहवें राजवंश का शासन स्थापित हुआ और तब से मिस्र में अभ्युदय काल का आरम्भ हुआ। यह काल लगभग ५०० वर्ष तक रहा। इस दीर्घ युग में समृद्धि, साहित्य, विज्ञान, और धर्म की बड़ी उन्नति हुई। मिस्र की नौ सेना भूमध्य सागर में घूमने लगी। लाल सागर से नील नदी तक एक नहर बनाई गई और ज्ञान-विज्ञान से मिस्र जगमगाने लगा। यह अभ्युदय काल अठारहवें राजवंश के राज्य-काल तक अर्थात् ईसा से लगभग १५०० वर्ष पूर्व तक रहा। इसके बाद हाइक्सोस और हिब्रू लोगों के आक्रमण होने लगे। ये लोग मिस्र के फ़ेरोहों को दबा कर स्वयं फेरोह बन गये और इन्होंने उस देश की संस्कृति को इतना अपनाया कि वहाँ के लोगों में ही घुल मिल गये। इन विदेशी आक्रमणकारियों में एक सरदार का नाम थीबीस था। इसने मिस्र के अठारहवें राजवंश की स्थापना की और देश की सर्वतोमुखी उन्नति की। इसी प्रकार भारत पर भी कुशाण और शक लोगों ने आक्रमण किये थे और यहाँ बड़े-बड़े राज्य स्थापित करके उन लोगों ने भी भारतीय धर्म ग्रहण कर लिया था और धर्म और संस्कृति की बड़ी उन्नति की थी। मिस्र में यह ५०० वर्ष का युग स्वर्ण युग था। उस समय मिस्र का राज्य ईराक की दजला नदी से नील के चौथे प्रपात तक फैला हुआ था। इस युग में थोथमीज तृतीय नामक एक फेरोह हुआ जिसने पचास वर्ष तक राज्य किया। वह बहुत बड़ा सेनानायक था। उसने कई भव्य भवनों का निर्माण करवाया था। उसकी नौ सेना दूर-दूर तक पहुँचती थी। इस युग में कर्नाक के विशाल मन्दिर में बहुत काम हुआ था। यह मन्दिर मिस्र की अद्भुत इमारत है। इसका निर्माण लगभग २००० वर्ष तक होता रहा था। इसका आरम्भ फेरोह युग में हुआ था और जब मिस्र में यूनान का राज्य स्थापित हो गया तो उसके बाद भी टोलेमी के समय तक इसका काम चलता रहा था। अठारवें राजवंश का परम प्रसिद्ध फेरोह अखनेतन हुआ। उन्नीसवें राजवंश में रमेसिस द्वितीय प्रसिद्ध फेरोह हुआ जिसने ६७ वर्ष तक राज्य किया। इसका शासन काल भी समृद्ध और सम्पन्न था।

ईसा से ८०० वर्ष पहले मिस्र देश पर चारों ओर से आक्रमण होने लगे। दक्षिण से अफ्रीका के हब्सियों ने, उत्तर से यूनानियों ने और साइप्रस और क्रीट टापुओं के निवासियों ने और पश्चिम से पेलेस्टाइन के शासकों ने कई हमले किये। परिणाम स्वरूप पश्चिमी एशिया और मिस्र में निरन्तर संघर्ष होने लगा। अन्त में ईसा से ६०० वर्ष पूर्व मिस्र में ईरान का शासन स्थापित हो गया। फिर मिस्र स्वतन्त्र हो गया। परन्तु आठ वर्ष बाद फिर ईरान ने दबा लिया। ईसा से ३२३ वर्ष पूर्व जब सिकन्दर ने आक्रमण किया तो मिस्र के लोग ईरानियों के शासन से इतने तंग आ चुके थे कि उन्होंने यूनानी सेना का स्वागत किया। इसके पश्चात् मिस्र पर रोम का, अरब का, तुर्की का और अंग्रेजों का शासन हुआ। सन् १९२२ में अहमद फऊद पाशा के समय में मिस्र पुनः स्वतन्त्र हुआ।

# चौथा अध्याय

## बेबीलोनियाँ

यह देश अरब से पूर्व में और ईरान से पश्चिम में स्थित है और यूफ्रेटीज तथा टाइग्रीस नामक दो नदियों की घाटी में वसा हुआ है। ये नदियाँ ईरान की खाड़ी में गिरती हैं। यह देश प्राचीन काल में बड़ा उपजाऊ था।

बेबीलोनिया का इतिहास मिस्र के इतिहास के समान अति प्राचीन है और उसका समकालीन है। बेबीलोनियाँ ईराक की राजधानी थी और इस प्रदेश में तीन चार कौमें निवास करती थीं परन्तु इन सब पर बेबीलोनियाँ के शासकों का आधिपत्य रहा करता था। इसलिये इनके इतिहास को बेबीलोनियाँ का इतिहास कहा जाता है।

**अनेक राजवंश**

अति प्राचीन काल में ईराक में संस्कृति के उद्गम और विकास के कारण ये थे कि यहाँ की भूमि उपजाऊ थी, दो मुख्य नदियों के कारण पानी की कमी नहीं थी, यहाँ गेहूँ खूब पैदा होता था, यहाँ की मिट्टी से कच्ची ईंटें बहुत अच्छी बन जाती थीं और यहाँ का जलवायु भी किसी प्रकार हानिकर नहीं था। ठीक इन्हीं कारणों से मिस्र में संस्कृति का उद्गम हुआ था। वास्तव में प्राचीन संस्कृतियाँ सब नदियों के तट पर ही विकसित हुई थीं। ईराक में अति प्राचीन काल में सुमेरियन लोगों का आधिपत्य था। यह पता नहीं चलता है कि ये किस जाति के लोग थे। इन लोगों ने ईरान की खाड़ी से भूमध्य सागर तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था। इनकी राजधानी बेबीलोन नगर से कुछ दूरी पर दक्षिण में यूफ्रेटीज नदी के तट पर स्थित थी। इन लोगों का राज्य इस प्रदेश पर ईसा से लगभग २७०० वर्ष पूर्व तक रहा। फिर इनको एक दूसरी घुमक्कड़ जाति ने दबा लिया। ये लोग अकादियन कहलाते थे और इनके नेता का नाम सरगोन था जिसको इतिहासकार सरगोन प्रथम कहते हैं। अकादियन लोग सुमेरियन लोगों से अधिक बलवान थे परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से सुमेरियन अधिक उन्नत थे। इसलिये पराजित हो जाने पर भी सुमेरियन संस्कृति नष्ट नहीं हुई। बल्कि इसने विजेताओं पर अपना सिक्का जमा लिया। अकादियन लोगों का दबदबा केवल २०० वर्ष तक चला। इसके बाद इलेमाइट और इमोराइट जातियों ने अपना प्रभुत्व जमा कर बेबीलोन को अपनी राजधानी बना लिया। यह घटना ईसा से लगभग २२०० वर्ष पूर्व हुई। तब से और ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व तक

अर्थात् १७०० वर्ष तक वेबीलोनियाँ नगर इस प्रदेश की संस्कृति का मुख्य केन्द्र बना रहा। बीच में कुछ अर्से के लिये इसको पुनः अपना गत वैभव प्राप्त हो गया। ईराक के उत्तर में एसीरियन नामक एक जाति रहती थी। उस पर सरगोन प्रथम ने अपना प्रभुत्व जमा लिया था। परन्तु यह स्थिति थोड़े ही दिन निभी और एसीरियन लोगों ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर ली। लगभग १००० वर्ष तक ये लोग चुप रहे। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने अपना अपमान भुलाया नहीं। ईसा से ११०० वर्ष पूर्व इन लोगों ने वेबीलोनियाँ पर आक्रमण किया, जीत कर उसको बड़ी क्षति पहुँचाई, और निन्वेह नगर को अपनी राजधानी बनाया। इसके बाद एसीरियन लोगों ने इधर-उधर आक्रमण करने शुरू किये। जब इन्होंने डेमेस्कस पर धावा किया तो वहाँ के निवासियों ने इनकी दाल नहीं गलने दी। उसके बाद उन लोगों का ईराक पर सांस्कृतिक प्रभाव जमने और बढ़ने लगा। कालान्तर में एसीरियन और एरेमियन घुल मिल गये। ईसा से ७४२ वर्ष पूर्व इस घुली मिली जाति का राजा टीगालेथ पिलेसर था। इसके पुत्र से इसी जाति के एक सेनापति ने राज्य छीन कर अपना नाम सेरागोन द्वितीय रक्खा। इसके पश्चात् वेबीलोनियाँ के राजसिंहासन पर सेनाचेरिव आसीन हुआ। उसने मिस्र को जीत कर अपने राज्य में मिलाने का यत्न किया परन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। एसीरियन जाति का अन्तिम और शक्तिशाली नरेश असुरबनिपाल हुआ। इसने मिस्र को जीत कर अपने राज्य में शामिल कर लिया। ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व इस प्रदेश पर नेबूचेद नजर नामक एक वीर सरदार के नेतृत्व में चाल्डियन जाति ने अधिकार कर लिया। इस राजा ने वेबीलोन को पुनः इस देश की राजधानी बनाया और फिर यहूदी लोगों पर आक्रमण करना शुरू किया। यहूदियों ने भी इनको बड़ा परेशान किया। यह संघर्ष बहुत अर्से तक चलता रहा परन्तु अन्त में नेबूचेद नजर की विजय हुई और वह हजारों यहूदियों को गिरफ्तार करके अपने यहाँ ले आया।

### लिपि विकास

मानव संस्कृति को वेबीलोनियाँ की सबसे बड़ी देन लिपि है। मिस्र के निवासी ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व लिखना पढ़ना जानते थे और कुछ ग्रन्थों की रचना कर चुके थे। उनकी लेख प्रणाली चित्रात्मक थी। वे लोग वस्तु या भाव दोनों को चित्रों के द्वारा प्रकट किया करते थे। सुमेरियन जाति ने इस क्षेत्र में और आगे कदम बढ़ाया। इन्होंने ऐसी प्रणाली चलाई जिसमें प्रत्येक ध्वनि के लिये एक संकेत था। इस प्रकार इनकी लिपि में ३५० संकेतों का विकास हुआ। अकादियन लोगों ने इस लिपि में कोई हेर फेर नहीं किया। फिर वेबीलोन नगर में इसी लिपि का उपयोग होता रहा। ईसा से लगभग २००० वर्ष पूर्व इस लिपि में शिलालेख लिखे जाने लगे।

इसी में पत्र-व्यवहार जारी हुआ और फिर इसी के द्वारा पाठशालाओं में शिक्षा दी जाने लगी। ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व एरेमियन जाति ने इस लिपि को और अधिक विकसित और व्यवस्थित किया। अब तक इसमें प्रत्येक प्रतीक स्वर का द्योतक नहीं था परन्तु शब्द का द्योतक था। घर के लिये एक चिन्ह लिखा जाता परन्तु घ अ र और अ के लिये पृथक-पृथक प्रतीक नहीं थे। अर्थात् उस समय तक स्वर प्रणाली का विकास नहीं हुआ था। इसका श्रेय एरेमियन लोगों से प्राप्त हुआ। इन लोगों ने यह प्रणाली फिनीशियन लोगों से प्राप्त की थी। सम्भव है कि फिनीशियनों ने यह कला भारत से ग्रहण की हो। भारतवर्ष में स्वर व्यंजनों का वर्गीकरण पाणिनी से (अर्थात् ईसा से ८०० वर्ष) पूर्व हुआ था। संस्कृत भाषा में यह वर्गीकरण नजाने कब से चला आता था। संस्कृत के व्यंजन और स्वरों का कोई विभाग नहीं हो सकता। जिस ध्वनि को अ क द आदि अक्षर बतलाते हैं उसका कोई विभाग नहीं किया जा सकता। फिनीशियन लोगों के संसर्ग से बेबीलोन में और फिर सारे प्रदेश में इस लिपि का प्रचार हुआ। और असुर बेनीपाल के राज्यकाल में तो गीली ईंटों पर पुस्तकें भी लिखी जाने लगीं। यह अचम्भे की बात है कि यहाँ के लोगों में कागज बनाने की कला का उद्गम् क्यों नहीं हुआ। या यह कला मिस्र से इस देश में क्यों नहीं आई। कलम का प्रयोग यहाँ ईसा से छः हजार वर्ष पूर्व होने लग गया था। लेकिन कागज का काम ईंटों से ही लिया जाता था।

### ज्योतिष विज्ञान

सूर्य, चन्द्र और तारों की गति को सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य रुचि और कौतूहल के साथ देखा करते थे। सुमेरियन लोगों को सूर्य और चन्द्रमा की गति का कुछ धुंधला सा ज्ञान था। छाया देख कर वे लोग समय भी नापा करते थे। रात्रि में वे तारों की गति से समय का अनुमान लगाया करते होंगे। बेबीलोनिया में ज्यों-ज्यों इस विषय का ज्ञान अधिक पुष्ट होने लगा त्यों-त्यों लोगों को यह विश्वास होने लगा कि नक्षत्रों की चाल का मनुष्य के जीवन से कोई सम्बन्ध है। फिर लोग मानने लगे कि नक्षत्रों की गति से ही मनुष्य को सुख-दुख प्रात हुआ करते हैं। इस विषय का ज्ञान विकसित होते-होते चाल्डियन जाति के राज्यकाल में इस अवस्था को पहुँच गया कि ज्योतिषी लोग यह भी बतलाने लगे कि सूर्य या चन्द्र का ग्रहण कब होने वाला है। परन्तु बेबीलोनियाँ के लोगों का अब तक विश्वास था कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और पृथ्वी एक स्थान पर टिकी हुई है। इतनी भूल होने पर भी ग्रहण का समय निकाल लेना चमत्कार और आश्चर्य की बात है।

### मूर्ति-कला

बेबीलोनियाँ में चित्रकला का विकास नहीं हुआ। मिस्र की भाँति इन लोगों

में यह भी रिवाज़ प्रचलित नहीं हुआ कि मृतक के साथ उसकी कब्र में काम की वस्तुयें रक्खी जावें। और वहीं उसका बड़ा स्मारक बनाकर उसके अन्दर चित्रकारी की जावे। यदि वेबीलोनियाँ में भी ऐसा रिवाज होता तो हमको वहाँ के इतिहास के लिये बहुत उपयोगी सामग्री प्राप्त होती। वेबीलोनियाँ में मूर्तिकला भी बहुत पुष्ट और प्रौढ़ नहीं हुई। सुमेरियन लोग शायद मूर्ति बनाना जानते ही नहीं थे। उन्होंने पत्थरों पर कुछ मूर्तियाँ बनाने का प्रयत्न किया था परन्तु वे अच्छी नहीं बनीं। ये पत्थर निर्मित तस्वीरें सी मालूम होती हैं। अकादियन लोगों ने अधिक अच्छी मूर्तियाँ बनाईं। एक मूर्ति में सरगोन प्रथम के पुत्र नरम सिन को एक गिरि दुर्ग पर आक्रमण करते हुये दिखाया गया है। यह मूर्ति नहीं है बल्कि पत्थर के ऊपर टांकी और हथौड़ी के द्वारा उस घटना का चित्र बनाया गया है। ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व की बनी हुई मूर्तियों में कुछ वीर राजाओं के पराक्रम दिखलाये गये हैं। कला की दृष्टि से ये प्रतिमायें प्राचीन प्रतिमाओं से अधिक उन्नत हैं परन्तु हैं पत्थर की तस्वीरें ही। ऐसे पाषाण चित्र भारतवर्ष में भी ईसा से दो तीन शताब्दी पूर्व बनते थे और यह प्रथा बहुत अर्से तक जारी रही। परन्तु साथ ही मूर्तियाँ भी बड़ी उत्तम बनने लग गई थीं। पाषाण चित्र केवल ऐतिहासिक घटनाओं को दर्शाने के लिये बनाये जाते थे। कला के प्रदर्शन करने के लिये नहीं।

### भाषा और साहित्य आदि

वेबीलोनियाँ की भाषा में अनेक तत्व थे। अकादियन लोगों ने सुमेरियन भाषा अपना ली थी। परन्तु उन्होंने अपनी भाषा के शब्दों को भी उसमें शामिल किया होगा। हम्मूरबी राजा ने ईसा से लगभग १५०० वर्ष पूर्व आठ फुट ऊँचे पत्थर पर एक लेख लिखवाया। ऊपर हम्मूरबी का पाषाण चित्र है जिसमें बतलाया गया है कि राजा ईश्वर से राज्य विधान प्राप्त कर रहा है। इसके नीचे लेख है जिसमें संक्षेप में तत्कालीन कानून दिया हुआ है। इसकी भाषा सुमेरियन, अकादियन और एमोराइट भाषाओं का मिश्रण है। इस लेख में लिखा है कि निर्धनों के साथ न्याय करना चाहिये, विधवाओं को आश्रय देना चाहिये और मातृ-पितृ हीन बच्चों का पालन करना चाहिये। साथ ही यह भी लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति किसी के पुत्र को भूल से भी मार डाले तो मृतक पुत्र के पिता को अधिकार है कि वह उसके पुत्र को मार डाले। यह कानून मूसा के कानून पर आश्रित था। उसके कानून का मुख्य सिद्धान्त यही था कि यदि कोई तुम्हारी आँख फोड़े तो तुम उसकी आँख फोड़ डालो और यदि कोई तुम्हारा दांत तोड़े तो तुम उसका दांत तोड़ डालो।

जब ध्वन्यात्मक लिपि का प्रचार हो गया तो पत्र-व्यवहार बढ़ने लगा और कुछ ग्रन्थ रचना भी हुई होगी। परन्तु तत्कालीन कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

परन्तु इसका परिणाम यह अवश्य हुआ कि ऐसीरियन भाषा वेबीलोनियाँ की प्रधान भाषा बन गई। सीरिया में ईसामसीह के समय हीब्रू भाषा बोली जाती थी। स्वयं ईसा ने इसी भाषा में उपदेश किया होगा। परन्तु हीब्रू को भी ऐसीरियन भाषा ने दबा लिया। पाठकों को यह बात रोचक प्रतीत होगी कि उस समय पत्र भी ईंटों पर लिखे जाते थे और लम्बे पत्रों के लिये कई ईंटों का प्रयोग किया जाता था। ऐसे पत्रों को वाहक के सिर पर लाद कर ले जाया जाता था। महाराज असुर बेनीपाल के राज्य-काल में ईंटों पर ही पुस्तकें लिखी जाने लगीं। लेखक कितनी ही आयताकार गीली ईंटों को अपने सामने रख लिया करता था और वरु की कलम से इन पर लिखता जाता था। सूख जाने पर इन ईंटों को एक कमरे में रख दिया जाता था। ऐसी कितनी ही पुस्तकें हजारों ईंटों पर लिखी गई थीं। उस समय के पुस्तकालय में ऐसी ईंटें या पुस्तकें सुव्यवस्थित ढंग से रक्खी जाती थीं। खुदाई से ऐसी सैकड़ों पुस्तकें मिली हैं। ऐसी दो लाख बीस हजार ईंटें इस समय लन्दन म्यूजियम में रक्खी हुई हैं। इससे प्रकट होता है कि महाराज असुर बेनीपाल को विद्या और साहित्य से कैसा अगाध प्रेम था। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व वेबीलोनियाँ में पाठशालायें भी जारी हो गई थीं। प्राचीन वेबीलोन नगर की खुदाई में एक ऐसा मकान मिला है जो ५५ फुट वर्गाकार है। यहाँ बच्चों को ईंटों पर लिखना-पढ़ना सिखाया जाता था। जब एक ईंट अक्षरों से भर जाती थी तो उसको खुर्च दिया जाता था और उस पर बच्चा फिर लिखने लग जाया करता था। ऐसी क्रिया बार-बार की जाती थी। जब ईंट समाप्त हो जाती थी तो दूसरी ईंट ले ली जाती थी। उस काल में अक्षर ज्ञान प्राप्त करना कोई साधारण बात नहीं थी। क्योंकि प्रत्येक बालक को ३५० संकेत सीखने पड़ते थे। फिनीशियन लोगों के सम्पर्क के पश्चात् जब लिपि में सुधार हो गया तब अक्षरों की संख्या कम हो गई थी।

**धर्म और समाज व्यवस्था**

वेबीलोनियाँ के लोगों का धर्म मिस्र के धर्म से अनेक अंशों में मिलता-जुलता था। वेबीलोनियाँ के लोग अनेक देवों की विविध प्रकार से पूजा करते थे। इन देवों में मुख्य सूर्य माना जाता था। ईसा से लगभग साढ़े तीन हजार या चार हजार वर्ष पूर्व सुमेरियन लोगों ने सूर्य की पूजा के लिये प्रत्येक नगर में एक ऊँचा स्तम्भ बनवाया था। ये लोग सूर्य को शक्ति, केन्द्र और प्राणदाता मानते थे। लेकिन इन्होंने मिस्र के निवासियों की भाँति इस देव के भयानक स्वरूप की कल्पना नहीं की थी और न इन्होंने वैसे मन्दिर बनवाये जैसे मिस्र में बनवाये गये थे। जब अकादियन लोगों ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया तो उन्होंने सुमेरियन लोगों का ही धर्म ग्रहण कर लिया। इस प्रकार दो जातियों के सम्मेलन से देवताओं की संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई।

वेबीलोनियाँ के धर्म में एक विशेपता यह थी कि सूर्य और अन्य कई देवताओं की उपासना करते हुये ये लोग यह समझते थे कि सूर्य और अन्य कई देवताओं के अतिरिक्त एक परमदेव है जो उसका स्रष्टा है और ज्ञान का आदि स्रोत है। महाराज हेमूरब्बी के शिलालेख के ऊपर जो पाषाण चित्र है वह इस बात को प्रकट करता है कि वेबीलोनियाँ निवासी भगवान को समाज-व्यवस्था का जन्म-दाता मानते थे। सूर्य के अतिरिक्त ये लोग मरदुक, इष्टर और वीनस आदि देवों की पूजा करते थे। मरदुक वेबीलोनियाँ का कामदेव था। इस शब्द की उत्पत्ति का तो पता नहीं है परन्तु यह मरदक और मरदन से मिलता-जुलता है जिसका अर्थ संस्कृत में कामदेव ही है। इष्तर प्रेमदेव का द्योतक है। सम्भव है इसी शब्द का रूपान्तर होते-होते इष्टर रह गया हो। ऐसीरियन और अरामियन लोगों ने कोई नये देवों की स्थापना नहीं की। ये लोग भी वेबीलोन के प्राचीन देवों की ही पूजा करते रहे। इनका विशेष देव शायद असुर था। असुर शब्द का जो अर्थ संस्कृत में होता है लगभग वही लक्षण असुर देव के थे। इस समय कुछ देव मिस्र से भी वेबीलोनिया में आ पहुँचे थे। इस प्रकार के धर्म में पुरोहितों और पुजारियों की प्रधानता स्वाभाविक बात थी। पुरोहित लोग पूजा विधि के विशेषज्ञ थे और सब देवों की पूजा प्रायः इन्हीं लोगों की अध्यक्षता में हुआ करती थी।

### पुजारी और पुरोहित

ऐसे वायुमंडल में पुरोहित और पुजारियों का स्थान समाज में सर्वोच्च होना ही चाहिये था। प्रायः ये ही लोग शिक्षित और शिक्षक होते थे। इन्हीं लोगों का प्राधान्य चीन देश में था। भारत में ब्राह्मणों को प्रथम वर्ग माना जाता है। इस प्रकार प्राचीन काल में शिक्षा और ज्ञान को प्रधानता दी जाती थी, शक्ति या धन को नहीं। वेबीलोनियाँ में योद्धाओं का कोई वर्ग नहीं था और चीन में योद्धाओं को हीन दृष्टि से देखा जाता था। भारतवर्ष में क्षत्रिय ब्राह्मणों के लगभग समकक्ष माने जाते थे। व्यापारी, राज-कर्मचारी आदि लोगों का मध्य वर्ग था और कृपकों का तृतीय वर्ग। एवं वेबीलोनियाँ में समाज तीन भागों में विभक्त था। पुरोहित लोग सबके अगुआ माने जाते थे। ज्योतिष के ज्ञान का विकास इन्होंने ही किया था। ये लोग सितारों की गति को देखकर या भेड़ को चीर कर भविष्य वाणी किया करते थे। इन्होंने सूर्य की बारह राशियाँ निश्चित करली थीं और वे पहले से ही सूर्य और चन्द्र ग्रहण का समय बतला दिया करते थे। परन्तु वेबीलोनियाँ में भारतवर्ष की सी जातियाँ नहीं थीं। उपरोक्त वर्ग बुद्धि और व्यवसाय पर आश्रित थे, जन्म पर नहीं। भारतवर्ष में भी वैदिक काल में गुण और कर्म के अनुसार मनुष्य का वर्ण निश्चित होता था। परन्तु यह फिर जन्म के अनुसार होने लगा। वेबीलोनियाँ का मुख्य व्यवसाय कृपि

कार्य था। गेहूँ की खेती का आरम्भ शायद सबसे पहले इसी प्रदेश में हुआ था। यहाँ पर जंगलों में गेहूँ के पौधे मिले हैं जिससे अनुमान होता है कि यहाँ यह पौधा स्वतः ही उगा करता होगा। जब लोगों को अनुभव हुआ कि गेहूँ खाने के लिये बहुत उपयोगी है तो उन्होंने इसकी खेती करना शुरू कर दिया होगा। लोहे का उपयोग भी शायद सबसे पहले इसी प्रदेश में हुआ था और फिर यहाँ से मिस्र के लोगों को इसका ज्ञान हुआ। कुछ दूसरी धातुओं का भी इस देश में उपयोग किया जाता था। यहाँ लोहे के भाले बनाये जाते थे और ढालों का भी निर्माण होता था। सेर और बाट का भी आविष्कार यहाँ हो चुका था।

**शासन की झांकी**

बेबीलोनियाँ के लोगों ने भूमिकर और दूसरे करों के संग्रह के लिये नियम बनाये थे। नदियों के तटों पर जब मिट्टी एकत्र हो जाती थी तो उसको साफ करने की व्यवस्था की जाती थी। घूस लेना बेबीलोनियाँ में बहुत बड़ा अपराध माना जाता था। यहाँ के लोगों ने रुई की खेती करना भारतवर्ष से सीखा था और रथ और घोड़े का प्रयोग भी वहीं से आया था। फिर यहाँ से मिस्र वालों ने लिये। ऐसीरियन लोग और मिस्र के निवासी विशेपकर वहाँ के शासक ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व रथों और घोड़ों का खूब प्रयोग करने लग गये थे। बेबीलोनियाँ में भेड़ें बहुत पाली जाती थीं। इनकी ऊन से कपड़े बनाये जाते थे। जो ऊन बचती थी वह प्रायः मिस्र भेजी जाती थी। देश भर में भेड़ों की ऊन उतारने का दिन निश्चित था। इसको त्यौहार और आनन्द का दिन माना जाता था। राजधानी से जिलों के अफसरों के पास जो आदेश भेजे जाते थे वे ईंटों पर लिखे जाते थे। ये आदेश प्रायः गधों पर लादकर जिलाधीशों के पास पहुँचाये जाते थे। इस प्रकार की कितनी ही ईंटें खुदाई में मिल चुकी हैं। इन पर प्रबन्ध सम्बन्धी ५५ आदेश लिखे हुये हैं।

---

# पाँचवाँ अध्याय
## अरब की संस्कृति

### छोटे छोटे राज्य

अरब देश रेतीला अन्तरीप है। इस रेतीले मैदान में कोई पैदावार नहीं होती परन्तु समुद्र तट की कुछ मील चौड़ी भूमि सब उपजाऊ है। एक तट से दूसरे तट पर जाने के लिये रेतीले मैदान में मार्ग है। इनके द्वारा माल से लदे हुए कारवाँ आते हैं। प्राचीन काल में कुछ लोग कारवों का धंधा करते थे और कुछ उनको लूटने का। समुद्र तट पर गाँव और नगर बसे हुए थे। यहाँ के निवासियों में अधिक लोग कृषि-कार्य करते थे और शेष लोग व्यापार या अन्य उद्योग करते थे। अरब लोगों की भाषा और संस्कृति तो एक ही थी परन्तु उनमें एकता नहीं थी। एक तट के निवासी दूसरे तट के निवासियों से अलग थे और ये छोटे-छोटे अनेक राज्यों में विभक्त थे। इनमें परस्पर लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। इससे इन राज्यों की सीमायें सिकुड़ती और फैलती रहती थीं।

### विदेशों से संपर्क

समुद्र तट के निवासी छोटे-छोटे जहाजों के द्वारा किनारे-किनारे दूसरे देशों के साथ व्यापार किया करते थे। ज्यों-ज्यों इनका अनुभव बढ़ा त्यों-त्यों ये लोग और दूर तक जाने लगे और जहाज भी बड़े-बड़े बनाने लगे। छठी शताब्दी में ये लोग भारतवर्ष, लंका और चीन के तट पर जा पहुँचे थे। अन्य देशों के साथ सम्पर्क रहने से अरब लोगों का दृष्टिकोण उदार और ज्ञान क्षितिज विस्तृत हो गया था। इनका ज्योतिष और गणित ज्ञान अच्छा उन्नत था। गणना के अंकों का ज्ञान इन्होंने भारतवर्ष से सीखा था। इसीलिए ये लोग एक से नौ तक के अंकों को हिन्दसे कहा करते थे। फिर यह अंक ज्ञान अरब से योरप में पहुँचा। वहाँ इनको अरब अंक कहा जाने लगा।

### पैगम्बर मोहम्मद

सन् ५७० में अरब में एक महा पुरुष का जन्म हुआ। इनका नाम मोहम्मद था। ये जन्म से ही चिन्तन में डूब कर अपने आपको भूल जाते थे। इनको अनुभव होता था कि ऐसी अवस्था में इनको ईश्वर से पैगाम ( संदेश ) मिलते हैं। इसीलिए ये

पैगम्बर कहलाने लगे। शुरू में ये अपने अनुभव अपनी मित्रमंडली को ही सुनाया करते थे। फिर इनके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। जब इनके विचारों का और लोगों को पता लगा तो इनका विरोध होने लगा। उस समय ये मक्का नगर में रहते थे। विरोध बढ़ता देखकर ये सन् ६२२ में मक्का से मदीना चले गये। ६२२ से मुसलमानों के हिज्री सन् का आरम्भ होता है। हिजरत का अर्थ है छोड़ देना। ६२२ में मोहम्मद ने मक्का छोड़ा था। इसलिए उसको हिज्री सन् कहते हैं। मदीना पहुँचने पर मोहम्मद ने अपना प्रभाव जमा कर शक्तिशाली सरकार स्थापित कर दी। उन्होंने कानून जारी किये और सेना का संगठन किया। नगर में अच्छी व्यवस्था स्थापित की और मदीना के मार्ग से जाने वाले कारवों को लूटने लगे। इससे मोहम्मद के अनुयायी अर्थात् मुसलमान धनवान हो गये और समस्त अरब देश में मोहम्मद की धाक जम गई। सन् ६३० में उन्होंने मक्का पर आक्रमण किया जिसमें उनको विजय प्राप्त हुई और मक्का निवासियों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। उनकी मृत्यु के समय अरब देश में उनके धर्म का प्रचार खूब होता जाता था।

**खलीफों द्वारा राज्य विस्तार**

मोहम्मद के देहान्त के बाद खलीफा का पद स्थापित किया गया। पहला खलीफा मदीना में रहने लगा और इसने बाहर के आक्रमणकारियों से अरब देश की रक्षा की जिससे अरब के लोग उसके वफादार हो गये। फिर सीरिया, इराक और इजिप्ट पर मुसलमानों ने खलीफा के नेतृत्व में आक्रमण किये इससे अरब लोग संगठित हो गये। लगभग इसी समय रोम और ईरान साम्राज्य पारस्परिक युद्ध के कारण निर्बल हो गये थे। फिर इनमें आन्तरिक कलह भी शुरू हो गया। इसको अनुकूल अवसर समझ कर अरब के मुसलमानों ने विजय विस्तार की तैयारियाँ शुरू कीं। सन् ६३५ में इन्होंने डेमेस्कस नगर छीन लिया। दूसरे साल रोम सम्राट् इरेकिलयस की सेना को हरा दिया। सन् ६३८ में जेरुसलम नगर ने आत्मसमर्पण कर दिया। फिर अरब लोगों ने सीरिया से उत्तर और दक्षिण दोनों ओर चढ़ाइयाँ शुरू कीं। उत्तर में आर्मीनिया जीत लिया। दक्षिण में मिस्र के प्रधान नगर एलेक्जेन्ड्रिया पर ६४६ में अधिकार स्थापित कर लिया। यहाँ से आगे बढ़कर इन्होंने अरब टापू पर कब्जा कर लिया और फिर मिस्र से पश्चिम की ओर त्रिपोली, ट्यूनिस, अल्जीरिया और मोरक्को अपने राज्य में मिला लिये। इस प्रकार अफ्रीका महाद्वीप के उत्तरी तट पर अरबों का शासन समाप्त हो गया। सन् ६३७ में अरब लोगों ने ईरान पर हमला किया। पहले इराक को जीता और फिर ईरान को। मुसलमानों की विजय बाढ़ बढ़ती ही गई। सन् ७१८ में इन्होंने कस्तुन्तुनिया का घेरा डाला। यहाँ इनको सम्राट् लियो तृतीय ने हरा कर वापस हटा दिया।

लगभग सत्तर वर्ष बाद यह विजय बाढ़ इस चट्टान से रुकी। इससे पहले ७११ में जिब्राल्टर के जल डमरुमध्य को पार करके स्पेन पर आक्रमण किया और उत्तर पश्चिम के पहाड़ी कोनों के सिवाय लगभग सारे देश को अधिकृत कर लिया। तदनन्तर इन्होंने फ्रांस के दक्षिणी भाग पर हमला किया। यहाँ पर चार्ल्स मार्टेल नामक एक ईसाई सरदार ने इनका मुकाबला किया और इनको हरा दिया।

पहला खलीफा ६३४ में मर गया। उसके बाद उमर को खलीफा बनाया गया। यह अबूबकर के समान योग्य था। इसी के समय में सीरिया, इराक, ईरान और मिस्र पर मुसलमानों ने विजय प्राप्त की। उमर के उत्तराधिकारी के समय में मुस्लिम राज्य की सीमा पूर्व में भारतवर्ष तक और उत्तर में आक्सस नदी तक पहुँच गई थी। उमर के बाद उस्मान को खलीफा बनाया गया था। सन् ६५६ में अस्सी वर्ष की अवस्था में विरोधियों ने मदीना के बाजार में पीछा करके इसकी हत्या कर डाली। फिर अली को खलीफा बनाया गया। परन्तु पाँच वर्ष बाद उसकी भी यही दशा हुई। फिर खिलाफत उस्मान के परिवार के हाथ में आ गई। अब खलीफों की राजधानी मदीना से सीरिया के दमस्कस नगर में चली गई। ये लोग उमय्यद खलीफे कहलाते थे। ७४९ में इन लोगों को उखाड़ फेंका और अब्बासी लोगों की खिलाफत कायम हो गई। इसके दस वर्ष बाद राजधानी यहाँ से हट कर टाइग्रिस नदी के तट पर बगदाद नगर में चली गई। यहाँ से अफ्रीका और स्पेन बहुत दूर थे इसलिए दूरस्थ प्रान्त धीरे धीरे खलीफों के हाथ से निकलने लगे। दसवीं शताब्दी में दो खिलाफतें और स्थापित हुई एक मिस्र के कैरो नगर में और दूसरी स्पेन के पोर्डोवा नगर में। खलीफों में अली मोहम्मद का दामाद था और अब्बासी खलीफों का पूर्व पुरुष अब्बास मोहम्मद का चाचा था।

### खलीफा हारुं-अर्-रशीद

बगदाद के खलीफों में सबसे अधिक प्रतापी हारुं-अर्-रशीद था (७८६-८०९)। उसके शासन काल में मुस्लिम जगत उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। बगदाद सम्पन्न और समृद्ध नगर था। वहाँ स्थान-स्थान पर स्कूल और कालेज बने हुए थे।-यह व्यापारिक केन्द्र था। प्रसिद्ध कवि दार्शनिक, हकीम और विद्यार्थी संसार के कोने कोने से आया करते थे। हारुं-अर्-रशीद का शासन प्रबन्ध बड़ा उत्तम था। सेना उसकी आज्ञा में थी। और प्रान्त के हाकिम वफादार थे। परन्तु हारुं-अर्-रशीद उसके पूर्वजों की भाँति सरल, सुन्दर और संयमशील जीवन व्यतीत नहीं करता था। वह विलास सामग्री में कल्लोल करता था। उसका ठाट बाट मुगल सम्राट अकबर का सा था। कवि, लेखक, भाँड, धूर्त, गुप्तचर और मसखरे लोग उसको घेरे रहते थे। सेठ साहूकारों में कोई धार्मिकता नहीं थी। इसलिए हारुं-अर्-रशीद के बाद उसके

साम्राज्य का पतन होने लगा। प्रान्तोंके अमीर स्वतंत्र हो गए। खलीफा अपने ही लोगों से डरने लगा और आत्म-रक्षा के लिए तुर्क लोगों को अंग-रक्षक नियुक्त करने लगा। नतीजा यह हुआ कि तुर्क लोग ही असली मालिक बन गए और खलीफे केवल नाम के रह गए।

मोहम्मद की मृत्यु के बाद पाँच सौ वर्षो में उसके अनुयायियों ने ऐसी संस्कृति का विकास किया जिसकी तुलना तत्कालीन योरप की किसी संस्कृति से नहीं हो सकती थी। उन्होंने शिक्षा, साहित्य और विविध विद्याओं की अच्छी उन्नति की। शासन प्रबन्ध की उत्तम व्यवस्था की। रोम राज्य के पुराने मार्गो की मरम्मत करवाई। नये मार्गो का तथा नए पुलों और नहरों का निर्माण किया। उन्होंने अपने राज्य में डाक चौकी का संगठन किया जो सफलता पूर्वक चलता रहा। राजधानी में कितने ही स्कूल और कालेज थे। इसी भाँति अन्य नगरों में भी शिक्षा का प्रबन्ध था। अरब लोगों के विश्वविद्यालय योरप के विश्वविद्यालयों से कहीं बढ़ चढ़ कर थे। इनमें बगदाद, काहिरा और कारडोवा के विश्वविद्यालय तो बहुत ही प्रसिद्ध थे। केवल काहिरा के विश्वविद्यालय में ही लगभग बारह हजार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। इनमें कितने ही विद्यार्थी योरप से आये हुए थे। इस प्रकार आक्सफोर्ड, पेरिस और इटली की शिक्षा-संस्थाओं पर मुस्लिम शिक्षा संस्थाओं का प्रभाव अवश्य ही पड़ा होगा। मुसलमानों ने विज्ञान के क्षेत्र में भी अच्छी उन्नति की थी। हिन्दसों का उल्लेख किया ही जा चुका है। उनका ज्योतिष और त्रिकोणमित का ज्ञान भी ऊँचे दर्जे का था। चिकित्सा शास्त्र में उन्होंने बड़ी उन्नति की थी। शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान का भी उन्होंने अध्ययन किया था। वे लोग कुछ बड़े बड़े आपरेशन भी करने लगे थे। उनकी रोगी परिचर्या की अनेक बातें इस समय भी प्रचलित हैं। साहित्य के प्रति उनकी बड़ी देन है। काव्य में उनकी बड़ी रुचि थी। उनकी गल्पकला अच्छी बढ़ी चढ़ी थी। कागज का आविष्कार तो चीनी लोगों ने किया था परन्तु मुसलमानों ने इसको सुधारा था और योरप में इनके द्वारा ही कागज का प्रवेश हुआ था। इससे पूर्व मिस्र के लोग पेपरस पर ग्रन्थ लिखा करते थे जिसके नमूने अब भी लंदन के म्यूजियम में मौजूद हैं।

वाणिज्य और व्यापार में मुसलमानों ने बहुत ही उन्नति की थी। उनके बनाये हुए कपड़ों के विविध नमूने संसार में सबसे बढ़कर थे। सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा और फौलाद का काम अच्छा उन्नत हो गया था। काँच और चीनी के बर्तन बहुत ऊँचे दर्जे के बनाए जाते थे। रंगने की कला का ज्ञान खूब उन्नत हो चुका था। चमड़े को पकाने, बनाने और साफ करने में ये लोग बड़े निपुण थे। सारे यूरोप में इसकी प्रशंसा होती थी। वे कई प्रकार का शराब बनाते थे और उनके बनाये हुए रस, शर्बत और

तत्व सर्वत्र प्रसिद्ध थे। इन्होंने सिंचाई के लिए अच्छी व्यवस्था की थी और वैज्ञानिक ढंग से वे खेती करते थे। उनको कई प्रकार के खादों का ज्ञान था। वे यह भी जानते थे कि किस प्रकार की भूमि में कैसा बीज डालना चाहिए। बागबानी में ये लोग बड़े निपुण थे। वे एक पेड़ में दूसरे पेड़ की कलम लगाकर नए प्रकार के फल और पुष्प पैदा करना जानते थे। मुसलमानों ने पूर्व देशों के कितने ही वृक्ष और पौधों का योरप में प्रचार किया था।

ये लोग चीन, अफ्रीका और रूस के साथ व्यापार करते थे। मुसलमान साम्राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक नाना प्रकार की चीजों से भरे हुए कारवाँ आया जाया करते थे। बगदाद, बुखारा और समरकन्द के मेलों में योरप और एशिया से व्यापारिक लोग आया करते थे।

ऐसी सुन्दर संस्कृति की अरब लोगों ने रचना की थी। जब तुर्क लोगों ने मुस्लिम जगत् में प्रवेश किया तब यह नष्ट हो गई। तुर्क लोग जंगली थे। वे समझते थे कि ज्ञान और विज्ञान धर्म के लिए घातक हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ अरब संस्कृति दिखाई दी वहाँ-वहाँ उन्होंने उसको ऐसा नष्ट किया कि जहाँ बाग थे वहाँ बियावान दिखाई देने लगे।

---

# छठा अध्याय
## ईरान, यूनान आदि की संस्कृति

### प्राचीन ईरान

ईरान की संस्कृति भी बहुत पुरानी है। इस देश के उत्तर में कैस्पियन समुद्र और दक्षिण में ईरान की खाड़ी है। ईसा से ५५० वर्ष पूर्व यहाँ साइरस नामक एक प्रतापशाली बादशाह हुआ। उसने कई लड़ाइयाँ लड़ीं और अपने राज्य का विस्तार किया। ईरान के लोगों ने ईराक से लिपि ज्ञान प्राप्त किया और असीरियन लोगों से वास्तुकला, सैनिक-संगठन और साम्राज्य शासन सीखा। धार्मिक क्षेत्र में ईरान की विशेष देन है। इस देश में ज़रथूस्त्र नामक एक धर्म गुरु उत्पन्न हुआ जिसको यूनानी लोग जोरास्टर कहते थे और इसी नाम से इस समय में भी प्रसिद्ध है। इसका मन्तव्य था कि अहुर मज्दा जीवन और प्रकाश का देवता है। उसी से बुद्धि की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार की वह अनेक बातें कहा करता था। इनका संग्रह जिन्दअवेस्ता या अवेस्ता कहलाता है। इसको ईरानियों की बाईबल कह सकते हैं। जोरास्टर का मत है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्तर सत् और असत् प्रवृत्तियों में निरन्तर संघर्ष चला करता है और यह संघर्ष यावज्जीवन चलता है। परन्तु अन्त समय असत् प्रवृत्तियों पर सत् प्रवृत्तियाँ विजय प्राप्त करती हैं। मृत्यु के बाद आत्मा के कर्मों की जाँच होती है। यदि सत्कर्म अधिक हुए तो स्वर्ग प्राप्त होता है अन्यथा नर्क। जोरास्टर के जीवन काल में उसके अधिक अनुयायी नहीं बने परन्तु उसके देहान्त के बाद उनकी संख्या बहुत जल्दी-जल्दी बढ़ी। इस धर्म के प्रचार में बहुत बाधायें आईं। सम्भव है कि जोरास्टर स्वयं किसी धर्म-युद्ध में मारा गया हो। फिर जोरास्टर का मत ईरान का सार्वदेशिक धर्म बन गया।

### रोम के साथ संघर्ष

रोम साम्राज्य के पूर्वी प्रान्तों को जो ईराक और अरमेनिया में स्थित थे ईरानी लोग प्रायः खूंदा करते थे। ईरानी लोग असभ्य नहीं थे। उनकी सभ्यता रोम से भी पुरानी थी। रोम वालों ने अनेक देशों को जीत कर अपने राज्य में मिलाया था और अनेकों से ही उनका संघर्ष हुआ था। ईरान के साथ उनका खूब सम्पर्क और संघर्ष रहा। परन्तु इस देश को वे अपने राज्य में नहीं मिला सके। अलेक्जेण्डर ने ईरान को जीत कर अपने राज्य में मिलाया था। परन्तु यह फिर स्वतन्त्र हो गया।

ईरान की स्थिति हमेशा डगमगाया करती थी। कारण यह था कि पूर्व की ओर से एशिया की गृह-हीन जातियाँ और पश्चिम की ओर से रोमन सेनायें इस पर निरन्तर आक्रमण किया करती थीं। रोम के साथ ईरान की पुरानी शत्रुता थी। यह शत्रुता पाँचवीं और छठी शताब्दी में विशेष रूप से जाग्रत और प्रवल हो गई। कारण यह था कि ईरान के वादशाह जोरास्टर मत के कट्टर अनुयायी थे। उधर रोम लोगों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था और वे चाहते थे कि उनकी समस्त प्रजा ईसाई धर्म ग्रहण कर ले। पहले इन दोनों देशों में व्यापार या प्रदेश के लिये लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। अब धर्म के नाम पर युद्ध होने लगे।

इसी समय रोम राज्य को पश्चिम की ओर से जर्मन लोग और पूर्व की ओर से हूण और स्लाव लोग दवा रहे थे। यह अच्छा मौका देख कर ईरान के वादशाह खुसरो द्वितीय ने सेना चढ़ाई। ईराक और अरमेनिया को जीत कर इसने सीरिया में प्रवेश किया और ऐण्डियो तथा दमस्कस को जीत कर ६१४ में उसने जरुसलम को घेर लिया। अगले वर्ष एशिया माइनर में होकर कूच करता हुआ वह कस्तुन्तुनिया जा पहुँचा और फिर मिस्र में एलेक्जेन्ड्रिया पर कब्जा कर लिया। इस समय रोम का सम्राट हीरेक्लियस था। पहले तो वह घबरा गया परन्तु फिर साहस करके उसने लड़ाई की तो खुसरू का जीता हुआ सारा प्रदेश उसने वापस छीन लिया। इन युद्धों का परिणाम यह हुआ कि रोम और ईरान दोनों लड़ते-लड़ते कमजोर हो गये और जब अरब लोगों ने आक्रमण किया तो ये दोनों ही दव गये।

मुसलमानों की विजय के वाद ईरान की प्राचीन सभ्यता विलीन हो गई और नई मुस्लिम सभ्यता वहाँ स्थापित हुई। वगदाद के खलीफों के जमाने में ईरान ने बड़ी उन्नति की। हारु-अर्-रशीद के जमाने में यह देश मुस्लिम संस्कृति और शक्ति का केन्द्र बन गया और अपने वैभव तथा ऐश्वर्य से जगमगाता हुआ सारे संसार को चकित करने लगा।

**योरप में सभ्यता का प्रवेश**

यूरोप में सभ्यता का प्रचार मिस्र, क्रीट, लघु एशिया, लेवेनन और यूनान से हुआ है। इनमें सवसे प्राचीन सभ्यता मिस्र की है। उसके पश्चात् क्रीट की सभ्यता का उदय हुआ। मेसापोटामियाँ (ईराक) की प्राचीन सभ्यतायें भी बहुत पुरानी मानी जाती हैं। यहाँ की सभ्यताओं के तत्व यूरोप में लघु एशिया के द्वारा पहुँचे थे। लघु एशिया के उत्तर पश्चिमी समुद्र तट के निकट ट्राय नामक नगर उस समय बहुत उन्नत और सभ्य था। वेवीलोनियाँ की सभ्यता के कई तत्वों ने इस नगर के द्वारा यूरोप में प्रवेश किया था। लेवेनन प्रदेश में फिनीशियन जाति का निवास था। ये लोग समुद्र मार्ग और स्थल मार्ग से मिस्र, क्रीट, लघु एशिया, ईराक़ और

पश्चिम में स्पेन के साथ व्यापार करते थे। इसके पीछे यूनान की सभ्यता का जन्म और विकास हुआ, एवं मिस्र, फिनीशिया, क्रीट और यूनान की संस्कृतियों ने यूरोप को सभ्यता का मार्ग दिखाया।

**क्रीट की सभ्यता**

ऐसा माना जाता है कि ईसा से लगभग १८०० वर्ष पूर्व क्रीट टापू के निवासी अच्छे उन्नत और सभ्य वन चुके थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि क्रीट की सभ्यता मिस्र की समकालीन है। उस समय के राज-प्रासाद, चित्र और वर्तन इस वात के प्रमाण हैं कि ईसा से लगभग १७००. वर्ष पूर्व क्रीट की सभ्यता अच्छी पुष्ट हो चुकी थी। तत्कालीन राज-प्रासादों में स्नानागार वने हुए मिले हैं जिनकी दीवारें वड़ी चिकनी हैं, और इनमें पानी के निकास का प्रवन्ध इतना उत्तम है कि उसको देखकर वर्तमान इंजीनियरों को भी आश्चर्य होता है। इन लोगों का मत है कि उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व इतने अच्छे जल निकास संसार में कहीं नहीं वने थे। यहाँ की मोरियाँ और नालियाँ ऐसी वनी हुई हैं कि इस समय भी उनका उपयोग किया जा सकता है। इस विपय में यह वात स्मरण रखने के योग्य है कि लंदन और पेरिस में सोलहवीं शताब्दी तक गन्दगी को वहाने के लिये भूगर्भित नालियाँ नहीं वनी थीं। लेकिन इससे तीन हजार वर्प पूर्व क्रीट के निवासियों ने ऐसी नालियाँ वना ली थीं। उस समय क्रीट की राजधानी नौसौस नगरी थी। उस समय के राजप्रासादों में पुरुषों और स्त्रियों के वड़े मनोहर चित्र वने हुए हैं जो कई दृष्टि से वर्तमान लोगों के चित्र मालूम होते हैं। शायद क्रीट में ही सवसे पहले ऐसे यन्त्र का निर्माण हुआ हो जो वायु में उड़ सकता था। इस विपय की कई यूनानी कहानियाँ हैं। क्रीट के लोगों ने मिस्र से वहुत कुछ सीखा था और कई वातें मिस्र के लोगों ने भी क्रीट से सीखी थीं। उस समय यूनान के दक्षिण तट पर भी सभ्यता का उदय होने लग गया था। इस प्रदेश में माइसिना नामक एक नगर था। वहाँ खुदाई करने से ऐसे अनेक पदार्थ मिले हैं जिनसे प्रकट होता है कि ईसा से लगभग २००० वर्प पूर्व वहाँ सभ्यता अच्छी उन्नत अवस्था प्राप्त कर चुकी थी। उस समय वहाँ वहुत अच्छे आभूपण, कवच, मुकुट और जवाहिरात वनने लग गये थे।

**फिनीशियन सभ्यता**

फिनीशियन लोग संसार के अत्यन्त प्राचीन नाविक और व्यापारी माने जाते हैं। उनका देश समुद्र तट पर था। यहाँ से कुछ ही दूर पर लेवेनन का पहाड़ था। इसलिये स्वभावतः फिनीशियन लोगों को समुद्र पार करके दूसरे देशों के साथ अपने जीवन निर्वाह के लिये व्यापार करना पड़ता था। ये लोग अपनी नावों को प्रायः पतवारों से चलाते थे। फिर कभी-कभी वादवानों का भी उपयोग होने लगा। अभी कम्पास नहीं

बना था। इसलिये फिनीशियन लोग रात्रि में नावें नहीं चलाते थे। लेकिन जब आकाश स्वच्छ होता था तो ये लोग ध्रुवतारे से दिशा मालूम करते थे। उस समय व्यापार प्रायः पदार्थों के विनिमय द्वारा होता था और जिसका दिल चाहे वह व्यापार कर सकता था। अभी व्यवसाय संगठित नहीं था। प्रत्येक नाविक अपने समुद्र मार्ग को गुप्त रखता था। किसी को बतलाता नहीं था। फिनीशियन लोगों ने हिसाब की विधि एसीरियन लोगों से सीखी थी। फिर ये लोग स्वयं अच्छे हिसाबदां हो गये। इन लोगों का व्यापार बहुत विस्तृत था। इनके जहाज अरब, मिस्र, स्पेन, यूनान, ईरान तथा भारतवर्ष तक पहुँचते थे। तिजारत हाथी दाँत, गर्म मसाला, जवाहिरात, सन, रुई, सोना, आबनूस, ताँबा, श्वेत पत्थर, गलीचे और गुलामों की होती थी। फिनीशियन लोग दूर-दूर देशों में फैल गये थे। कई जगह इन लोगों ने अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये थे। कहीं इनकी व्यापारिक कोठियाँ थीं और कई स्थान इन्होंने जीत भी लिये थे। इस प्रकार ये लोग सिसली, स्पेन, उत्तर अफ्रीका, कार्थेस और लघु एशिया में फैले हुये थे।

## यूनान की सभ्यता

### आर्यों का प्रवेश

ईसा से दो हज़ार वर्ष पूर्व तक यूनान जंगली देश था। इसके उत्तर में मेसीडोनिया था जहाँ भी उल्लेख के योग्य सभ्यता नहीं थी। फिर उत्तर की ओर से एक आर्य जाति ने मेसीडोनिया में होकर यूनान देश में प्रवेश करना शुरू किया। आक्रमणकारियों के कई दल समय-समय पर आकर देश में घुसने लगे और यत्र-तत्र इनकी बस्तियाँ बस गईं। पाँच सौ वर्ष तक यह क्रम चलता रहा। फिर जोर के आक्रमण हुए और समस्त यूनान को इस नई जाति ने आक्रान्त कर लिया। आक्रमणकारियों में भी कई उप-जातियाँ थीं। इनमें से एक लघु एशिया में जा घुसी और उसने ट्राय नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व लघु एशिया, यूनान और उससे दक्षिण के सब टापुओं को इस नई जाति ने जीत लिया और वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। ये यूनानी लोग आर्य जाति के थे। ये लोग नाव चलाने का कौशल नहीं जानते थे। फिर भी इन्होंने ज्यों-त्यों यूनान, एशिया और दक्षिण के टापुओं पर कब्जा कर लिया। इन लोगों का प्रारम्भिक व्यवसाय पशुपालन था। घास की खोज में ये लोग इधर-उधर घूमा करते थे। कालान्तर में इन्होंने खेती करना सीख लिया और फिर एक स्थान पर बस गये। आरम्भ में खेती का काम स्त्रियां करती थीं। यहाँ तक कि हल भी वे ही जोतती थीं। पुरुष पशुओं को चराते थे और आवश्यकता होने पर युद्ध में लड़ते थे।

### शासन और कानून

आरम्भ में यूनानियों की हर एक उपजाति का एक राजा होता था। परन्तु इन लोगों में धनवान और निर्धन का विशेष भेद नहीं था। राजा अपना काम दो समितियों की सहायता से करता था। एक समिति अपनी जाति के झगड़े और मामले निपटाया करती थी और दूसरी युद्धों के विषय में सलाह दिया करती थी। उस समय यूनानियों में कोई कानून या व्यवस्था नहीं थी। ईसा से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व तक प्राचीन रिवाज ही कानून माना जाता था। शनैः-शनैः लोग कानून की आवश्यकता अनुभव करने लगे और कुछ कानून बने भी। परन्तु अभी यूनानियों को लिखना पढ़ना नहीं आता था। इसलिये कानून निश्चित और स्थाई रूप धारण नहीं कर सका। फिर भी यूनानियों ने इस कठिनाई को पार करने का यत्न किया। उन्होंने ऐसे लोगों को तलाश किया जिनकी स्मृति बहुत अच्छी थी। ऐसे लोग नये कानून को कण्ठाग्र कर लिया करते थे और समय पड़ने पर उसको पहाड़ों की भाँति सुना दिया करते थे।

### नगर राज्य

कालान्तर में अनेक गाँव मिलकर एक नगर बन गया। आत्मरक्षा के लिए लोगों ने यह जरूरी समझा कि सब मिल कर रहें। इस प्रकार यूनान में नगर राज्यों का आरम्भ हुआ। ऐसे हर एक राज्य में एक राजा होता था जो दो समितियों के द्वारा राज्य का संचालन करता था। एक समिति जाति के सरदारों की होती थी और दूसरी गरीबों और कृषकों की। प्रधानता सरदारों की समिति की थी। क्योंकि सरदारों के पास ही धन और बल था। दूसरी समिति के लोगों के पास कोई शक्ति नहीं थी। इस भाँति अनेक नगरराज्यों में विभक्त हो जाने के कारण यूनान केवल कहने के लिए ही एक देश था। वास्तव में यह अनेक राज्यों का समूह था और इसलिए निर्बल राष्ट्र था। शनैः-शनैः नगर-राज्य परस्पर मिलने लगे और इनके कई संघ बन गये। फिर सारा यूनान दो संघों में विभक्त हो गया। एक संघ स्पार्टा के नेतृत्व में बना और दूसरा एथेन्स के।

### निरंकुश शासक

धीरे-धीरे सरदारों की समितियाँ जोरदार होने लगीं और राजाओं की शक्ति क्षीण हो गई। ईसा से लगभग ६५० वर्ष पूर्व एथेन्स में राज-संस्था विलीन हो गई और शासन का संचालन निर्वाचित प्रबन्धकों के द्वारा होने लगा। स्पार्टा में राज-सत्ता बनी रही, परन्तु नियम यह हो गया कि साथ साथ दो राजा राज्य करें और सब काम एक पाँचसदस्यों की निर्वाचित समिति के द्वारा हो। इस समिति को यह भी अधिकार था कि आवश्यकता होने पर वह नरेशों को गिरफ्तार कर सकती थी और उनको अर्थ-दंड भी दे सकती थी। सरदारों के राज्य

में यूनान की बहुत उन्नति हुई परन्तु साथ ही अत्याचार और उत्पीड़न भी कम नहीं हुआ। कृषकों की दशा लगातार हीन होती गई और शासकों के प्रति असन्तोष बढ़ने लगा। सरदारों में भी परस्पर वैमनस्य रहा ही करता था। एक सरदार सदा दूसरे को दबाने का प्रयत्न किया करता था। चतुर सरदारों ने कृषकों के असन्तोष से भी लाभ उठाया। होशियार सरदार कृषकों को उनके सरदार के विरुद्ध भड़-काता और किसानों को सहायता देकर उसकी शक्ति को नष्ट कर देता और स्वयं उनका सरदार बन जाता था। यह स्थिति कुछ अर्से तक चली। परिणाम यह हुआ कि एक सरदार सब सरदारों को दबा कर निरंकुश शासक (तानाशाह) बन गया। इस प्रकार सौ वर्ष तक (६०० से ५०० वर्ष ईसा से पूर्व) यूनान में निरंकुश शासन चलता रहा। निरंकुश शासकों में फिसिसट्रेटस और उसके दो पुत्र प्रसिद्ध हैं। अन्तिम निरंकुश शासक हिप्पियस था जिसको यूनान से भागना पड़ा। इन निरंकुशों में कई जन-हितैषी भी थे। परन्तु यूनान की आम जनता को यह बात पसन्द नहीं थी कि उन पर कोई निरंकुश रूप से शासन करे। लोकमत इस प्रकार के शासन के प्रतिकूल था। यह विरोध इतना उग्र हो गया था कि निरंकुश शासक को चुपके से मार डालना भी एक प्रशंसनीय कार्य समझा जाने लगा था। जब इस शासन का अन्त हुआ तो उन लोगों के स्मारक बनाये गये जिन्होंने एक निरंकुश शासक का वध कर डाला था। इसके पश्चात् एथेन्स में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हुआ। इसके दस वर्ष बाद ही ईरानियों ने यूनान पर हमला किया परन्तु उनको हार कर वापस जाना पड़ा। इसके दस वर्ष बाद ईरानियों ने फिर आक्रमण किया परन्तु फिर भी हार कर वापस लौटे। इससे ईरान का बादशाह जिसका नाम ज़रज़ीज़ था बहुत संतप्त और क्रुद्ध हुआ। उसने हुक्म दिया कि समुद्र ने ईरान की नावों को डुबो कर बहुत बड़ा अपराध किया हैं, इसलिये उसको दण्ड दिया जावे। उसने आज्ञा दी कि समुद्र के तीन सौ कोड़े मारे जायें और उसमें सैकड़ों हथकड़ियाँ फेंक दी जावें ताकि ईरान के बादशाह के साथ वह फिर ऐसी गुस्ताखी नहीं करे।

### एथीनिया और स्पार्टा का संघर्ष

ईरान के पहले हमले पर यूनानियों और ईरानियों में बड़ा घमासान युद्ध हुआ था। यह थर्मोपली का युद्ध कहलाता है जो यूनान के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। यह युद्ध एथीनिया में हुआ था। उस अवसर पर एथीनिया के लोगों ने स्पार्टा से सैनिक सहायता की याचना की थी। स्पार्टा से सैनिक मदद आई परन्तु वह युद्ध समाप्त होने के पश्चात् पहुँची एथीनिया के लोग प्रगतिशील थे। स्पार्टा के लोग वीर थे परन्तु रूढ़िवादी अधिक थे। ईरान के हमलों के बाद एथीनिया और स्पार्टा में बहुत अर्से तक परस्पर संघर्ष रहा जिसके कारण दोनों पक्षों की बड़ी क्षति हुई और एथीनियन जनतन्त्र लोगों की दृष्टि में गिरने लगा। परिणामस्वरूप एथीनिया में सामन्त शासन स्थापित हो

गया। परन्तु वह थोड़े ही दिन टिका। यूनानी लोग स्वाधीनता के महत्व को समझते थे। इसलिये उन्होंने फिर जनतन्त्र स्थापित कर लिया। फिर भी स्पार्टा के साथ लड़ाई चलती रही। अन्त में एथेन्स नगर स्पार्टा के लोगों के हाथ से नष्ट होते-होते बचा। फिर भी इसकी प्राचीर ढहा दी गई। अब सारे यूनान पर स्पार्टा का प्रभुत्व स्थापित हो गया जो केवल ईसा से ४०५ वर्ष पूर्व से ३७१ वर्ष पूर्व तक चला। एथीनिया के लोग फिर स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने जनतन्त्र स्थापित कर लिया। इस प्रकार पारस्परिक कलह से यूनान निर्बल होता गया। इस स्थिति को अनुकूल अवसर समझ कर ईसा से ३३८ वर्ष पूर्व मेसीडोनिया के शासक फिलिप ने यूनान पर आक्रमण किया और वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया।

### सिकन्दर महान

मेसीडोनिया यूनान के उत्तर में स्थित है। यहाँ का प्रधान नगर उस समय मेसेडन था। इसीको पश्चिमी एशिया वाले मकदूनिया कहते थे। फिलिप उन्नतिप्रिय शासक था। उसने अपने देश में बड़ी उन्नति की थी। परन्तु यूनान पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के दो वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुत्र एलेग्जेंडर था जो सिकन्दर महान् के नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपने नेतृत्व में यूनानियों का संगठन किया और ईरान पर हमला किया। ईरान का बादशाह दारा तृतीय रणभूमि से भाग निकला। परन्तु उसके ही आदमियों ने उसको मार डाला। एलेग्जेंडर मिस्र, ईरान आदि देशों को जीतता हुआ खैबर की घाटी से भारतवर्ष में घुसा और उसने सतलज तक अपना राज्य कायम कर लिया। वह पूर्व की ओर आगे बढ़ना चाहता था परन्तु महापद्मनन्द की सेना की धाक सुनकर उसकी सेना भयभीत हो गई और उसको वापस मुड़ना पड़ा। रास्ते के देशों को जीतता हुआ वह समुद्र के किनारे किनारे स्थल मार्ग से बेबीलोनियां में पहुँचा जहाँ ज्वर ग्रस्त होकर वह मर गया।

एलेग्जेंडर महान् वीर और विजेता था। परन्तु उसको लगातार विजय प्राप्त होती गई इसलिए उसमें बड़ा दम्भ आ गया था। दारा की मृत्यु के बाद सिकन्दर ने उसकी बेगम से शादी की और इसी प्रकार ९० अन्य उच्चकुलीन ईरानी महिलाओं को जिनके पतियों का युद्ध में वध हो चुका था अपने सेनानायकों के सुपुर्द कर दिया। जो लोग उसके दरबार में जाते थे उनको घुटने के बल बैठकर उसके चरणों का चुम्मन करना पड़ता था। उसने जनता को हुक्म दिया कि उसको ईश्वर माना जावे। जिन लोगों ने इसका विरोध किया उनको प्राण-दण्ड दिया गया। इनमें प्रसिद्ध विद्वान अरिस्टोटल का भतीजा तथा एक ऐसा पुरुष भी शामिल था जिसने एक बार एलेग्जेंडर के प्राणों की रक्षा की थी।

## उसके साम्राज्य का अन्त

एलेग्जेंडर के मरते ही उसका राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। उसके प्रमुख सेना-नायकों ने जहाँ उनका वस चला वहाँ अपना-अपना अधिकार स्थापित कर लिया और स्वतन्त्र राजा वन गये। मेसेडोनिया और यूनान पर एन्टीगोनस ने राज्य जमा लिया। मिस्र पर टोलेमी ने अधिकार कर लिया। भूमध्यसागर से भारत की सीमा तक का प्रदेश सेल्यूकस ने दवा लिया। परन्तु यह अन्तिम राज्य थोड़े ही अर्से तक टिक सका। पूर्व में पार्थियन लोगों ने और पश्चिम में रोमन लोगों ने इसको खदेड़-खदेड़ कर संकुचित कर दिया। अन्त में सेल्यूकस के उत्तराधिकारियों के पास सीरिया ही रह गया।

जव महाराज अशोक का भारत पर राज्य था तव टालेमी मिस्र में, एन्टियोकस थियोस सीरिया में, एन्टीगोनेस मेसीडोनिया में, मेगस सीरीन में, और एलेग्जेंडर एपीरस में राज्य करते थे। इन सब के साथ महाराज अशोक का मित्र भाव था। इन यूनानी राज्यों में धर्म का प्रचार करने के लिये और दुखियों को सहायता देने के लिये तथा रोगियों में मुफ्त औषधियाँ वितरण करने के लिये अशोक ने अपने राजकर्मचारी भेजे थे जो धर्म महामात्र कहलाते थे।

## महाकवि होमर

यूनानियों का आदि व्यवसाय पशु-पालन था, परन्तु जव वे लोग जम कर रहने लगे तो कृषि कार्य भी करने लगे। यूनान में घुसने के वाद इन लोगों ने लघु एशिया के प्रसिद्ध नगर ट्राय का घेरा डाला। यह वहुत अर्से तक चलता रहा। कई युद्धों के वाद यूनानियों की विजय हुई। इस घेरे का, इन युद्धों का और विजय का रोचक वर्णन होमर नामक यूनानी कवि ने अपने सुन्दर काव्य में किया है। इसकी संसार के प्राचीन महाकवियों में गणना है और इसके ग्रन्थ का नाम इलियड है। काव्य की दृष्टि से यह उच्चकोटि की कृति मानी जाती है। इस महाकवि के दूसरे ग्रन्थ का नाम ओडिसी है। इस ग्रन्थ में यूलीसियस की वीर यात्राओं का वर्णन है। यूलीसियस यूनान का प्रसिद्ध योद्धा था जिसने ट्राय की विजय के पश्चात् अपनी यात्राओं में वड़ी वीरता के काम किये थे। महाकवि होमर की कवितायें और गीत उस समय यूनान के प्रत्येक आदमी की जवान पर थे और सैकड़ों वर्षों तक ये वड़े लोकप्रिय थे।

## एकता के सूत्र

यूं तो यूनान अनेक नगर राज्यों में विभक्त था और प्रत्येक राज्य की नीति थी अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग। परन्तु होमर के विषय में सव लोगों की यह राय थी कि वह समस्त यूनान का कवि है और उसकी भाषा समस्त देश की भाषा

है। प्रत्यक्ष में यूनान विभिन्न नगर राज्यों का समुदाय मात्र था। परन्तु फिर भी कुछ ऐसे सांस्कृतिक बन्धन थे जिनके कारण सारे देश में यह भावना अवश्य थी कि यूनान एक देश है। भाषा और काव्य तो सारे देश में एक ही माने जाते थे। इसके अतिरिक्त समस्त यूनान के देवी और देवता भी एक ही थे। डेल्फी पर्वत पर एक ऐसी गहरी कन्दरा थी जिसमें से, लोग समझते थे कि जब कोई बात पूछी जाती है तो, कोई देव उत्तर देता है। और उसकी वाणी हमेशा सत्य होती है। इस स्थान पर एक मेला लगा करता था जिसमें सम्मिलित होने के लिये विभिन्न राज्यों के लोग आया करते थे और प्रत्येक राज्य का व्यक्ति डेल्फी गुफा पर जाकर वहाँ के पुजारी की मार्फत प्रश्न पूछ सकता था। इस स्थान पर सब यूनानी लोग एक तरह का अनुभव करते थे। डेल्फी में एपोलो (सूर्य) का मन्दिर था जिसका प्रवन्ध एक समिति करती थी। इस समिति में प्रायः सब राज्यों के सदस्य थे। इस प्रकार के मन्दिर अन्य स्थानों पर भी थे और वहाँ पर भी मेले लगते थे। इनका प्रवन्ध भी उसी भाँति होता था जैसे डेल्फी के मंदिर का। इसी भाँति यूनान के खेलों का भी सार्वदेशिक महत्त्व था। वास्तव में यूनानी लोग ज्ञान और शरीर दोनों की समान चिन्ता करते थे। इसलिये शरीर-पुष्टि और साहस-वृद्धि के लिये ये लोग प्रायः ओलिम्पिया स्थान पर खेलों का आयोजन किया करते थे। ये खेल ओलियाम्पिक खेल कहलाते थे। और इनमें सम्मिलित होने के लिये प्रत्येक नगर-राज्य से लोग आया करते थे। इनका प्रवन्ध और संचालन भी एक समिति के द्वारा हुआ करता था जिसमें प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व रहता था। जब ट्राय नगर की विजय का प्रश्न उपस्थित होता था तो सब यूनानी लोग मिल जाया करते थे और सबका ध्येय एक हो जाता था। यूनानी लोग यह भी समझते थे कि उनके अतिरिक्त संसार के सारे मनुष्य जंगली और असभ्य हैं। केवल यूनानी ही शिक्षित और सभ्य हैं। इस भावना से भी उनके अन्दर एकता की पुष्टि होती थी। यूनानियों में अपूर्व देश प्रेम था। अपने देश की रक्षा के लिये लोग प्राणोत्सर्ग करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

**काव्य की उन्नति**

ईसा से लगभग ६५० वर्ष पूर्व यूनान में राजाओं का शासन समाप्त हो गया फिर कुछ अर्से तक सामन्त शासन चला, फिर निरंकुश शासन रहा और तदनन्तर जनतन्त्र स्थापित हुआ। इसके पूर्व यूनानी लोगों ने फिनीशियन व्यापारियों से सरल और ध्वनि लिपि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। यूनान में कागज मिस्र से गया था, परन्तु यह बिवलोस नामक फिनीशियन नगर के द्वारा वहाँ पहुँचा करता था। इसलिये यूनान में कागज का नाम बिवलोस था और इस पर लिखे हुए ग्रन्थों का नाम बिवलिया हुआ। इसी का रूपान्तर बुक या बाइबिल है। यूनान में सबसे पहले साहित्य की ही

उन्नति हुई थी। हिमाच्छादित ओलिम्प पर्वत की छटा से इनकी कल्पना को प्रेरणा मिली होगी और इनमें काव्य स्फूर्ति हुई होगी। होमर के ग्रन्थ उसी काल की सृष्टि हैं। इसी प्रकार भारतवर्ष में भी सबसे पहले आर्य लोगों ने साहित्य के क्षेत्र में ही उन्नति की थी। यह आदि स्फूर्ति हिमालय के हिम शृंगों को, कलकल निनादिनी पंजाब की नदियों को, और वहां के सूर्योदय और सूर्यास्त की मधुर अरुणिमा को देखने से हुई होगी। होमर के समय में ही एक दूसरा कवि हुआ था जिसका नाम हेस्योड़ था। यह जन्म से बढ़ई था। इसने अपने काव्य में तत्कालीन शासकों के अत्याचार का विरोध किया है और रिश्वतखोर सामन्तों की धज्जियाँ उड़ाई हैं। इसने लिखा है कि शासन सूत्र ऐसे व्यक्तियों के हाथ में है जो एक और आधे में तमीज नहीं कर सकते।

### यूनानियों का विस्तार

जनतन्त्र के स्थापित होने से पहले ही यूनानियों का व्यापार बहुत बढ़ चुका था। इनकी सैनिक शक्ति भी प्रबल मानी जाती थी। अब ये लोग समुद्र से वाकिफ हो गए थे और इनके छोटे-छोटे जहाज दूर-दूर तक पहुँचा करते थे। फ्रांस, स्पेन और कोकेशिया में इन लोगों ने अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए थे। इटली के दक्षिण भाग में भी बहुत यूनानी जा बसे थे। इटली का नेपल्स नगर यूनानियों ने ही बसाया था। इसका असली नाम नीपोलिस अर्थात् नया नगर था। सिसिली टापू में यूनानियों ने सिराक्यूज नामक नगर की स्थापना की थी। इस प्रकार जब व्यापार बहुत बढ़ गया तो यूनान में जहाज बनने लगे और सिक्के का चलन जारी हुआ। ईसा से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व यूनान में संगीत और दर्शन की भी खूब उन्नति हुई थी। थेलस नामक विद्वान यूनान का प्रथम दार्शनिक माना जाता है।

### पेरीक्लीज के कार्य

जनतन्त्र काल में यूनान बहुत उन्नत हुआ। इस काल का सबसे बड़ा नेता पेरीक्लीज माना जाता है। इसने लगभग तीस वर्ष तक यूनान का नेतृत्व किया और इसके समय में देश की सर्वांगीण उन्नति हुई। पेरीक्लीज वास्तव में केवल ऐथेन्स का नेता था। स्पार्टा ऐथेन्स में शामिल नहीं था। सम्पूर्ण ऐथेन्स की आबादी उस समय दो लाख अस्सी हजार थी जिनमें एक लाख दास थे और बीस हजार विदेशी। ये लोग नागरिक नहीं माने जाते थे। इसलिए इनको राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। शेष एक लाख साठ हजार जनता स्वतन्त्र थी। इनमें लगभग चालीस पचास हजार व्यक्ति ऐसे थे जो सर्वांश में नागरिक माने जाते थे। शासन का संचालन दो समितियों के द्वारा होता था। एक का नाम असेम्बली था और दूसरी का नाम कौंसिल। असेम्बली के एक वर्ष में दस अधिवेशन हुआ करते थे। इसका प्रत्येक स्वतन्त्र नागरिक सदस्य था।

जजों की संख्या दो सौ थी। यूनानियों को अपने देश का बड़ा अभिमान था। देश सेवा को ये लोग अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए यूनान के धनाढ्य नागरिकों ने बड़ी-बड़ी संस्थायें बनाई, साहित्य को प्रोत्साहन दिया, कला और संगीत की पुष्टि की और देश भक्तों के भव्य स्मारक बनवाये। कितने ही कलाविद और शिलाविदों को वृत्तियाँ दीं। पेरीक्लीज़ ने अपने समय में उन देशभक्त योद्धाओं के सुन्दर स्मारक बनवाए जिन्होंने ईरानी अक्रमण के अवसरों पर देश रक्षा करते हुए प्राणों का उत्सर्ग किया था। ईरानियों ने कितने ही मन्दिरों को भी ध्वंस कर डाला था जो एक्रोपोलिस नामक रमणीय पहाड़ी पर स्थित थे। इनका भी पेरीक्लीज ने पुनर्निर्माण करवाया था। पेरीक्लीज़ के युग में फिरियस नामक एक अद्भुत शिलाविद था। इसने सफेद पत्थर की ऐसी मूर्तियाँ बनाई जिनमें एथेन्स में प्रचलित त्यौहारों के दृश्य दिखाए गए थे। इन मूर्तियों की मुद्राओं में सरलता और गम्भीरता है तथा परिधानों के सर्वट बड़ी कला से दिखाए गए हैं। इस कलाकार की बनाई हुई मूर्तियाँ इस समय ब्रिटिश म्यूजियम में रक्खी हुई हैं। इनमें कई मूर्तियाँ इतनी सुन्दर और आकर्षक हैं कि उनको देखकर दर्शकगण चकित हो जाते हैं। पेरीक्लीज़ के समय में चित्रकारी, साहित्य, दर्शन, गणित, औषधोपचार और विज्ञान में यूनान ने बड़ी उन्नति की। उस काल में बड़े सुन्दर और दुखान्त नाटक लिखे गए जो खुले मैदान में खेले जाते थे। उनको देखने के लिए दर्शकों को ऐसी पंक्तियों में बिठाया जाता था जो नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः ऊँची होती जाती थीं। इस काल के प्रसिद्ध इतिहासकार हेरोडोटस और ट्यूसीडाइडीज़ थे। इसी युग में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हुआ जो सोफिस्ट कहलाता था। ये लोग प्रत्येक विषय के मर्म तक पहुँचना चाहते थे। रूढ़ियों के विरोधी थे। इनमें बड़े बड़े वक्ता और लेखक थे। यूनान में सुन्दर गद्य शैली इन्होंने ही जारी की थी। ये लोग नगरों में और गाँवों में इधर-उधर घूमा करते थे। इनमें एक दो ऐसे भी थे जिनको ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह था। उस समय ऐसे लोगों को बड़ी यातना भुगतनी पड़ती थी।

**दास प्रथा**

यूनानी संस्कृति में महादोष यह था कि वहाँ दास प्रथा जारी थी। इसके सिवाय स्त्रियों को समान अधिकार नहीं थे। यूनानियों को जल निकास का भी ज्ञान नहीं था। साबुन या उपटन को ये लोग नहीं जानते थे। दासों के साथ बड़ा अत्याचार होता था। इनमें से कुछ मन्दिर या अपने मालिकों के मकान बनाने का काम करते थे। दस पाँच दास कभी कभी स्वतन्त्र भी कर दिए जाते थे लेकिन अधिकांश दास इतना कठिन और अधिक काम करते थे कि ये लोग प्रायः दो तीन साल में मर जाया करते थे। यूनान में ऐसे अनेक लोग थे जिन्होंने यह प्रश्न

उठाया था कि दास प्रथा जारी रहनी चाहिए या नहीं। इस काल में एथेन्स और स्पार्टा में जो निरन्तर युद्ध हुए उनके कारण लोग सिमिट कर रक्षार्थ एथेन्स में या उनके आस पास आ बसे। इस प्रकार आबादी के बढ़ जाने से नगर में बीमारी फैली और उसके फलस्वरूप पेरीक्लीज़ की मृत्यु हो गई।

## सुक्रात आदि विद्वान

इसी समय यूनान में यूरोप का प्रसिद्ध दार्शनिक सुक्रात ( सोक्रेटीज ) उत्पन्न हुआ। यह नगर में घूमा करता था और लोगों से विभिन्न प्रश्न पूछा करता था और अनुभव करवाता था कि उनको या तो किसी विषय का ज्ञान ही नहीं है और अगर है तो बहुत उथला सा। इन प्रश्नों के कारण यूनान की उस समय बड़ी प्रसिद्धि हुई और डेल्फी की कन्दार से आवाज आई कि सुक्रात यूनान का सबसे बड़ा विद्वान है। उसकी कीर्ति के कारण कई लोग उसके शत्रु हो गये और उस पर लांछन लगाया कि वह नवयुवकों को गुमराह करता है। अन्त में उसको विष का प्याला पीने पर विवश किया गया। सुक्रात का शिष्य एरिस्टोटल या अरस्तु था और अरस्तु का शिष्य था प्लेटो। ये दोनों भी यूनान के ही नहीं लेकिन संसार के उच्च कोटि के विद्वानों में गिने जाते हैं। इन्होंने प्रायः सब मुख्य विषयों पर अपने विचार प्रगट किये हैं। शिक्षा, राजनीति, समाज शास्त्र, साहित्य, काव्य आदि पर इनके विचार इन विषयों के आधार माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त यूनान में अन्य कई ऐसे विद्वान हुये जिन्होंने विद्या के कई क्षेत्रों में मार्मिक खोज की और संसार के ज्ञान को प्रेरणा प्रदान की। एटिसटार्कस नामक विद्वान ने ईसा से २५० वर्ष पूर्व सबसे पहले यह मन्तव्य प्रकट किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। भारतवर्ष में यही सिद्धान्त ईसा से चार सौ वर्ष पश्चात् आर्य भट्ट ने स्थिर किया था। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उसने यह सिद्धान्त यूनानियों से लिया हो। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में कोपरिनिकस नामक पोलेण्ड के विद्वान ने भी यही बात दोहराई। परन्तु इस विद्वान को भी अरिसटार्कस के सिद्धान्त का कुछ पता नहीं था। हिप्पोक्रेटीस नामक यूनानी विद्वान ने ईसा से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व औषधि शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र पर कई ग्रन्थ लिखे। उसके सिद्धान्तों और साधनों का प्रचार सोलहवीं शताब्दी तक जारी रहा। वर्तमान चिकित्सा शास्त्र भी उसकी कई बातों को स्वीकार करता है। भारतवर्ष के प्रसिद्ध वैद्य चरक और सुश्रुत हिप्पोक्रेटीस से कई सौ वर्ष बाद हुये हैं। परन्तु उनकी पद्धति यूनान से बहुत भिन्न है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने यूनान से कुछ सीखा हो। चरक और सुश्रुत से पहले भारतवर्ष में अनेक विद्वान वैद्य हो चुके थे। इन दोनों वैद्यों ने प्राचीन वैद्यों के ज्ञान का संग्रह किया होगा और अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर उसको व्यवस्थित करके अपने ग्रन्थों

में समाविष्ट कर दिया होगा। यूनान राज्य में यूक्लिड नामक प्रसिद्ध गणितज्ञ था। यह एलेग्जेंड्रिया का रहने वाला था और वहाँ के विश्वविद्यालय में अध्यापक था। इसकी रची हुई रेखागणित इस समय भी सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है।

## यूनानी संस्कृति का विस्तार

योरप के ज्ञान और विज्ञान का आधार यूनान का ज्ञान है। एलेग्जेंडर के वाद यूनान का गौरव नष्ट हो गया। सदियों तक योरप यूनान को भूला रहा। फिर यूरोप में जागरण हुआ तो यूनान के प्राचीन ज्ञान और गौरव का पुनः अध्ययन होने लगा और समस्त यूरोप ने यूनानी विद्वानों के वतलाये हुये मार्ग पर चलना शुरू किया। इंगलैण्ड का प्रसिद्ध कवि शेले कहा करता था कि हम लोग सव वास्तव में यूनानी हैं। हमारे कानून का, साहित्य का और कला का मूल यूनान में है। एलेग्जेंडर ने यूनानी संस्कृति का खूब प्रचार किया। वह जिधर विजय प्राप्ति के लिये गया उधर अपने साथ अनेक विद्वानों को ले गया। इन्होंने पराजित देशों की संस्कृति का अध्ययन किया और अपनी संस्कृति का प्रचार किया। एलेग्जेंडर ने मिस्र, ईरान, पंजाव और सिन्ध पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इनके वीच के अन्य देश स्वतः ही उसके अधीन हो गये थे। इस प्रकार उसकी विजय वाढ़ में योरप, अफ्रीका और एशिया; इन तीन महाद्वीपों के वड़े-वड़े और उन्नत देश दव गये थे। इन सव भू भागों में वहुत अर्से तक एलेग्जेंडर की विजय के कारण यूनानी संस्कृति का दौर-दौरा रहा। परन्तु भारत पर यूनानियों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। भारत से यूनानियों के भाग जाने के वाद उनकी केवल दो तीन वातें यहाँ रह गई। भारत के ज्योतिप ने यूनान से कुछ वातें लीं। भारत के ज्योतिप का होरा शव्द यूनान से लिया हुआ है। इस शव्द का अर्थ है—चौवीस घंटे का समय। इसी प्रकार भारतीय नाटक में यवनिका (पर्दा) स्पष्ट यूनानी है। कुछ सदियों तक हमारे यहाँ यह भी प्रथा प्रचलित हो गई थी कि वड़े-वड़े राजाओं के अन्तःपुर में यूनानी लड़कियाँ परिचारिकाओं का काम करती थीं। महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जब शिकार को जाते थे तो सशस्त्र यूनानी लड़कियाँ उनके साथ अङ्ग-रक्षिकाओं की हैसियत से रहा करती थीं। ईरान में कई सदियों तक यूनानी सभ्यता का प्रावल्य रहा और मिस्र तो इस्लाम के उदय से पहले राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं सांस्कृतिक दृष्टि से भी एक प्रकार से यूनानी प्रान्त वन गया था। उस समय एलेग्जेंड्रिया यूनानी सभ्यता का केन्द्र माना जाता था। पश्चिमी एशिया में ईरान से ऊपर का भाग भी यूनानी प्रान्त ही था। यहाँ पर यूनानियों की वड़ी-वड़ी वस्तियाँ थीं, यूनानियों का ही राज्य था और उनकी भाषा की प्रधानता थी। यह प्रान्त उस समय वेक्ट्रिया कहलाता था। यहाँ के यूनानी राजाओं ने भारत पर कई हमले किये थे और अपना राज्य जमा लिया था। उस समय यूनान का राज्य और प्रभाव काशी

से एलेग्जेंड्रिया तक फैला हुआ था। एलेग्जेंड्रिया टोलेमी वंश के राज्यकाल में संसार का प्रधान नगर बन गया था। यहाँ जहाजों को चेतावनी देने के लिये ३७० फीट ऊँचा प्रकाश-स्तम्भ बनाया गया था जो चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ तक मौजूद था। कहा जाता है कि इसी नगर में संसार के सर्व प्रथम विद्यालय की स्थापना हुई थी। इसको उस समय म्यूजियम कहते थे। यूक्लिड इसी संस्था में अध्यापक था। दूसरे विद्वान का नाम था इरेटोसथीनीज। इसने पृथ्वी के व्यास का हिसाब लगाया था। उसके हिसाब में केवल पचास मील का अन्तर था। एक और विद्वान था जिसका नाम हेरो था। इसके लिये भी कहा जाता है कि इसने सबसे पहले भाप का इंजन बनाया था। परन्तु उसका प्रचार नहीं हुआ। एलेग्जेंड्रिया में ही सबसे बड़े और महत्वपूर्ण पुस्तकालय की स्थापना हुई थी। इसमें हजारों ग्रन्थ थे। इस पुस्तकालय का अध्यक्ष केलीमेकस था। उस समय एक पूरा ग्रन्थ एक लम्बे कागज पर लिखा जाता था। भारतवर्ष में जन्म-पत्रिका लिखने की यही विधि अब तक प्रचलित है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह विधि हमने यूनान या अलेग्जेंड्रिया से ग्रहण की हो। केलीमेकस ने इस विधि का सुधार किया। उसने लम्बी पत्रिकाओं को काट-काट कर पृष्ठ बना दिये। इस प्रकार एक ग्रन्थ के कई पृष्ठ हो गये। उस युग में जिल्द नहीं बाँधी जाती थी। पृष्ठ अलग-अलग होते थे और शायद दो लकड़ी के तख्तों में दबाकर रक्खे जाते थे। भारतवर्ष में हस्तलिखित ग्रन्थ इसी शक्ल में मिलते हैं। इन पन्नों के बीच में छिद्र करके एक धागा पिरो दिया जाता था जिससे ये तितर-बितर या अस्त व्यस्त नहीं होते थे। धागे के दोनों सिरों में गांठ या ग्रन्थी लगा दी जाती थी। इसीलिये पुस्तक का नाम ग्रन्थ हुआ।

पहले यूनानियों में कट्टरता थी परन्तु अब ज्ञान और विद्या के प्रचार से उनमें उदारता आ गई थी। उस समय सोक्रेटीज और अनेग्जेगोरास जैसे विद्वानों को नवीन विचार प्रकट करने के अपराध में विष पान करना पड़ा था परन्तु अब नवीन विचारों का अभिनन्दन किया जाता था। यहाँ तक कि धार्मिक क्षेत्र में भी यूनानी लोग बहुत उदार हो गये थे। यूनानी लोग अपने और मिस्र के देवताओं में कोई भेद नहीं समझते थे। यहूदियों के प्राचीन धर्म-ग्रन्थ का यूनानी भाषा में अनुवाद किया गया था। यूनानी लोग देश और जाति को तो विशेष महत्व देते थे परन्तु धर्म के विषय में उदार हो गये थे। यही कारण था कि यूनानी देशों में ईसाई मत का आसानी से प्रचार हो सका।

---

# सातवाँ अध्याय
## रोम की संस्कृति

### रोम नगर

ऐसा कहा जाता है कि ईसा से लगभग सात सौ आठ सौ वर्ष पहले रोम नगर की स्थापना हुई। इससे पहले इटली के लोग अति प्राचीन काल से गुफाओं में रहते थे। कालान्तर में इनका सभ्य जातियों से सम्पर्क हुआ और फिर मिस्र और क्रीट में बनी हुई चीजें इटली में जाने लगीं। इटली के समीप कोर्सिका नामक टापू में एशिया माइनर की एक जाति आकर बस गई जिसने इटली में एशिया और यूनान के रीति-रिवाज जारी कर दिये। उन्हीं के प्रभाव से इटली में तांबा, पीतल का प्रयोग प्रचलित हुआ और ग्रीक भाषा का प्रचार हुआ। फिर ईसा से ७५३ वर्ष पूर्व पैलेस्टाइन पहाड़ी पर बस्तियाँ बस गईं जिनके मिल जाने से रोम नगर बन गया। कुछ समय तक रोम नगर पर कोर्सिका के नरेशों का शासन रहा परन्तु फिर रोमन लोग स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने गणतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।

### गण राज्य

रोमन लोगों ने यूनानियों से बहुत कुछ सीखा। यूनान से इन्होंने जहाज बनाना सीखा और इनसे ही लिपि ज्ञान प्राप्त किया जो फिर सारे यूरोप में प्रचलित हो गया। रोम के सिक्के और गज आदि भी यूनान से ही लिये गये थे। रोम लोगों में ग्रीक लोगों की-सी कल्पना नहीं थी। ये हिसाब लगाकर काम करने वाले आदमी थे। इसलिए इन्होंने साहित्य और कला आदि यूनान से ही ग्रहण कर लिए। रोम का गणतन्त्र सुव्यवस्थित राज्य था और इनका विधान भी अच्छा उन्नत था। रोम का शासन वहाँ के प्रतिष्ठित नागरिकों के हाथ में था। इन्होंने अपने कानून पीतल के बने हुए बारह पत्रों पर लिखवाये थे। यहाँ की जनता ने प्रतिष्ठित नागरिकों से सत्ता प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया था। इस संघर्ष का एक अंग हड़ताल या असहयोग भी था। इससे इनको कई प्रकार के अधिकार प्राप्त हो गये थे। शासन-सत्ता मुख्यतः सीनेट के हाथ में थी। लेकिन सिद्धान्ततः यह संस्था केवल सलाह देने के लिए थी। परन्तु इस संस्था ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया जिससे यह धीरे-धीरे क्षीण होने लगी। फिर भी रोम का गणतन्त्र सरदारों का राज्य था। विशेष स्थिति में एक आदमी के हाथ में सत्ता सौंप दी जाती थी। यह डिक्टेटर कहलाता था। रोम गणराज्य को कार्थेज के राज्य से बहुत अर्से तक लड़ाई लड़नी पड़ी जिसके फलस्वरूप गणराज्य का अन्त हो गया।

**आमोद प्रमोद**

गणतन्त्र काल में रोम ने अच्छी उन्नति कर ली थी। अधिकांश बातें यूनानियों से ली गई थीं। ईसा से पचपन वर्ष पहले रोम में सर्व प्रथम रंगमंच बना। यह उन्नत होकर सुन्दर, सुखद और व्यवस्थित बन गया। परन्तु रोमन लोगों का नाटक में अधिक मन नहीं लगता था। इनको कला में आनन्द नहीं आता था। इन लोगों को शक्ति, सैनिकता और वीरता के खेल पसन्द थे। इसलिए इनके यहाँ रथों की दौड़ अधिक लोकप्रिय थी। जानवरों की लड़ाई देखने का भी इनको बड़ा शौक था। इतना ही नहीं ये लोग जानवरों को और मनुष्यों को परस्पर लड़ाया करते थे। हिंसक पशुओं के साथ दासों को लड़ाया जाता था। इस प्रकार की लड़ाइयों को देखने के लिए हजारों लोगों की उपस्थिति होती थी। यह प्रथा ईसा से २७५ वर्ष पहले प्रचलित हुई थी और वर्षों तक चलती रही।

**धार्मिक विचार**

रोमन लोग देवों की नहीं परन्तु भूत-प्रेमों की पूजा किया करते थे। परन्तु इनका आकार प्रकार मनुष्य का सा मानते थे। प्रत्येक स्थान पर कोई भूत या पिशाच पूजा जाता था। इनमें से कोई पर्वत शिखर पर, कोई जंगल में, कोई नदी तट पर और कोई पानी के स्रोत के समीप रहा करता था। फिर ये लोग कल्पना करने लगे कि आकाश का भी कोई देवता है। आरम्भ में रोमन लोग कृषि कार्य करते थे। इसलिए इनके देवों का कार्य भी देहातियों के काम से मिलता जुलता था। जब बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ तो इनके देवताओं के स्वरूप और कार्य भी बदलने लगे। तीसरी और चौथी शताब्दी में जब ईसाई धर्म का प्रचार हुआ तो अनेक प्राचीन भूत-प्रेत भी इसके साथ चलते रहे। रोमन धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह राष्ट्र के साथ सम्बन्धित था। हर एक राजकार्य में धर्म का विचार किया जाता था। मजिस्ट्रेट लोग और दूसरी राजसंस्थायें अच्छे शकुन होने पर कार्य आरम्भ किया करती थीं। कुछ दिन अशुभ माने जाते थे। उन दिनों में सरकारी दफ्तर बन्द रहा करते थे। जब कोई सेनापति विजय प्राप्त करके वापस आता तो वह विधिपूर्वक तथा शुभमुहूर्त देखकर नगर में प्रवेश करता था।

**दास और मजदूर**

रोम में दास प्रथा बहुत प्रचलित थी। साम्राज्य में दासों की संख्या बहुत बड़ी थी। प्रायः तीन व्यक्तियों में दो दास थे। कुछ भागों में दासों का अनुपात और भी बड़ा था। परन्तु रोमन लोग दासों के साथ क्रूर व्यवहार नहीं करते थे। कितने ही दास अच्छे शिक्षित थे। उनके साथ मित्र का सा व्यवहार होता था। कितनों ही

को उनके स्वामी प्रसन्न होकर मुक्त कर देते थे। रोम के स्वतन्त्र मजदूरों की दशा सन्तोषजनक थी। उनको बहुत अधिक समय तक काम नहीं करना पड़ता था। वे प्रातः-काल कार्य आरम्भ करते थे और तीन बजे मुक्त हो जाते थे। महीने में कई दिन छुट्टी रहती थी। एक वर्ष में १७५ दिन खेल कूद देखने के लिए नियत थे।

**रोम की संसार को देन**

रोम ने संसार को बहुत लूटा परन्तु उसने संसार को दिया भी खूब। साम्राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक भव्य नगरों का निर्माण हुआ। दिव्य मन्दिर और रंगमंच, स्नानागार तथा खेलकूद देखने के सुन्दर स्थान बन गये। इनके चिन्ह ब्रिटेन, स्पेन, उत्तरी अफ्रीका और एशिया माइनर में दृष्टिगोचर होते हैं। इन लोगों ने साम्राज्य में कितने ही सुन्दर मार्ग बनवाये। स्कूल और कचहरियाँ स्थापित कीं, स्थिति के अनुसार कानून का निर्माण किया। छठी शताब्दी में सम्राट जस्टीनियन ने कानून का संग्रह करवाया जो योरप के कानून का आधार माना जाता है। रोम लोगों का साहित्य ऊँचे दर्जे का नहीं माना जाता। इन्होंने यूनान से बहुत कुछ लिया है परन्तु रोमन लेखकों ने मनुष्यों की आलोचना और प्रशंसा बहुत अच्छी की है। साहित्यकारों में लीवी और टैसेटस बड़े प्रसिद्ध हैं। ये दोनों ही उच्च श्रेणी के इतिहासकार हैं। सिसेरो यूरोप की वर्तमान गद्यशैली का निर्माता कहा जा सकता है। लीवी ने रोमन गणतन्त्र का बड़ा सारगर्भित इतिहास लिखा है। इसी प्रकार टैसैटस ने गणराज्य के पतन के कारणों की खूब खोज की है। सैनेका के उपदेश प्रसिद्ध हैं। यह सम्राट नेरो का अध्यापक था। क्विन्टीलियन ने शिक्षा-शास्त्र पर बहुत अच्छा ग्रन्थ लिखा है। इस समय भी शिक्षा-शास्त्री इसका उपयोग करते हैं।

काव्य के क्षेत्र में विरजिल, ल्युक्रेटियस और होरेस तथा ओविड और कैटुलस के नाम अमर हैं। विरजिल संसार के महाकवियों में माना जाता है। सैनेका ने नौ नाटकों की रचना की थी। रोमन लोगों ने सुखान्त नाटक बहुत अच्छे लिखे हैं। दुखान्त नाटक लिखने में उनको सफलता नहीं मिली। रोमन लोगों की वास्तुकला भी बहुत बढ़ी चढ़ी थी। मूर्ति निर्माण में ये लोग बड़े कुशल थे। साम्राज्य युग में अगणित मूर्तियों का निर्माण हुआ था। उस समय ऐसा कहा जाता था कि रोम में मनुष्यों की संख्या कम है और मूर्तियों की अधिक। रोम की मूर्तियों में यथार्थवाद था और यूनान की मूर्तियों में आदर्शवाद। रोम सम्राटों की अनेक मूर्तियाँ इस समय इंगलैंड के म्यूजियम में रक्खी हुई हैं। यह यथार्थ प्रतिकृति है।

शनैः-शनैः इस विशाल साम्राज्य का पतन होने लगा। जंगली जातियों ने इस पर आक्रमण करने शुरू किये। रोम की शक्ति पहले ही क्षीण होती जाती थी। इन आक्रमणों ने इसको चकनाचूर कर दिया।

---

# आठवाँ अध्याय
## मध्यकालीन योरोपीय सभ्यता

**मध्यकालीन प्रवृत्तियां**

रोम साम्राज्य के पतन के बाद एक हजार वर्ष का समय यूरोप का मध्य युग कहलाता है। इसी युग में सामन्त प्रथा स्थापित हुई जो नवीं शताब्दी से चौदहवीं तक चली। पूर्व के साथ योरप का सम्पर्क बढ़ने लगा। यह प्रयत्न हुआ कि चार्ल्स महान् की अध्यक्षता में रोम साम्राज्य पुनः जागृत किया जाय। परन्तु उसके उत्तराधिकारी कमजोर हुये, इसलिये यह आयोजन नहीं चल सका। कुछ अर्से तक चर्च संकट में पड़ गया। कभी कोई पोप बनाया जाता था और कभी कोई। फिर चर्च की शक्ति बढ़ी और साथ ही साथ राज्य-शक्ति भी बढ़ने लगी। इससे दोनों में संघर्ष हुआ। अन्त में राजशक्ति की विजय हुई।

इस समय के यूरोप को दो हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है। पश्चिमी यूरोप में फ्रैंक, गोथ वर्गेन्डियन और वेन्डाल जाति के लोगों का दबदबा था। फ्रैंक लोगों ने गोल देश पर, गोथ लोगों ने स्पेन पर और बर्गेन्डियनों ने रोम नदी की घाटी पर अपना कब्जा कर लिया था। ये सब आपस में लड़ा करते थे। इसलिये समाज में बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी। पठन-पाठन प्रायः बन्द हो गया था। जो कुछ थोड़ी बहुत शिक्षा थी वह केवल गिरजाघरों में दिखाई देती थी। पूर्वी योरप में जुस्टीनियन का राज्य था। वह छठी शताब्दी का महान् शासक माना जाता है। उसका सब से बड़ा प्रशंसनीय कार्य यह था कि उसने रोम के कानून का संग्रह करवाया। एक समिति के द्वारा इसकी संगति और व्यवस्था करवाई। प्रसिद्ध न्यायाधीशों के निर्णयों का भी संग्रह किया गया और कानून का अध्ययन करने के लिये रोमन कानून पर एक पुस्तक लिखवाई गई।

इस समय फ्रैंक लोगों में क्लोविश नामक बड़ा प्रसिद्ध नरेश था। उसकी अध्यक्षता में इन लोगों ने फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड और पश्चिमी जर्मनी पर अपना अधिकार जमा लिया था। इन लोगों ने पराजित जातियों की भाषा अपना ली थी। इससे पहले सर्वत्र लेटिन भाषा का प्रचार था। परन्तु अब इसके आधार पर नई भाषायें बनने लगीं। यही कारण है कि फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और इटली की भाषाओं का मूल लेटिन भाषा है। जो लोग अपने देश से बाहर नहीं गये उनकी भाषा पर लेटिन

का प्रभाव नहीं पड़ा। इसलिये हालैण्ड, जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन और इंगलैंड की भाषायें मूलतः जर्मन हैं।

## चर्च का इतिहास

ईसाई पादरियों में रोम का पोप सबसे बड़ा माना जाता था। सबसे पहला प्रभावशाली पोप छठी शताब्दी में ग्रेगरी महान् हुआ। युवा अवस्था में ही गृह-त्याग करके वह साधू हो गया और अपना सर्वस्व चर्च के अर्पण कर दिया। वह एक नरेश की भाँति रोम का शासन करता था। उसके पास संगठित सेना थी। उसने मध्य इटली से लुम्बार्ड लोगों को मार भगाया था। उसका सबसे बड़ा कार्य था धर्म-प्रचार का संगठन। उसके देहान्त के समय रोम के चर्च की बड़ी धाक थी। पश्चिमी योरप में इसी प्रकार सन्त बेनेडिक्ट बड़ा प्रसिद्ध हुआ। उसने भी घर बार छोड़कर धर्म का प्रचार किया और पादरियों का संगठन किया। उसका बनाया हुआ विधान पश्चिमीय चर्च का सर्व-सम्मत कानून बन गया। इसके सम्प्रदाय का सदियों तक बहुत प्रभाव रहा। इस सम्प्रदाय में से कई रोम के पोप बने।

चार्ल्स महान् ने चर्च की बड़ी सहायता की। उसकी मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद तक चर्च की दशा बहुत गिरी हुई रही। ग्यारहवीं शताब्दी में ग्रेगरी सप्तम पोप बना और उसने अपने बारह वर्ष के शासन में चर्च की काया पलट दी। उसने योरप के बड़े बड़े नरेशों पर अपना शासन चलाया और उसके समय में चर्च की शक्ति सर्वोपरि हो गई। उसका कहना था कि चर्च-शक्ति और राज-शक्ति भगवान् ने बनाई है और दोनों सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं। चर्च सूर्य है और नरेश चन्द्रमा है। उसने फ्रांस और इंगलैंड के बादशाह को और जर्मनी के बादशाह हेनरी चतुर्थ को कई मामलों में धमकियाँ दीं। हेनरी चार दिन तक नंगे पैर साधारण कपड़े पहने हुए पोप के दरवाजे पर इन्तजार करता रहा। तब पोप उससे मिला और उसको माफी दी गई। परन्तु फिर जर्मन लोगों ने अपना ही एक पोप बना लिया जिसका नाम क्लीमेन्ट द्वितीय था। उसने ग्रेगरी को रोम से भगा दिया। अन्त में सम्राट हेनरी ने यह स्वीकार कर लिया कि पोप का निर्वाचन पादरियों के हाथ में रहेगा। परन्तु यह निर्वाचन सम्राट् की उपस्थिति में होगा परन्तु पोप को सम्राट् के अधीन रहना पड़ेगा। इसके तीस वर्ष बाद फ्रेड्रिक प्रथम जर्मनी का सम्राट् हुआ। उसने पोप को सूचना दी कि उसको राज शक्ति ईश्वर से प्राप्त हुई है। तब राज शक्ति और चर्च शक्ति में संघर्ष आरम्भ हो गया। पोप इन्नोसेंट चतुर्थ ने इसको कई बार ईसाई जाति से बाहर निकाल दिया और एक बार यह भी घोषणा कर दी कि उसको राजसिंहासन से उतार दिया गया है। फ्रेड्रिक द्वितीय मध्यकालीन सम्राटों में बड़ा उन्नत माना जाता था। उसके विचार बड़े उदार और विशाल थे। उसने यहूदी और मुसलमान दार्शनिकों को अपने दरबार

में सम्मानित किया था। उसी ने ईसाई विद्यार्थियों में अरबी अंकों का प्रचार किया था। उसने सुधार ( *Reformation* ) की बहुत सी बातें अपने ही युग में जारी कर दी थीं। उसने पोप इन्नोसेंट चतुर्थ को एक पत्र लिखा जिसमें कहा कि पादरी लोगों के पास बहुत धन है। उनमें धार्मिकता नहीं है। यह निन्दनीय है। उसने अपने समय के नरेशों को सलाह दी कि चर्च की सम्पत्ति छीन ली जाय और उसका धार्मिक दावा नहीं माना जाय।

### धार्मिक युद्ध

मध्य काल में लाखों ईसाई पवित्र स्थानों की यात्रा करने जाया करते थे। जेरुसलम को ईसाई लोग पवित्र मानते थे। यहाँ उनका मन्दिर था। जब तक खलीफों का राज्य रहा तब तक ईसाइयों के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं हुई परन्तु १०७६ में सलजुग तुर्कों ने वहाँ अपना आधिपत्य जमा लिया। इन्होंने जेरुसलम के ईसाई मुखिया को बाल पकड़कर बाजारों में घसीटा और जेल में डाल दिया। इस क्रूरता की कथायें सारे यूरोप में फैल गई। तब पीटर नामक एक साधू ने पवित्र स्थान की रक्षा के लिये योरप के ईसाइयों से अपील की। लाखों ईसाई धर्म-युद्ध में शामिल हुए। पहला युद्ध (१०९६–९९), दूसरा (११४७) और तीसरा सम्राट फ्रेड्रिक द्वितीय के समय में हुआ। चौथा और अन्तिम धार्मिक युद्ध १२०२-४ में हुआ। पाँचवाँ धार्मिक युद्ध १२१२ में हुआ परन्तु यह बच्चों का युद्ध कहलाता है और नगण्य है। अन्त में धार्मिक युद्ध निष्फल हुये। ईसाई लोग तुर्क लोगों को नहीं दबा सके। परन्तु पोप लोगों के और ईसाई धर्म के प्रभाव का इससे अनुमान किया जा सकता है कि तीसरे धार्मिक युद्ध में सम्राट फ्रेड्रिक, फ्रेंच नरेश फिलिप द्वितीय और इंगलैंड नरेश रिचार्ड प्रथम भी शामिल थे। इनमें सम्राट फ्रेड्रिक तो पेलेस्टाइन में डूब कर मर गया और फ्रेंच नरेश की भी बुरी दशा हुई। इंगलैंड का बादशाह अर्से तक वीरतापूर्वक लड़ता रहा परन्तु वह भी जेरुसलम को नहीं जीत सका। इन धार्मिक युद्धों का उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ परन्तु इनसे अन्य कई लाभ हुये।

इनके कारण सामन्तशाही समाप्त हो गई। क्योंकि हजारों सामन्तों ने अपनी जागीरें बेचकर धार्मिक युद्धों के लिये रुपया एकत्र किया था। इनकी रियाया की संख्या भी कम हो गई क्योंकि प्रायः सब लोग धार्मिक युद्धों में सम्मिलित हो गये थे। धार्मिक युद्धों से व्यापार की भी वृद्धि हुई। इनके लिये जहाजों की आवश्यकता हुई जिससे जहाज निर्माण के व्यवसाय को अच्छा प्रोत्साहन मिला। पूर्व की अनेक चीजें यूरोप में जाने लगीं। अब यूरोप निवासियों ने पूर्वी शराब, शक्कर, रुई, रेशम, कम्बल, चीनी के बर्तन, काँच के बर्तन, मसाले, औषधियाँ, रंग, तेल, पिंड खजूर, अन्न आदि अनेक चीजों का प्रयोग करना शुरू किया। इससे यूरोप अधिक

समृद्ध हुआ। इटली के वेनिस जेनेवा और पीसा नगरों को इससे विशेष लाभ हुआ। सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि योरप के ईसाई योरप से बाहर निकले और उनको दूसरे देशों की सभ्यता का भी कुछ अनुमान हुआ। उस समय तक पश्चिमीय जीवन बहुत गवांरू था। मकानों के अन्दर कोई आराम की चीजें नहीं थीं। अब उनको एक नये संसार का पता लगा। उन्होंने नई चीजें, विचित्र पोशाकें, नये ढंग के मकान और रीतिरिवाज देखे और घरों में दीवान, सोफे, कालीन, सुन्दर बर्तन, कीमती पत्थर आदि उनको दिखाई दिये। ईसाइयों में भूगोल के अध्ययन के प्रति रुचि जागृत हुई। उनको भूमध्य सागर और एशिया तथा अफ्रीका के कुछ भागों का ज्ञान प्राप्त हुआ। इससे उनमें विदेश यात्रा की रुचि जागृत हुई। मध्यकाल में प्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो एशिया के विभिन्न देशों में यात्रा करता हुआ प्रशान्त महासागर तक पहुँच गया। इस प्रकार कई यात्री योरप से निकले। इनके लिखे हुये वृतान्तों को बहुत चाव के साथ पढ़ा जाता था। इससे योरप के लोगों का दृष्टिकोण विस्तृत हुआ।

**चर्च का उत्कर्ष और अन्त**

पोप इन्नोसेंट तृतीय के समय में चर्च की शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उसने इंगलैंड नरेश जोन को गद्दी से उतार दिया था और फिर बड़ी दीनता के साथ पोप का सामन्त बनकर उसने पुनः राजसिंहासन प्राप्त किया था। चर्च उस समय एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार थी। सर्वत्र इसकी अदालतें स्थापित हो चुकी थीं। इससे नरेशों की शक्ति संकुचित हो गई थी। चर्च समस्त देशों में एक ही भाषा का अर्थात् लेटिन का उपयोग करता था। चर्च के सिद्धान्त और उपदेश सर्व-मान्य समझे जाते थे। इनकी अवहेलना करने वाले को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। फिर भी ऐसे अनेक लोग थे जो चर्च की सत्ता का विरोध करते थे। वे कहते थे कि यह धार्मिकता नहीं है और जो कुछ पोप कहता है वह भगवत वाक्य नहीं है। इसलिये धीरे-धीरे चर्च के विरुद्ध कई सम्प्रदाय खड़े हो गये। तब चर्च ने भी अपनी शक्ति को दृढ़ करना शुरू किया। तब चर्च और सुधारवादियों में संघर्ष शुरू हुआ। अन्त में सुधारवादियों की विजय हुई।

**नगरों का विकास और वैभव**

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में पश्चिमीय यूरोप में व्यापार खूब बढ़ा। पहले लोग केवल खेती पर निर्भर थे। जो कुछ पैदा होता था उससे अपना निर्वाह करते थे। अब व्यापार विधि से जीवन अधिक समृद्ध और सुखी होने लगा। आराम की चीजों की माँग बढ़ने लगी। तब नगर में नाना प्रकार के भोग विलास की सामग्रियाँ जुटने लगीं। वेनिस और जेनेवा व्यापार के प्रमुख केन्द्र बन गये। एशिया और अफ्रीका के पदार्थ जहाजों के द्वारा इन दोनों नगरों में पहुँचते थे और वहाँ से योरप में फैल जाया करते थे। स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, इङ्गलैंड और बेल्जियम के

बन्दरगाहों का महत्व निरन्तर बढ़ता जाता था। दक्षिण जर्मनी में आक्सबर्ग और न्यूरेन वर्ग बड़े सम्पन्न नगर बन गये थे क्योंकि यहाँ होकर ही वेनिस से उत्तर योरप में एशिया और अफ्रीका का माल पहुँचा करता था। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में कोलोन नगर जर्मनी और इङ्गलेंड के व्यापार का केन्द्र था। इसी प्रकार हेम्बर्ग, ब्रेमेन और ल्यूबेग नामक नगरों से इङ्गलेंड का व्यापार होता था। इन नगरों में व्यापार वृद्धि के लिये अनेक संघ बन गये थे। इनके पास ऐसे जहाज थे जो व्यापार और युद्ध दोनों के लिये उपयोगी थे। इनमें परस्पर कभी-कभी लड़ाई हो जाया करती थी।

### जातीयता का विकास

इस युग में विभिन्न देशों में जातीयता का विकास होने लगा। छोटे छोटे राज्य समाप्त और बड़े बड़े राज्य स्थापित होने लगे। जर्मनी और इटली में तो छोटे छोटे राज्य चलते रहे परन्तु दूसरे देशों में बड़े बड़े राज्य कायम हो गए। इंगलेंड राष्ट्र बन गया और इसी प्रकार से फ्रांस का संगठन हो गया। स्पेन, पुर्तगाल और स्विट्जरलेंड में भी पन्द्रहवीं शताब्दी से पहले राष्ट्रीय सरकारें स्थापित हो गईं। जर्मनी और आस्ट्रिया में अब भी सौ से कुछ अधिक छोटे-छोटे राज्य बने हुए थे। केवल नाम के लिए वे एक सम्राट् के अधीन थे परन्तु वास्तव में उन पर कोई नियंत्रण नहीं था। कुछ राज्यों पर सामन्तों का शासन और कुछ पर पदाधिकारियों का शासन और कुछ गाँवों पर छोटे-छोटे सरदारों ने कब्जा कर रखा था। इन लोगों का इन गाँवों से निर्वाह नहीं होता था, इसलिए ये लूट मार किया करते थे। सम्राट का इन पर कोई वस नहीं चलता था। सारे देश की एक सभा (Diet) थी। इसका अधिवेशन विभिन्न स्थानों पर हुआ करता था। क्योंकि इसका कोई स्थान निश्चित नहीं था। देखने में बादशाह का ठाठ बाट खूब था। कहने को स्पेन नीदरलेंड, सरदीनिया, नेपल्स, सिसली और मिलान पर उसका शासन था परन्तु वह साम्राज्य में कोई एकता स्थापित नहीं कर सकता था। इसलिए १५५६ में उसने तंग आकर अपना पद त्याग दिया और वह पुर्तगाल के एक मठ में सुख और विलास के साथ अपने दिन काटने लगा।

### व्यापारिक वृद्धि

अभी मशीनों का युग नहीं आया था। लोग प्रायः खेती करते थे। कुछ लोग खेती से सम्बन्ध रखने वाला व्यवसाय करते थे। इस प्रकार गाँवों में कृषकों की और श्रमजीवियों की बस्ती थी। कितनी ही शताब्दियों तक इसी प्रकार का जीवन चलता रहा। जब धार्मिक युद्धों के कारण यूरोपियन लोगों का दृष्टिकोण अधिक विस्तृत हुआ तो व्यापार को विशेष चेतना मिली। इससे पहले भी साधारण व्यापार होता था, परन्तु अत्यन्त सीमित था और व्यापार की वस्तुयें भी या तो खेती से उत्पन्न होने

वाली या कपड़ा, वर्तन, हथियार, औजार आदि हाथ से बनाई जानेवाली चीजें थीं। जब सिक्का नहीं चलता था तो यह साधारण व्यापार विनिमय ( Bartor systom ) के द्वारा हुआ करता था। सिक्का जारी होने पर इसमें कुछ वृद्धि हुई परन्तु विशेष विस्तार नहीं हुआ। धार्मिक युद्धों के बाद एशिया और अफ्रीका से भोग विलास की वस्तुयें जहाजों के द्वारा योरप में पहुँचने लगीं और वहाँ कितने ही नगर व्यापार के मुख्य और समृद्ध केन्द्र बन गए। इन नगरों में कितने ही व्यापार संघों का भी निर्माण हो गया। ऐसे संघ आत्म-रक्षा के लिए अपने-अपने सैनिक और युद्ध-पोत रखते थे। ये जहाज अफ्रीका और एशिया के बन्दरगाहों से व्यापारिक वस्तुयें लाते थे और फिर यूरोप के विविध बन्दगाहों में इनको पहुँचाते थे। अभी जहाज प्रायः समुद्र के किनारे-किनारे ही चलते थे और एशि में बनी हुई वस्तुयें एशिया माइनर के बन्दरगहों से आती थीं। उस समय स्वेज नहर नहीं बनी थी। इसलिए ईरान और भारतवर्ष तक योरप के जहाज नहीं पहुँच सकते थे। दक्षिण अफ्रीका का घेरा लगा कर कोई यूरोपियन अब तक हिन्दुस्तान तक नहीं पहुँचा था। लेकिन योरप और एशिया के परस्पर व्यापार का आरम्भ हो गया था। यूरोप के लोग एशिया के पदार्थो पर मुग्ध थे और एशिया भी विशेष कर पश्चिमी एशिया योरप की रुचि और शौक के परिचित हो गया था। यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रथम सोपान था। इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से पोत निर्माण के व्यवसाय को बहुत प्रोत्साहन मिला। भूमध्यसागर के बन्दरगाहों में पहुँचने के लिए और वहाँ से माल लाद कर योरप के प्रसिद्ध बन्दरगाहों को जाने ने लिए सैकड़ों जहाजों की आवश्यकता थी। इससे स्थान-स्थान पर पोत निर्माण के कारखाने जारी हो गए। इन कारखानों की व्यवस्था व्यापारियों ने ही की थी। अभी सरकार ने व्यापार में हस्तक्षेप करना आरम्भ नहीं किया था, इसलिए व्यापारी लोग बड़े शक्तिशाली होते जा रहे थे।

### मुख्य राजनैतिक विचार

सारे योरप का शासन राजतंत्रात्मक था। प्रत्येक देश में राजा सर्वोपरि माना जाता था। युद्ध के समय उसको सहायता देने वाले मुख्य सैनिक उसके सामन्त थे। ऐसे सामन्त शान्ति काल में उसकी आज्ञा मानते थे। सामन्त अपने परिमित क्षेत्र में राजा ही थे। उनकी प्रजा उन्हीं के अधीन थी। इनमें कुछ लोग ऐसे थे जिनको विवश होकर सामन्त के घर पर और उसके खेतों पर काम करना पड़ता था। नरेश सब निरंकुश थे। उन पर किसी भी प्रकार का कोई वैधानिक नियंत्रण नहीं था। वे शासन में मनमाती कर सकते थे। अत्याचार से राहत पाने के लिए रियायत के पास एकमात्र साधन था बलवा करना। परन्तु इस प्रकार के विद्रोह कभी सफल नहीं होते थे क्योंकि प्रजा संगठित नहीं थी और प्रत्येक नरेश के पास पर्याप्त सेना रहती थी। नरेश का न्याय भी उसके स्वभाव और प्रवृत्ति पर आश्रित था। वह किसी लिखित न्याय का

पाबन्द नहीं था। कालान्तर में नरेश लोग अपने लिए योग्य सलाहकार और शासन के संचालन के लिए योग्य मंत्री रखने लगे। परन्तु मंत्री की नियुक्ति नरेश के अधीन थी। उसको रखना और निकालना भी उसके अधिकार में था। इसलिए किसी भी मंत्री में इतना साहस नहीं हो सकता था कि वह नरेश की इच्छा के प्रतिकूल सलाह दे या उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके शासन करे। इसलिए अच्छा या बुरा शासन राजा के स्वभाव पर ही निर्भर था। मध्यकाल के शासक सब शिक्षित भी नहीं थे। उनका दृष्टिकोण बड़ा संकुचित था। किसी में धार्मिक कट्टरता थी किसी में स्वाभाविक क्रूरता और किसी में उदारता भी थी। इसलिए शासन का ढंग राजा के साथ-साथ बदला करता था। जहाँ अच्छा राजा था वहाँ अच्छा शासन होता था और जहाँ बुरा राजा था वहाँ बुरा शासन।

प्राचीन काल में यूनान देश में जनतन्त्र प्रणाली प्रचलित थी। प्रत्येक नगर में जनतन्त्र राज्य था। उस समय नगर ही वास्तव में राष्ट्र था। शासन का संचालन सब नगर निवासी मिलकर किया करते थे। उस समय कोई किसी का प्रतिनिधि नहीं बनता था। सारे ही नगर निवासी शासक थे। परन्तु उस समय दास प्रथा का प्रचार था। इसलिए प्रत्येक नगर में हजारों दास थे। इन दासों को नागरिक नहीं माना जाता था, इसलिए ये लोग शासन में भाग नहीं ले सकते थे। परन्तु मध्यकाल में इस प्राचीन प्रणाली को लोग भूल चुके थे। यूनानी विद्वानों ने इस पर ग्रन्थ लिखे थे। परन्तु इनका अध्ययन कोई विरले ही विद्वान किया करते थे। राजसत्ता और चर्चसत्ता में संघर्ष चला करता था। दोनों ही पूर्ण सत्ता अपने-अपने हाथ में रखना चाहते थे। पोप की नियुक्ति निर्वाचन विधि से हुआ करती थी। यह जनतन्त्र प्रणाली थी। इसका असर किसी अंश तक राजसत्ता पर भी पड़ा होगा। परन्तु यह विषय विचार क्षेत्र का था व्यवहार क्षेत्र का नहीं। परन्तु यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे पुष्ट होती रही और इसने ही यूरोप में जनतन्त्र प्रणाली को पुनः जागृत किया। इससे ही नरेशों की शक्ति नियमित और सीमित हुई। जन जागरण हुआ और फिर जनता अपने अधिकारों की माँग करने लगी। राजसिंहासन डगमगाने लगे और अन्त में जनसत्ता स्थापित हो गई।

---

# नवाँ अध्याय

## भारतीय संस्कृति

### सिन्धु घाटी की सभ्यता

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सबसे अधिक प्राचीन चिन्ह् सिन्धु नदी की घाटी में मिलते हैं। सन् १९२२ में इनका पता चला। यहाँ पर इस समय मोहिन जोदाड़ो नामक एक प्राचीन नगर सिन्धु नदी के दाहिने तट पर बसा हुआ है। यह समुद्र से लगभग साढ़े तीन सौ मील दूर है। ऐसा ही दूसरा नगर हड़प्पा रावी नदी के तट से कुछ दूर पर स्थित है। यह मोहिनजोदाड़ो से चार सौ मील की दूरी पर है। खुदाई करने पर यह पता लगा है कि इन दोनों नगरों की सी सभ्यता पश्चिम में डेढ़ सौ मील तक और उत्तर में शिमला तक फैली हुई थी।

### नगरों के व्यवस्थित मार्ग

भग्नावशेषों से प्रगट होता है कि मोहिनजोदाड़ो की सब सड़कें बिल्कुल सीधी हैं। जहाँ सड़कें एक दूसरे को काटती हैं तो समकोण बनाती हैं। तंग गलियाँ भी सीधी हैं और दूसरी गलियों को काटते समय समकोण बनाती हैं। मोहिनजोदांड़ो की सड़कें उत्तर से दक्षिण को और पूर्व से पश्चिम को जाती हैं। यहाँ वायु पश्चिम या दक्षिण से चलता है। इसलिए नगर का वायु सदा स्वच्छ रहा करता था। एक सड़क ३६ फुट चौड़ी है और एक १८ फुट। छोटी सड़कों में एक ९ फुट चौड़ी है और एक १२ फुट। गलियों की चौड़ाई ४ से ७ फुट तक है। नगर रचना में विशेषता यह है कि मकान का कोई भी भाग सड़क या गली में निकला हुआ नहीं है। जहाँ सड़क मुड़ती है वहाँ मकानों के कोने गोल किये हुए हैं।

### स्तम्भ, रसोई, नालियाँ आदि

मोहिनजोदाड़ो में गोल स्तम्भ कोई नहीं मिला। यह आश्चर्य की बात है कि यहाँ के लोगों का बेबीलोन से सम्बन्ध था और वहाँ गोल स्तम्भ बनते थे, तो भी इन्होंने चौकोर ही स्तम्भ बनाये। स्तम्भों में अधिकतर समचतुपपक्ष हैं और कुछ सम द्विपक्ष। कमरों की दीवारों पर मिट्टी का लेप किया जाता था और उसके ऊपर गौ के गोबर का। शायद इसके ऊपर खड़ी का लेप किया जाता होगा। मकानों में लकड़ी की

आलमारियाँ बनाई जाती थीं। ये दीवार के अन्दर घुसा कर लगाई जाती थीं। शायद लकड़ी के सन्दूक भी बनते थे। पंलगों और तिपाइयों का प्रयोग प्रत्येक घर में होता था। पंलगों के पायों पर खुदाई का काम किया जाता था और पशुओं की आकृतियाँ बनाई जाती थीं। रसोइयाँ मकान के आंगन में बनाई जाती थीं। रसोई के अन्दर एक ऊँचा चबूतरा बनता था। इस पर मशाले, बर्तन, साग आदि रक्खे जाते होंगे। चूल्हे भी कई प्रकार के बनते होंगे। ऐसे चूल्हे पाये गए हैं जिन पर कई चीजें एक साथ पकाई जा सकें। प्रत्येक घर में एक स्नानागार होता था और शौचालय भी। ये दोनों पास-पास बनाये जाते थे। शौचालय सड़क की तरफ बनता था और स्नानागार उसके पास मकान के अन्दर।

### स्नान कुंड और सामन्त भवन

मोहिनजोदाड़ो की सबसे अधिक रोचक और मनोहर इमारत एक सार्वजनिक स्नानागार है। इसके पास ही एक सामन्त भवन का खंडहर है। सम्भव है यह सामन्त का स्नानागार हो। परन्तु इस युग में इसको सार्वजनिक स्नानागार कहना अधिक रुचिकर होगा। इसका आकार ३९ × २३ फुट है और यह पक्की ईंटों का बना हुआ है। प्रवेश करने के लिये चौड़ाई की तरफ जीने बने हुये हैं। सीढ़ियों की ऊँचाई आठ इंच है और चौड़ाई नौ इंच। जीने के अन्त में स्नानकुंड के अन्दर की सीढ़ी सोलह इंच ऊँची और ३१ इंच चौड़ी है और इसकी लम्बाई स्नानकुंड की चौड़ाई के बराबर है। स्नानागार के पानी को निकालने के लिये उत्तर-पश्चिम में एक सूराख बना हुआ है। यह स्नानागार इतना सुन्दर है और ऐसी अच्छी हालत में है कि इसको तोड़कर अन्दर की बनावट देखने को किसी का मन नहीं करता। इसके चारों ओर आठ कमरे बने हुये हैं और प्रत्येक कमरे के साथ स्नानागार है। सामन्त भवन २०० फुट लम्बा और ११५ फुट चौड़ा है। इसकी दीवारें पांच फुट चौड़ी हैं। इसमें कई कमरे गोदाम से मालूम होते हैं। यह केवल अनुमान लगाया गया है कि यह किसी सामन्त का भवन होगा।

### शिव प्रतिमायें

सिन्धु प्रदेश के निवासी शाक्त धर्मावलम्बी थे। ये लोग शिव और पार्वती की पूजा करते थे। पार्वती की पूजा केवल उमा के रूप में ही नहीं किन्तु नाना-विध रूप में होती थी। खुदाई में इन देव और देवियों के कोई मन्दिर नहीं निकले। जो छोटी-बड़ी प्रतिमायें अब तक मिली हैं उनमें जो प्रतिमा शिव की मानी जाती है वह नग्न है। दोनों पैरों के तलवे मिले हुये हैं। यह एक आसनमुद्रा है। प्रतिमा के तीन सिर हैं और तीन सींग। चारों ओर हिरण, सांभर, हस्ती, सिंह, भैंसा आदि पशु हैं। यह प्रतिमा पशुपति महादेव की प्रतीत होती है। शिव की और

भी तीन प्रतिमाएं मिली हैं जो इससे मिलती-जुलती हैं। एक पत्थर की प्रतिमा मिली है जो ध्यान मुद्रा में उत्तरीय पहिने हुए एक आदमी की है। यह प्रतिमा भी वास्तव में किसी देव की ही मालूम होती है और यह देव शिव ही हो सकता है।

### देवियों की प्रतिमायें

देव-प्रतिमाओं की अपेक्षा हरप्पा और मोहिन जोदाड़ो में देवी-प्रतिमायें बहुत बड़ी संख्या में मिली हैं। ये प्रतिमायें नग्न नहीं हैं। कमर के नीचे केवल घुटनों के ऊपर एक प्रकार का लहंगा सा पहिना हुआ है। शिर पर सब प्रतिमाओं के पंखा सा बना हुआ है। पंखे में दो ऐसे खड्डे से बने हुए हैं जिनमें छोटे-छोटे दीपक रखे जा सकें। हाथों में चूड़ियाँ हैं। ये प्रतिमायें देवियों की हैं, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है। उस समय भारतवर्ष, अफगानिस्तान, ईरान, अरब, मेसोपोटामिया, मिस्र और मध्य एशिया में देवी पूजा प्रचलित थी और सर्वत्र देवी की प्रतिमायें बनाई जाती थीं तथा उस पर सिन्दूर लगाया जाता था। परन्तु यदि यह निश्चय हो सके कि ये प्रतिमायें किस देवी की हैं तो तत्कालीन धर्म के स्वरूप पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। पश्चिमी एशिया में देवी की पूजा माता के रूप में की जाती थी, अतः मोहिनजोदाड़ो में भी ये प्रतिमायें मातृदेवी की ही होंगी। हमको यहाँ शिव की प्रतिमायें मिली हैं अतः ये प्रतिमायें पार्वती की भी हो सकती हैं।

### पशु प्रतिमायें

देव और देवियों के अतिरिक्त उस समय अनेक पशु भी पूजे जाते थे। इनमें बकरा, बैल, मैंढ़ा, भैंसा और हाथी मुख्य हैं। देवों की प्रतिमाओं पर भी पशुओं के सींग बने हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आरम्भ में पशु पूजे जाते थे। फिर उनका स्थान धीरे-धीरे अन्य देव लेने लगे। किन्तु पशुओं को भी भक्तजनों ने त्यागा नहीं। जो पशु आरम्भ में देव थे वे कालान्तर में देवों के वाहन बन गये। या उस समय भी ये पशु देवों के वाहन या प्रतीक होंगे।

### वृक्षों की और मिश्रित प्रतिमाएँ

वृक्षों और पशु-देवों की कई सम्मिलित प्रतिमायें मोहन जोदाड़ो और हरप्पा में प्राप्त हुई हैं परन्तु इनमें दो तीन विशेष उल्लेख के योग्य हैं। एक छोटी तथा सुन्दर प्रतिमा में पीपल का वृक्ष दिखाया है। इसके नीचे एक देवी है जिसके सिर पर दो सींग हैं और सींगों के बीच मस्तक से एक पुष्पित या फलवती शाखा निकलती हुई बनी है। इसके हाथ में कई चूड़ियाँ हैं। सामने ठीक इसी प्रकार की दूसरी प्रतिमा है। यह पहली प्रतिमा को नमस्कार कर रही है या उसकी पूजा कर रही है। दूसरी प्रतिमा के पीछे समीप ही एक बकरा खड़ा हुआ है जिसका चेहरा मनुष्य

का-सा बना हुआ है। इन सबके नीचे सात प्रतिमायें और बनी हुई हैं। इनके सींग नहीं हैं, परन्तु सिर पर डाली बनी हुई है। सात प्रतिमायें उपरोक्त दोनों प्रतिमाओं के संमुख देख रही हैं। यह दृश्य शाक्त सम्प्रदाय का है। इसका भाव यह प्रतीत होता है कि एक उपासिका देवी की पूजा कर रही है। देवी का निवास पीपल के वृक्ष में है। पीपल के वृक्ष को देवनिवास और पवित्र मानने की परम्परा भारत में अब तक प्रचलित है और इस प्रतिमा से प्रकट होता है कि यह अति प्राचीन परम्परा है। बकरा वध के लिये खड़ा है। अज की बलि भी देवी को अति प्राचीन काल से प्रिय है।

**घड़ियाल की प्रतिमा**

जल जन्तुओं में घड़ियाल भी पवित्र माना जाता था। इसकी अनेक छोटी प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। पुरातत्व के पंडितों का मन्तव्य है कि यह नदी का अधिष्ठाता देव माना जाता होगा। यह बात कोई कल्पनातीत या निराधार नहीं है। मिस्र में इस्लाम के प्रचार से पहले घड़ियाल पवित्र माना जाता था। हमारे यहाँ मकर एक राशि का नाम है और उसकी आकृति घड़ियाल की ही बनाई गई है। सिन्धु प्रदेश में सिन्धु नदी पर ही जीवन निर्भर था। इसलिए इसको पवित्र मानने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आर्य लोग भी नदियों को पवित्र मानते थे जो सरस्वती नदी के सूक्तों से प्रकट होता है। मकर या घड़ियाल मोहनजोदाड़ो में नदी का प्रतीक या अधिष्ठाता माना जाता होगा।

**सर्प प्रतिमायें**

मोहनजोदाड़ो के लोग साँप को भी शायद पूंज्य या कम से कम पवित्र मानते थे। एक देवी की प्रतिमा में उपासकों के पीछे साँपों को भी प्रतिमायें बनी हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों ये भी उपासकों की भाँति देवी से प्रार्थना कर रहे हों। एक मिट्टी की मूर्ति में साँप को एक मनुष्य दूध पिलाता हुआ दिखाया है। मिट्टी के बर्तनों के ऊपर भी साँपों के चित्र बने हुये हैं। साँपों की पूजा हमारे देश में इस समय भी होती है।

**सूर्योपासना**

कुछ प्रतिमायें ऐसी भी प्राप्त हुई हैं जो सूर्य की मालूम होती हैं। बीच में कुछ चक्र सा है और एक प्रतिमा में उसके चारों ओर छः पशुदेवों की मूर्तियाँ इस शैली और चतुरता से बनाई हैं कि किरणें प्रतीत हों। यह भी खयाल रक्खा गया है कि छः देवों में कोई छोटा बड़ा नहीं दीखे और सब मिलकर किरणें मालूम हों। अन्य प्रतिमाओं में देवों की संख्या कम है। एक प्रतिमा में चक्र के चारों ओर शुद्ध

किरणें ही बनी हुई हैं और देव केवल एक। भाव यह प्रकट होता है कि सूर्य महादेव है और अन्य देव सब उसकी अपेक्षा छोटे हैं तथा सब देवों का उसमें समावेश हो जाता है। ऋग्वेद के कई सूक्तों में सूर्य की स्तुति की गई है और उसकी किरणों का वर्णन किया गया है। सूर्य की उपासना तत्कालीन समस्त जगत में की जाती थी और भारत में तो मोहनजोदाड़ो के काल से अब तक की जाती है। मिस्र में भी इसका प्रचार था।

### शिवलिंग और योनिपट्ट

हरप्पा और मोहन जोदाड़ो में अगणित शिवलिंग और छोटे-छोटे योनिपट्ट भी मिले हैं। इनके विषय में अधिक विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है। पिछली पंक्तियों से स्पष्ट है कि मोहनजोदाड़ो और हरप्पा के निवासी शाक्त धर्म को मानते थे और शिव तथा भवानी की पूजा करते थे। शिव की सूक्ष्म और साधारण प्रतिमा लिंग रूप में बनाई जाती है और इसको योनिपट्ट में स्थापित किया जाता है। पश्चिमी विद्वानों ने इन दोनों शब्दों के आधार पर एक शास्त्र खड़ा कर दिया है और इस पूजा विधि का न जाने क्या क्या अर्थ करते हैं और आकाश पाताल एक कर देते हैं।

### धार्मिक नृत्य

कुछ प्रतिमाओं से यह भी विदित होता है कि देवी-देवों के सामने या विशेष धार्मिक कृत्यों के अवसरों पर उस समय आदमी नाचा करते थे। एक प्रतिमा में एक पुरुष ढोल बजा रहा है और उसके सामने कुछ पुरुष ढोल की ताल पर नाच रहे हैं। यह नाच धार्मिक नाच मालूम होता है। दूसरी प्रतिमा में एक पुरुष एक व्याघ्र के सामने ढोल बजाता हुआ नाच रहा है और तीसरी प्रतिमा में किसी देव के सामने एक महिला नृत्य कर रही है। यह भी संभव है कि प्रथम दो प्रतिमायें केवल लोक नृत्य की हों परन्तु तीसरी प्रतिमा तो अवश्य ही धार्मिक नृत्य की है।

### सिन्धु काल की परम्परायें

हरप्पा और मोहन जोदाड़ो के धर्म की प्रायः सब बातें वर्तमान भारत में विद्यमान हैं। शिव और पार्वती की इस समय पूजा होती है। बकरे की बलि दी जाती है। सिंह दुर्गा का वाहन हो गया है। गणेश हाथी के रूप में पूजा जाता है। सूर्य का तो पुराण ही बन गया है और उसकी प्रतिमा भी किरणों से ज्वाजल्यमान और प्रकाशमान बनाई जाती है। वैसे रथ में स्थित सूर्य की भी प्रतिमा बनती है। प्रतिमाओं को मन्दिरों में रखा जाता है और छोटी प्रतिमाओं को घर में स्थापित कर दिया जाता है। ये सब विचार धारायें और प्रवृत्तियाँ सिन्धु संस्कृति काल से आई हुई हैं

परन्तु तत्कालीन कुछ धार्मिक विशेषतायें विलुप्त भी हो गई हैं। अब किसी देव या देवी के सींग नहीं होते। अब पशुओं की सर्प के अतिरिक्त शुद्ध देवों के रूप में पूजा नहीं होती। जो पशु पहले देव या देवियाँ थीं वे सब अब देव देवियों के वाहन बन गये हैं। परन्तु यह भी क्या कम आश्चर्य की बात है कि पाँच हजार वर्ष पुराने विचार कुछ संस्कृत रूप में अब भी हम लोगों में प्रचलित हैं।

**पुरुष और स्त्रियों के वस्त्र**

उस युग के लोग वस्त्र बहुत कम पहिनते थे। स्त्रियाँ एक प्रकार का लहँगा पहिनती थीं जो घुटनों से ऊपर रहता था। सिर पर एक पंखा जैसी कोई चीज रखती थीं। सिर के बाल इस चीज से ढके होते थे। इसलिये प्रतिमाओं से पता नहीं चलता कि स्त्रियाँ बाल किस भाँति और कितने प्रकार से संवारती थीं। पुरुषों की प्रतिमायें बिल्कुल नग्न बनी हुई हैं परन्तु ये सब देव प्रतिमायें हैं। दो प्रतिमायें ऐसी मिली हैं जिनमें पुरुष कुछ चिपका हुआ कपड़ा पहने हुए हैं। यह या तो एक प्रकार की बिरजिस है या विशेष प्रकार से बँधी हुई धोती। सिन्धु प्रदेश में उस समय रुई पुष्कतला से उत्पन्न होती थी। अतः बहुत करके लोग धोतियाँ ही पहिनते होंगे। यह आश्चर्य की बात है कि वे लोग ऊन क्यों नहीं बनाते थे। शायद यह कारण होगा कि उस समय मेसोपोटामिया तथा एमन में ऊन के कपड़े बहुत बनते थे। इसलिये सिन्धु घाटी में भी ऊनी कपड़े वहाँ से मंगवा लिये जाते होंगे।

**केश विन्यास**

सिन्धु प्रदेश में पुरुष अपने बालों को कई प्रकार से संवारा करते थे। आजकल की भांति बालों के मध्य सीधी माँग बनाई जाती थी। बाल कटवाये तो जाते थे परन्तु लम्बे इतने रक्खे जाते थे कि उनको विशेष प्रकार से संभालना पड़ता था। माथे के पीछे चोटी गूंथी जाती थी या जूड़ा बना लिया जाता था। कोई लोग बालों की चोटी बना कर उसका जूड़ा पीछे न रखकर माथे के ऊपर रखा करते थे। एक तरीका यह भी था कि माँग के दोनों तरफ के बाल दोनों कानों तक लटका कर हर एक कान के पास उनकी कुंडली अंगूठी के आकार की सी बना दी जाती थी। इससे दोनों कान ढक जाते थे और बाल दोनों ओर लटके रहते थे। बालों को कोई-कोई घूंघर वाले भी बनाते थे। इस समय पीछे या ऊपर जूड़ा बाँधने की विधियाँ तो कुछ साधुओं में प्रचलित है परन्तु पीछे चोटी रखने की या दोनों कानों पर बालों के लटकाने की शैलियाँ लुप्त हो गई हैं। उस समय अन्तिम दोनों विधियाँ सुमेरिया में प्रचलित थीं।

**दाढ़ी की शैलियाँ**

मोहनजोदाड़ो के लोग मूछें नहीं रखते थे। प्रतिमाओं में मूछें सब की साफ हैं।

परन्तु उस युग में दाढ़ी बढ़ाने का शौक था। यह भी बहुत लम्बी नहीं रक्खी जाती थी। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दाढ़ी बनवाने का रिवाज था। सुमेरिया के लोग दाढ़ी खूब लम्बी रखते थे परन्तु सिन्धु प्रदेश में दाढ़ी बहुत नहीं बढ़ने दी जाती थी। तो भी कोई लम्बी दाढ़ी रखता था और कोई छोटी। इसको संवारने की भी दो तीन शैलियाँ थीं। कोई इसको पीछे घुसा लेता था और कोई आगे लटका लेता था और कोई मामूली छोटी सी रखता था और बाकी कटवा देता था। केवल ठोढ़ी के ऊपर कुछ थोड़े से बाल रखने का और शेष बाल उस्तरे से साफ करवा देने का भी रिवाज था।

### स्त्रियों के अलंकार

महिलाओं के अलंकार कई प्रकार के बनते थे। गले के अलंकार कई भाँति के थे। एक अलंकार विशेष उल्लेख के योग्य है। यह एक प्रकार का तंग चिपका हुआ कालर सा मालूम होता है जिससे नीचे से ऊपर तक सब गर्दन ढकी रहती थी। यह कालर वास्तव में अनेक हंसलियों या चूड़ियों को परस्पर एक के ऊपर दूसरी को जोड़ कर बनाया जाता था। इस प्रकार का जेवर इस समय भी दक्षिण पंजाब के गाँवों में स्त्रियाँ पहनती हैं। मोहनजोदाड़ो और हरप्पा में अलंकारों से भरे हुये दो तीन चाँदी के घड़े मिले हैं। कुछ जेवर भूमि में गड़े हुये मिले हैं। ये ज़ेवर, सोने के, चाँदी के, सोना चाँदी के मिश्रण के, ताँबे के और रांगे के बने हुये हैं। सोने के सिवाय इन्हीं धातुओं के बर्तन भी बनते थे। अलंकार कई प्रकार के हैं, जैसे करधनी, हार, माला, ब्रेसलेट, चूड़ी, बालों के पिन, कानों की बालियाँ, नाक की बुलाक, अंगूठी, पैर के जेवर आदि। इन अलंकारों में करधनी बड़ी कला और कारीगरी से बनी हुई है। हार और मालायें भी कई प्रकार की और उत्तम हैं। अन्य अलंकार भी तत्कालीन कला-प्रेम के सुन्दर उदाहरण हैं। वास्तव में इनमें अनेक जेवर-आधुनिक जेवरों की तुलना में भी उत्तम माने जा सकते हैं।

### बटन, दर्पण और काजल

बटन कई प्रकार के बनते थे और ताँबा, रांगा आदि कई चीजों के बनाये जाते थे। जिस प्रकार के बटन सर्वाधिक संख्या में यहाँ मिले हैं, ठीक वैसे ही बटन प्राचीन समय में माल्टा द्वीप और पुर्तगाल तथा दक्षिण फ्रांस में भी बनाये जाते थे। सिन्धु प्रदेश में दर्पणों का भी प्रयोग होता था। मोहनजोदाड़ो में तीन दर्पण प्राप्त हुए हैं। उनमें एक बिल्कुल छोटा और दो बड़े आकार के हैं। कितनी ही काजल की डिब्बियाँ और सलाइयाँ उपलब्ध हुई हैं। मालूम होता है कि स्त्रियाँ ही नहीं बल्कि पुरुष भी अपने नेत्रों में काजल डाला करते थे। इसी प्रकार की डिब्बियाँ सुमेरिया में भी प्राप्त हुई हैं। वहाँ इनमें उबटन रखा जाता था।

### चित्रकला

कला और कारीगरी में सिन्धु प्रदेश के निवासियों ने बहुत उन्नति की थी। इस विषय में मोहनजोदाड़ो और हरप्पा दोनों समोन्नत थे। जैसे नमूने मोहनजोदाड़ो में मिलते हैं वैसे ही हरप्पा में भी उपलब्ध हुए हैं। दोनों स्थानों पर पत्थर और मृत्तिका का काम बनता था परन्तु पत्थर के काम में इन लोगों ने कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं की थी। मिट्टी के काम में और उसको ऊपर से अलंकृत करने में इन्होंने बड़ी दक्षता प्राप्त करली थी। इस काम के लिए सिन्धु नदी की मृत्तिका काम में लायी जाती थी। इसमें अन्य नदियों की मिट्टी की भाँति कुछ रेत और कुछ चूने के टुकड़े मिले रहते थे। कुछ भाग भोडल का भी होता था। जिसके कारण मिट्टी में सुन्दर चमक आ जाती थी। मिट्टी के बर्तन चाक पर उतारे जाते थे जो काष्ठनिर्मित होता था। उतार कर इन बर्तनों को भट्टी में पकाया जाता था। भट्टियाँ भी गोलाकार सुन्दर और वैज्ञानिक ढंग की बनी हुई होती थीं। बर्तनों को रेखा, वृत्त और अन्य चित्रों तथा बेलबूटों से विभूषित किया जाता था।

### विविध प्रकार के पात्र

पात्र कई प्रकार के बनते थे। इनमें मुख्य छोटे बड़े घड़े हैं, जो कई काम में लिये जाते थे। इनमें पानी भरा जाता था, आभूषण रखे जाते थे, इन्हीं की हौज बनाई जाती थी, इनको रँहट बनाने के काम में लिया जाता था और इसके अतिरिक्त इनके अनेक अन्य उपयोग किये जाते थे। उस समय पानी पीने के सुन्दर सकोरे भी बनाये जाते थे जो पानी पीकर फोड़ दिये जाते थे। मिट्टी के पिंजरे चूहे पकड़ने के लिए बनाये जाते थे। पालतू पक्षियों को रखने के वास्ते भी ये काम में आते थे। दवातें भी मिट्टी की बनाई जाती थीं। कुछ ऐसे अति लघु रूप के पात्र प्राप्त हुये हैं जिनमें सुगन्धित द्रव्य रखा जाता होगा। ऐसी तश्तरियाँ भी मिट्टी की बनी हुई मिली हैं जिनमें कई खाने बने हुये हैं। इस समय भी ऐसे बर्तन मसाले रखने के वास्ते भारत में बनते हैं। शायद ये तश्तरियाँ भी इसी प्रयोजन के हेतु बनाई गई हों। सबसे अनोखा एक पात्र मिलता है जो ऊपर नीचे चपटा है और शेष समगोल है। यह पोला होता है और गोलाई में कई छिद्र होते हैं। ऊपर इसमें बड़ा छिद्र होता है। शायद इसमें कुछ अग्नि भरी जाती होगी और यह कमरों में "हीटर" के काम में लाया जाता होगा, वैसे ही लोग उससे हाथ-पैर गर्म किया करते होंगे। यह छोटे से छोटा तीन इंच लम्बा और बड़े से बड़ा दस इंच लम्बा बनाया जाता था। मध्य भाग की परिधि लम्बाई के अनुपात से होती थी।

### बन्दरों की उत्कृष्ट प्रतिमाएँ

दो प्रतिमायें बन्दरों की मिली हैं जो विशेष उल्लेख के योग्य हैं। ये दोनों एक

प्रकार की लुब्दी की बनी हुई हैं। एक प्रतिमा में बन्दर भूमि पर बैठा हुआ है और उसके हाथ अपने घुटनों पर रखे हुए हैं। इसकी रचना और सफाई चीनी जैसी है। दूसरी प्रतिमा में बन्दर ने अपना बच्चा गोद में ले रक्खा है। कला की दृष्टि से दोनों प्रतिमायें अनुपम हैं। इस समय भी ऐसी प्रतिमायें बनाना कलाकार का चमत्कार समझा जा सकता है।

## हाथी और उसके दाँत का उपयोग

मोहनजोदाड़ो में हाथी दाँत का भी काम बनाया जाता था। खुदाई में हाथी दाँत मिले हैं। हाथी की सूँड़ भी एक प्रतिमा में बनी हुई है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ के शासक या अति धनाढ्य लोग हाथी रखते थे। सिन्धु प्रदेश में तो हाथी होते ही नहीं। इसलिए ये नैपाल की तराई से मँगवाये जाते होंगे। हाथी दाँत की बड़ी चीजें बनी हुई नहीं मिलीं। बालों के पिन, चौपड़ की सारें और अन्य ऐसी ही छोटी-छोटी चीजें हाथी दाँत की बनाई जाती थीं।

## सुइयाँ और सिलाई

रुई सिन्धु प्रदेश में उत्पन्न होती थी। उसके कपड़े बनते थे और ये काटे और सीये जाते थे। इस बात का इससे पता चलता है कि कई प्रकार की सुइयाँ वहाँ प्राप्त हो चुकी हैं। ये प्रायः ताँबे और राँगे की बनाई जाती थीं और इनमें नाका बना हुआ होता था। किसी का नाका चीर कर बना हुआ होता था और किसी का मोड़ कर। एक अनोखी बात यह है कि सोने की भी सुइयाँ बनाई जाती थीं। कला और कुशलता की दृष्टि से ये सुइयाँ आधुनिक सुइयों की बराबरी नहीं कर सकतीं।

## बैलगाड़ी, रथ और खिलौने

इस प्रदेश के निवासियों के आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और रीति-रिवाज भी उनकी प्रौढ़ और उन्नत संस्कृति के अनुकूल थे। खुदाई से जो अनेक खिलौने आदि प्राप्त हुये हैं उनसे इस पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और उनकी संस्कृति के विविध अंगों के विषय में भी हमको ज्ञान प्राप्त होता है। खिलौने या तो मिट्टी के बनाये जाते थे या घोंघों के या हाथी दाँत के। खिलौने में सर्वाधिक प्रचार बैलगाड़ियों का था। छोटी-छोटी टूटी बैलगाड़ियाँ मिट्टी की बनी हुई सहस्रों की संख्या में मिली हैं। इससे स्पष्ट है कि बच्चों को यह खिलौना अति प्रिय होगा। बैलगाड़ी नगर और गाँवों में प्रायः यत्र-तत्र बालक देखा करते होंगे, इसलिए इसी को खिलौने का रूप दिया गया।

## विविध प्रकार के खिलौने

खिलौनों में मिट्टी के घर और पक्षी भी बनाये जाते थे। पक्षियों की टाँगें लकड़ी की बनती थीं। कुछ पक्षी ऐसे भी बनाये जाते थे जिनकी चोंच खुली हो

अर्थात् ये गाते हुये दिखाये जाते थे। पक्षियों के पिंजरे भी मिट्टी के बने हुए मिले हैं। ये उपयोग के लिए भी बनाये जाते थे और बालकों के क्रीड़ार्थ भी। इससे पता चलता है कि मधुर कण्ठ वाले और मधुर बोलने वाले पक्षी, तोता मैना आदि पाले जाते थे और उनको बालक प्रायः खिलाया करते थे। पक्षियों के ऐसे खिलौने भी बनाये जाते थे जिनको बजाने के वास्ते उनमें तूती लगी हुई हो। इन तूतियों से सीटी बजती थी। इस प्रकार के मिट्टी के सस्ते खिलौने इस समय भारत में यत्र-तत्र बनते हैं और विशेषकर गांव के हाट, बाजार और मेलों में बहुत बिका करते हैं।

**तोलने के बांट और तुला**

खिलौनों में मिट्टी की तराजू भी बनाई जाती थी। इसके पलड़े खिलौनों में प्राप्त हुये हैं। प्रति पलड़े में तीन छेद हैं। इनमें रस्सी पिरोकर डंडी से बाँधी जाती थी। यह तो खिलौना है परन्तु तोलने की तराजू भी इसी शैली की बनती थी। तोलने के बाट भी प्राप्त हो चुके हैं। ये दशमलव विधि से बढ़ते हैं।

**शतरंज, चौपड़ और उनकी सारें**

मिट्टी के और हाथी दाँत के पासे और मोहरे तथा गोटे भी मिली हैं, ये खिलौने नहीं मालूम होते परन्तु विनोद और समय काटने के लिए स्त्री-पुरुष जो खेल खेलते होंगे उनमें इनका प्रयोग किया जाता होगा। इनमें कोई घनाकार है, कोई आयताकार और कोई त्रिकोण। चतुष्कोणों के तीन पार्श्वों पर संख्यायें खुदी हुई हैं और एक पार्श्व पर कुछ कलात्मक चित्र बने हुए हैं। उस समय क्या-क्या खेल खेले जाते थे, इसका तो पता नहीं चलता परन्तु दो ईंटें ऐसी मिली हैं जिन पर कुछ कोष्ठ बने हुए हैं, शायद यह प्रत्येक ईंट किसी बड़े बोर्ड की एक अंश मात्र है। इन बड़े बोर्डों पर गोटें और मोहरे रखे जाते होंगे और चलाये जाते होंगे। वर्तमान चौपड़ और शतरंज इन प्राचीन खेलों के ही विकसित या विकृत रूपान्तर प्रतीत होते हैं। मिस्र और मेसोपोटामियाँ में ऐसे बोर्डों का प्रयोग होता था और ऐसे ही गोट या मोहरें भी वहाँ काम में आते होंगे। ऋग्वेद कालीन आर्य लोग द्यूतक्रीड़ा के बड़े शौकीन थे। महाभारत की विपत्ति द्यूत व्यसन से ही आरम्भ होती है।

**ढोल, गुरगुडी आदि वाद्य**

वाद्य में शायद सर्वाधिक प्रचार ढोल का था। अथर्ववेद काल तक यही लोकप्रिय और अति प्रचलित वाद्य था। गुरगुडी के भी चिन्ह और खिलौने प्राप्त हुये हैं। यह भी एक प्रकार का छोटा ढोल है। यह गर्दन से लटकाया जाता था और बजाने वाला चलता हुआ इसको बजाया करता था। यह वाद्य इस समय भी किसी-किसी अवसर पर काम में आया करता है। राजस्थान में शीतला की पूजा करते समय यह

वाद्य बजता है और काशी प्रयाग में खटीक जाति के विवाह आदि के अवसरों पर यह बजाया जाता है। ऐसा अनुमान होता है कि मोहनजोदाड़ो में ताशों का भी प्रचार था। राजस्थान में लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व तक यह वाद्य काम में लाया जाता था। अब नगरों में यह लुप्त हो गया है परन्तु कस्बों और गांवों में कहीं-कही अब भी चलता है। यहाँ यह अरबी ताशा कहलाता है। इस समय भी अरब लोग इसका प्रयोग करते हैं।

---

# दसवाँ अध्याय
## आर्यों का आगमन और द्रविड़ों से संघर्ष

कई कारणों से अपने आदि निवास मध्य एशिया को छोड़ कर आर्य लोगों ने बहुत प्राचीन काल में खैबर की घाटी से पंजाब में प्रवेश किया। इतिहास के पंडित इसका समय ठीक निश्चित नहीं कर पाये हैं। पंजाब में बसने के बाद इन लोगों ने ऋग्वेद की रचना की। प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने इस रचना का समय ईसा से बारह सौ वर्ष पहले, विन्टरनिट्ज ने ईसा से तीन हजार वर्ष पहले, बाल गंगाधर तिलक ने छः हजार वर्ष पहले और अविनाशचन्द्रदास ने ईसा से पचीस हजार वर्ष से भी अधिक माना है। भारतीय परम्परा वेदों को अनादि और अपौरुषेय मानती है। यहाँ हमको इस विवाद में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही मान लेना काफी होगा कि वेद बहुत प्राचीन हैं और ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व इनकी रचना हुई होगी।

आर्य लोग गौर वर्ण, लम्बे, सुडौल और सुन्दर थे। मध्य एशिया में भी ये लोग पशु पालन और कृषि कार्य करते थे। भारत में प्रवेश करने पर भी इन्होंने यही व्यवसाय किया। ये लोग भारतवर्ष में सब एक बार में ही नहीं आये थे। एक समूह के बाद दूसरा समूह आता था। ज्यों-ज्यों इनकी संख्या बढ़ती गई त्यों-त्यों ये लोग सारे पंजाब में फैल गये एवं पेशावर से अम्बाला तक आर्य लोगों की बस्तियाँ बस गई थीं। इनके आने से पहले पंजाब में ही नहीं समस्त भारतवर्ष में द्रविड़ लोग निवास करते थे। इन लोगों की संस्कृति अच्छी उन्नत हो चुकी थी। द्रविड़ लोग वृक्षों की, भूत पिशाचों की और साँपों की पूजा करते थे। इन लोगों में अन्धविश्वास भी बहुत प्रचलित थे। इनके छोटे-छोटे गाँव सारे देश में बसे हुये थे। कहीं बड़े-बड़े कसबे भी थे। वहाँ इनके साधारण दुर्ग बने हुये थे। इनका भी व्यवसाय कृषि और पशुपालन था।

जब आर्य लोग पंजाब में बसने लगे तो उनका द्रविड़ लोगों के साथ संघर्ष हुआ। आर्य लोग संगठित और द्रविड़ लोगों से अधिक उन्नत थे। मध्य एशिया से प्रस्थान करने के बाद इन्होंने लम्बे अर्से तक अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना किया था। इसलिये ये संघर्ष के आदी थे। द्रविड़ लोग काले, कुरूप और छोटे कद के थे। आर्य इनसे घृणा करते थे। दोनों के संघर्ष में आर्यो की विजय हुई। द्रविड़ लोग अपने घर-बार छोड़ कर गंगा के मैदान की ओर चल दिये और जो रहे उन्होंने

आर्य लोगों की अधीनता स्वीकार करली। परन्तु दोनों के सम्पर्क के कारण फिर शनैः-शनैः इनका मेल-जोल बढ़ने लगा। खेती के काम में द्रविड़ लोगों से आर्यों को बड़ी सहायता मिलती थी और इसी प्रकार पशु-पालन के कार्य में। घरों में द्रविड़ लोग दासों की भाँति काम-काज करते थे। इस सम्पर्क के कारण द्रविड़ लोगों के देव-देवी आर्य लोगों के धर्म में प्रवेश करने लगे। इनके अन्ध विश्वास आर्यों के घरों में घुस गये। इनके रीति-रिवाज और भूत-प्रेत सम्बन्धी विश्वास आर्यों ने अपना लिये। परन्तु द्रविड़ लोगों को आर्यों ने समकक्ष कभी नहीं माना। इनकी संस्कृति विलीन हो गई, इनके किलों का ध्वंस कर दिया गया, इनकी बस्तियाँ उजड़ गईं। जिन्होंने दासता स्वीकार की वे ही पंजाब में रह गये। शेष इधर-उधर छिन्न-भिन्न हो गये।

**ऋग्वेदिक संस्कृति**

पंजाब में बसने पर आर्य लोगों ने सुन्दर संस्कृति का निर्माण किया। ये लोग प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की पूजा करते थे। सूर्य, वायु, अग्नि पृथ्वी, आकाश, इन्द्र और ऊषा आदि इनके उपास्य देव थे। नदी और वृक्षों की पूजा इन्होंने द्रविड़ लोगों से ली थी। इसी प्रकार मंत्रोपचार अर्थात् उच्चाटन, मारण और वशीकरण आदि तथा मणि प्रयोग भी द्रविड़ लोगों से ही आये हुये प्रतीत होते हैं परन्तु आर्यों का धर्म मुख्यतः प्रकृति के विशाल और जाज्वल्यमान पदार्थों की पूजा करना ही था। ये ईश्वर के विविध स्वरूप मानते थे और ईश्वर को इन सबका अधिपति या प्रजापति कहा जाता था। आर्य लोगों को इस बात का ज्ञान था कि ईश्वर केवल एक है। लेकिन अग्नि, सूर्य, वायु आदि उसके विविध स्वरूप माने गये हैं।

आर्यों के विविध समूह पंजाब के विविध स्थानों पर बस गये थे। इनमें अम्बाला के आस-पास का प्रदेश सर्वोत्तम माना जाता था। इसके उत्तरी भाग में ब्रह्मऋषि देश और दक्षिण को ब्रह्मावर्त देश कहते थे। प्रत्येक समूह का देश एक राज्य बन गया था। इस प्रकार पंजाब में आर्यों के कितने ही राज्य थे। राजा को लोग प्रायः निर्वाचित करते थे लेकिन कभी-कभी वह वंशक्रमानुगत भी हुआ करता था। राजकाज में सहायता देने के लिये प्रत्येक राज्य में दो संस्थायें थीं। एक का नाम सभा था और दूसरी का नाम समिति। ये राजा को निर्वाचित करती थीं, उसको सलाह देती थीं, आवश्यकता होने पर उसको सिंहासन से उतार देती थीं और दूसरे को राजा बना देती थीं और पश्चाताप करने पर कभी-कभी उसी राजा को पुनः सिंहासन पर बिठा दिया करती थीं। राजा का प्रधान सलाहकार पुरोहित हुआ करता था।

आर्य लोग अपने-अपने व्यवसायों के अनुसार चार भागों में विभक्त हो गये थे। जो लोग अध्ययन और अध्यापन करते थे वे ब्राह्मण कहलाते थे। युद्ध और देश-रक्षा तथा शासन का कार्य करने वाले क्षत्रिय माने जाते थे। इसी प्रकार खेती, पशु पालन और

वाणिज्य करने वाले लोग वैश्य या विश कहलाते थे। चौथी श्रेणी में शूद्र माने जाते थे। ये लोग प्राय द्रविड़ लोग थे। इनका और वैश्यों का सम्पर्क सबसे अधिक रहता था। क्योंकि खेती और व्यापार में द्रविड़ों के बिना काम नहीं चल सकता था। जो आर्य द्रविड़ लोगों से अधिक सम्पर्क रखते थे वे कुछ नीचे माने जाने लगे। इसलिये उनकी पृथक जाति हो गई और वे लोग विश अर्थात् प्रजा कहलाने लगे। आरम्भ में ब्राह्मण और क्षत्रिय लगभग एक ही माने जाते थे। फिर जब देखा कि क्षत्रियों का भी काम द्रविड़ों के बिना नहीं चलता तो इन लोगों की जाति भी बिल्कुल पृथक हो गई। इस प्रकार चार वर्णों की रचना हुई। वर्ण का अर्थ है रंग। आरम्भ में रंग के कारण ही जातियां बनने लगी थीं। इसलिये शूद्र वर्ण, आदि नाम प्रचलित हो गये। फिर वर्ण का अर्थ वर्ग हो गया।

### विभिन्न व्यवसाय

आर्य अधिकांश कृपक थे। क्षत्रिय और ब्राह्मण भी थोड़ी-बहुत खेती अवश्य करते होंगे। परन्तु यह उनका मुख्य धन्धा नहीं था। तो भी अधिकांश संख्या खेती करने वालों की ही थी। इसके बिना लोगों का निर्वाह नहीं हो सकता था। खेती से सम्बन्ध रखने वाले व्यवसाय भी विकसित हो चुके थे। इसलिये गांवों में लोहार, बढ़ई, कुम्हार आदि भी पाये जाते थे। आर्य लोग रथों में बैठ कर युद्ध किया करते थे और धनुष बाण इनका प्रधान अस्त्र था। बर्छी, भाले भी काम में आते थे। इन अस्त्र और शस्त्रों तथा रथों का निर्माण भी बहुत बड़ा व्यवसाय था। इसके अतिरिक्त आर्य लोग कवच पहनते थे। स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्र और अलंकार धारण करती थीं, पुरुष भी जेवर पहना करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में गुरु-शिष्य परम्परा स्थापित हो चुकी थी। गुरु का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता था। शिक्षण प्रायः गुरुमुख द्वारा ही होता था। विद्या कंठाग्र की जाती थी। विद्यार्थी प्रायः गुरु के ही पास रहते थे।

### आर्यों का विस्तार

आर्यों के समूह सैकड़ों वर्ष तक खैबर की घाटी से पंजाब में प्रवेश करते रहे। इस निरन्तर दबाव के कारण आर्य लोगों को गंगा और यमुना के मैदानों में प्रवेश करना पड़ा। इस प्रकार पूर्व की ओर इनका विस्तार होने लगा। बढ़ते-बढ़ते ये लोग बंगाल तक पहुँच गये और दक्षिण में विन्ध्याचल तक। एवं सम्पूर्ण उत्तर भारत पर आर्य लोगों का आधिपत्य हो गया। ज्यों-ज्यों ये बढ़ते जाते थे त्यों-त्यों इनका और द्रविड़ों का संघर्ष होता जाता था। जिधर जाते थे वहीं द्रविड़ों को भगा कर ये लोग अपनी बस्तियाँ बसाते थे। परन्तु यह भी सम्भव नहीं था कि इतने विस्तृत देश में बसी हुई द्रविड़ों की बस्तियाँ उच्छिन्न हो जायँ और आर्य लोगों का समस्त देश पर अधिकार हो जाय। द्रविड़ लोग भी लाखों की तादाद में होंगे। इनमें कुछ लोग भाग

कर दक्षिण की ओर चले गये। परन्तु लाखों ही लोग उत्तर में रह गये। इन बहु-संख्यक द्रविड़ लोगों के साथ जब आर्य लोगों का सम्पर्क हुआ तो आर्य संस्कृति पर द्रविड़ लोगों का प्रभाव और भी अधिक पड़ने लगा। आर्य लोगों ने इस वात का प्रयास किया कि इनसे अधिक हेल-मेल न हो और आर्य वर्ण शुद्ध वना रहे। इसलिये शूद्र स्त्रियों के साथ विवाह का निषेध किया गया। फिर भी वर्णसंकरता अर्थात् वर्णों की मिलावट वन्द नहीं हुई। वास्तव में वर्ण की शुद्धता केवल कल्पनामात्र है। संसार के प्रत्येक देश में इसके लिये प्रयत्न किए गये परन्तु यह कहीं सफल नहीं हुआ। सारे संसार में वर्णसंकरता दृष्टिगत होती है। फिर भी आर्यों ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। उन्होंने जाति-नियम कठोर बनाये। अब आर्यो के तीनों वर्ण भी निश्चित हो गये। परस्पर विवाह सम्बन्ध वन्द हो गये और शूद्रों से तो किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रक्खा गया। परन्तु शास्त्र की बातें शास्त्रों में ही रहीं और व्यवहार की बातें चलती रहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि नई-नई जातियाँ बनने लगीं और जाति प्रथा कठोर भी होने लगी।

गंगा के मैदान में वसने के वाद धन-धान्य की वृद्धि हुई। वड़े-वड़े राज्य स्थापित हो गये और राजा लोग वड़ी-वड़ी सेनायें रखने लगे। सामन्त प्रथा चल पड़ी। राजाओं की निरंकुशता वढ़ने लगी। सभा और समिति का महत्व अत्यन्त कम हो गया। राजाओं की स्वतन्त्रता पर भी कई प्रतिबन्ध थे। राजा को राज्याभिषेक के समय शपथ लेनी पड़ती थी कि "मैं अन्तिम समय तक धर्म-पूर्वक शासन करूँगा और प्रजा के साथ किसी प्रकार का द्रोह नहीं करूँगा।" राजकाज में सहायता देने के लिये एक मन्त्री परिषद् का विकास हुआ। आवश्यकता के अनुसार इसमें कई मन्त्री होते थे जो राजा को विभिन्न विषयों पर सलाह दिया करते थे। ये राज्य के रत्न माने जाते थे। इनमें राजा की पटरानी और युवराज की भी गणना थी। राजा कानून का निर्माण नहीं करता था। न्याय परम्परागत और ईश्वर कृत या ऋषिकृत माना जाता था। वास्तव में यह ऋषियों का वनाया हुआ था। इसी प्रकार करग्रहण के भी निश्चित नियम थे। राजा अपनी इच्छानुसार साधारण स्थिति में कर नहीं वढ़ाया करता था युद्ध और विपत्तियों के अवसर पर लोगों से ऋण लेता था और विजय प्राप्ति पर उसको वापस देने की प्रतिज्ञा करता था।

**आर्थिक दशा**

गंगा के मैदानों में वसने के वाद आर्थिक दृष्टि से आर्य अधिक सम्पन्न और समृद्ध हो गये थे। समय पर वर्षा होती थी और अन्न उपजता था। इसलिये ये लोग खाने पीने की चिन्ता से विमुक्त थे। ऐसी अवस्था में स्वाभाविक बात थी कि भोग विलास के साधन वढ़ते और वस्त्र आभूषण, वाहन तथा सुन्दर भवनों का निर्माण

होता। ईसा से छः सौ या सात सौ वर्ष पहले भारतवर्ष में सप्तभौमिक प्रासाद अर्थात् सात मंजिले मकान बनने शुरू हो गये। ऐसे मकान सारे देश में कहीं-कहीं बने हुए थे। इनका प्रचार दक्षिण में लंका तक हो गया था। लंका में ऐसे एक मकान के खंडहर अब तक विद्यमान हैं।

## विविध विषयों में उन्नति

ऋग्वेदिक काल में ही आर्य लोग सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की चाल पर विचार करने लग गये थे। उस समय उनको अनुमान हो गया था कि सूर्य के चारों ओर घूमने में पृथ्वी कितना समय लगता है। इसलिए वे अधिक मास मानने लगे थे। गंगा के मैदान में आने पर उनको इस प्रकार के चिन्तन के लिए और अधिक समय मिलने लगा। यहाँ नीले आकाश की छटा, प्रकाशमान सूर्य के प्रभाव और नक्षत्रखचित रात्रि तथा सुहावनी चन्द्रिका ने उनको और अधिक प्रेरित किया। अतः उनका ज्योतिष ज्ञान और अधिक सम्पन्न हुआ। इन्हीं कारणों से वे धर्म के विविध तत्वों पर विचार करने लगे जिससे षड्दर्शन की उत्पत्ति हुई। जीव और ब्रह्म के परस्पर सम्बन्ध और सृष्टि की उत्पत्ति पर विचार करना आर्य संस्कृति की विशेषता है। इसलिए धर्म के विषय मे 'मुन्डे-मुन्डे मतिर्भिन्ना' होने लगी। ईसा से छः सौ या सात सौ वर्ष पहले अनेक प्रकार के सम्प्रदाय और मतमतान्तर प्रचलित हो गए। एक बौद्ध ग्रन्थ में चौरासी प्रकार के मतमतान्तरों का उल्लेख है। आर्य लोग यह भी मानने लगे कि यज्ञ करने से सब प्रकार की फल सिद्धि हो सकती है। ये लोग ऋग्वेदिक काल से ही अग्नि पूजक थे और उस समय भी यज्ञ, हवन हुआ करते थे। परन्तु अब इनका प्रचार अधिक हो गया और कई प्रकार के यज्ञ होने लगे। विचारशील लोग इससे ऊब गये और यज्ञों का विरोध होने लगा। परन्तु फिर भी यह चलते रहे। चिन्तक लोगों ने जीव और ब्रह्म पर खूब प्रचार किया और तपोमय जीवन के महत्व पर जोर दिया। इस विषय के ग्रन्थ उपनिषद् कहलाने लगे। जिन ग्रन्थों में क्रिया कलाप अर्थात् यज्ञ विधि का वर्णन दिया है वे ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाने लगे। इन्हीं से मिलते-जुलते दूसरे ग्रन्थ हैं जो आरण्यक कहलाते हैं। इस प्रकार ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व आर्य संस्कृति बहुत उन्नत हो चुकी थी परन्तु उसमें मतमतान्तरों का जाल बिछा हुआ था और यज्ञादि का विरोध होने लगा था। वास्तव में एक ओर चिन्तन और विचार थे और दूसरी ओर यज्ञ और विविध प्रकार की क्रियायें तथा मन्त्र तन्त्र। विचारशील लोग चाहते थे कि इस जटिल जाल से छुटकारा हो, धर्म का कोई सीधा मार्ग दिखाई दे जिससे साधारण लोग भी अपने जीवन को उत्तम बना सकें।

---

# ग्यारहवाँ अध्याय

## बौद्ध धर्म और जैन धर्म

ईसा से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व कपिल वस्तु नामक नगर के समीप लुम्बनी वन में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम शुद्धोदन था। गौतम जन्म से ही विचारशील थे। विवाह हो जाने पर भी ये चिन्तन में डूबे रहते थे। पुत्र जन्म के बाद भी इनमें मोह उत्पन्न नहीं हुआ। एक दिन एकाएक सर्वस्व त्याग कर ये वन में चले गये। वर्षों तक इधर उधर घूमें और साधुओं की बातें सुनी। अन्त में इन्होंने गया के पास एक वट वृक्ष के नीचे अटल संकल्प के साथ समाधि लगा कर घोर तपस्या की जिससे इनको ज्ञान प्राप्त हो गया और ये अपने आपको बुद्ध कहने लगे। इन्होंने प्रथम उपदेश काशी के निकट सारनाथ स्थान पर अपने चार शिष्यों को सुनाया। ये वाक्य संसार में अमर हो गये। फिर उन्होंने अपने धर्म का उपदेश देने के लिये खूब भ्रमण किया। ये अपने जीवन काल में ही महात्मा माने जाने लगे। जहाँ इनका उपदेश होता था वहाँ हजारों लोग उपस्थित हुआ करते थे। इनके मूल सिद्धान्त हैं "चत्वारि आर्य सत्यानि और आर्य अष्टांग मार्ग।" चत्वारि आर्य सत्यानि निम्न लिखित हैं—१. मनुष्य जीवन में दुःख ही दुःख हैं। २. दुःख तृष्णा से उत्पन्न होता है। ३. तृष्णात्याग से दुःख नष्ट होता है। ४. तृष्णा त्याग आर्य अष्टांग मार्ग पर चलने से होता है। आर्य अष्टांग मार्ग हैं—सत् धर्म, सत् कर्म, सद् व्यवसाय, सत् दृष्टि आदि।

### महावीर का जन्म

महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इनका जन्म ईसा से लगभग ५५० वर्ष पूर्व माना जाता है परन्तु इसके विषय में बहुत मत भेद है। इनके पिता का नाम महाराज अश्वसेन था जो काशी के राजा थे। परन्तु काशी के इतिहास में अश्वसेन राजा का कहीं नाम नहीं आता। महावीर की जीवनी बुद्ध की जीवनी से बहुत मिलती जुलती है। तीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने घर का त्याग किया, सत्य और शान्ति की खोज में ये जंगलों में भटके, साधु सन्यासियों से मिले और उग्र तप किया। अन्त में उनको ज्ञान हुआ। इन्होंने अहिंसा, सत्य, असन्तोष, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का उपदेश किया। तप और काया क्लेश को जैन धर्म में बड़ा महत्व दिया जाता है और इससे भी अधिक महत्व अहिंसा का है।

कालान्तर में जैनधर्म में दो सम्प्रदाय हो गये—श्वेताम्बर और दिगम्बर। फिर उत्तर भारत में जैन धर्म का खूब प्रचार हुआ। दक्षिण में भी यह कन्याकुमारी तक पहुँच गया। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों मत साथ साथ चलते रहे।

### बौद्ध धर्म का प्रचार

बौद्ध धर्म में दो सम्प्रदायों का विकास हुआ। एक महायान कहलाता था और दूसरा हीनयान। हीनयान के अनुयायी बुद्ध के मूल सिद्धान्तों को मानते थे। महायान के अनुयायी बुद्ध के अतिरिक्त अन्य कई देवताओं को मानते थे। इनके अतिरिक्त इन लोगों का यह भी मत था कि महात्मा लोग बार बार अवतार लेकर सत्कर्म करते हैं। इनको ये लोग बोधिसत्व कहते थे। अशोक के शासन काल तक हीनयान अधिक शक्तिशाली था। स्वयं अशोक ने इसी धर्म का प्रचार किया था। इसके पश्चात् बाहर से कई जातियाँ आईं। इनमें जिन लोगों ने बौद्धधर्म ग्रहण किया उन्होंने महायान सम्प्रदाय को ही माना। इससे महायान धर्म में विदेशियों के विचार भी घुस गये और इसका बड़ा रूपान्तर हो गया। आगे चलकर महायान में हिन्दुओं की भाँति स्वर्ग, नर्क, तन्त्र, मंत्र, भूत पिशाच और अनेक देवी-देवता माने जाने लगे। परन्तु बौद्ध धर्म का प्रचार खूब हुआ। महाराज अशोक ने भारतवर्ष के कोने-कोने में शिला-लेख खुदवा कर धर्म महामात्र नियुक्त करके तथा स्वयं यात्रायें करके इस धर्म का प्रचार किया। भारतवर्ष के सीमान्त राज्यों में और तिब्बत, लंका, मिस्र, सीरिया आदि स्थानों पर धर्म प्रचारक भेजकर बौद्ध धर्म फैलाया। लंका में उनके भाई और पुत्री ने इसका प्रचार किया।

### जैन धर्म का प्रचार

इसी प्रकार चन्द्र गुप्त मौर्य ने जैन धर्म का प्रचार किया और दक्षिण में श्रवणबेलगोला नामक स्थान पर उपवास के द्वारा उन्होंने अपना देह त्याग किया। चन्द्र गुप्त के बाद समय समय पर अनेक राजाओं ने जैन धर्म का प्रचार करवाया परन्तु विदेशों में इसका प्रचार नहीं हुआ।

### सामाजिक परिवर्तन

बौद्ध धर्म के प्रचार से सामाजिक संगठन में कुछ परिवर्तन हुए। बुद्ध जाति-पाँति की उपेक्षा करते थे। उन्होंने ब्राह्मणों को महत्व नहीं दिया। बौद्ध धर्म का प्रचार किसी भी वर्ण का व्यक्ति कर सकता था। बुद्ध चरित्र पर अधिक जोर देते थे। उनका कहना था कि चत्वारि आर्य सत्यानि और आर्य अष्टांग मार्ग से प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को उन्नत कर सकता है। उन्होंने आत्मा और ब्रह्म का भी कभी विवेचन नहीं किया। सम्भव है वे ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते हों। परन्तु उन्होंने ऐसा

कभी कहा नहीं। बुद्ध ने अपने जीवन काल में ही संघ बनाया। जिन लोगों की धर्म में विशेष रुचि थी वे लोग घर बार त्याग कर साधु वेश धारण करके संघ में सम्मिलित हो जाया करते थे। ऐसे कई संघ उनके समय में स्थापित हो गये। इनमें सम्मिलित होने वाले भिक्खु कहलाते थे। फिर अपने प्रिय शिष्य आनन्द के आग्रह पर उन्होंने भिक्खुणी संघ भी बनाया। गृहस्थ जीवन त्याग कर साध्वी का वेश धारण करके किसी भी जाति की स्त्री इसमें सम्मिलित हो सकती थी। परन्तु बुद्ध ने आनन्द से कहा था कि भिक्खुणियों को शामिल कर लेने से संघ की आयु पाँच सौ वर्ष कम हो गई है। बुद्ध के देहान्त के बाद सदियों तक ऐसे संघ बनते रहे। फाहियान (चौथी शताब्दी) और ह्वानचांग (सातवीं शताब्दी) ने देखा था कि भारतवर्ष में हजारों बुद्ध विहार थे और एक एक विहार में हजारों भिक्खु या भिक्खुणियाँ रहती थीं। ये लोग भिक्षा माँग कर अपना निर्वाह करते थे और अपना जीवन पठन पाठन तथा चिन्तन में व्यतीत करते थे परन्तु यह बात असम्भव थी कि लाखों लोग चिन्तनशील और अध्ययनशील हों। इन विहारों में लाखों युवक और युवतियाँ थीं। धीरे-धीरे संघों में क्षीणता आने लगी। चरित्र गिरने लगा और अनाचार तथा भ्रष्टाचार फैल गया। बौद्ध धर्म के प्रचार से वर्ण व्यवस्था को बड़ा धक्का लगा। परन्तु बौद्धों की एक नई जाति बन गई और इसी प्रकार जैन लोगों का भी एक पृथक् वर्ग बन गया। हिन्दू धर्म से जिनको जाना था वे चले गये और जो रहे वे वर्ण व्यवस्था की दीवार के अन्दर ज्यों के त्यों बने रहे।

**बौद्ध और जैन धर्म की देन**

बौद्ध धर्म से भारतीय संस्कृति को अनेक लाभ हुये। बौद्धों ने तक्षशिला, नालन्द और विक्रम शिला में बड़े-बड़े विश्वविद्यालय स्थापित किये। इनमें हजारों विद्यार्थी विद्वान् अध्यापकों से अनेक विषयों की शिक्षा प्राप्त करते थे। बौद्ध धर्म और साहित्य के सिवाय इनमें अन्य विषय भी पढ़ाये जाते थे। यहाँ बड़े-बड़े छात्रावास, और विद्यालय बने हुये थे और इनमें बड़े-बड़े पुस्तकालय थे जिनमें विविध विषयों के हजारों हस्तलिखित ग्रन्थ थे। इन विशाल विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त बौद्धों ने यत्र-तत्र अगणित विहार बनवाये थे जिनमें भिक्षु रहा करते थे। ये विहार भी स्कूलों और कालेजों का काम देते थे। बौद्ध विद्वानों ने अनेक विषयों पर सैकड़ों सुन्दर ग्रन्थ लिखे थे। महायान की भाषा संस्कृत थी। इसलिये जहाँ महायान पहुँचा वहाँ संस्कृत का थोड़ा-बहुत प्रचार अवश्य हुआ। चीन, जापान, तुर्किस्तान, ब्रह्मा आदि देशों में उस समय संस्कृत जानने वाले कुछ विद्वान मिल सकते थे और सर्वत्र धर्म तथा भाषा के प्रचार के लिये अनेक भारतीय ब्राह्मण विद्वान जा बसे थे। बौद्ध धर्म की प्रेरणा से सुन्दर कला की सृष्टि हुई थी। बौद्धों के स्तूप, चैत्य, गुफा, मूर्तियां और स्तम्भ सब

निराले हैं। अशोक के राजमहलों को देखकर फाहियान छः सौ वर्ष बाद भी चकित हो गया था, और यह कहता था कि ऐसे सुन्दर महल मनुष्य नहीं बना सकते, ये देवों के बनाये हुये जान पड़ते हैं। अशोक की लाटें अब भी इंजीनियरों को चकित कर रही हैं। स्तूपों की शैली और सुन्दरता निराली ही है और बौद्ध प्रतिमायें तो कला की पराकाष्ठा हैं। बौद्ध विषयों को अंकित करने के लिये अजंता और एलोरा में जो भीतिचित्र बने हुये हैं वे बड़े मनोहर और कोमल हैं। रंगों का समन्वय, विषयों की सजीवता, तूलिका की कोमलता, अंगों का अनुपात, और प्रभाव की सात्विकता, ये सब अद्भुत हैं। विदेशों में बौद्ध धर्म की प्रेरणा से चित्रकला का अच्छा विकास हुआ, और जो चित्र बने, सब सात्विक और उत्तम बने।

भारतीय संस्कृति को जैन धर्म की प्रमुख देन है अहिंसा और कर्म सिद्धान्त। आर्य लोग अहिंसा को पहले भी सत्कर्म मानते थे, परन्तु वैदिक ऋषियों ने इसको विशेष महत्व नहीं दिया था। बौद्ध धर्म ने इसको अपनाया और जीवों पर दया करना मनुष्य का परम कर्तव्य बतलाया। तो भी इसको सर्वोपरि नहीं माना। जैन धर्म में अहिंसा को ही सर्वाधिक प्रधानता दी गई है। वास्तव में शेष सब बातों का इस महाव्रत में समावेश हो जाता है। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह सब अहिंसा के ही अंग रूप हैं। व्रत और उपवास भी अहिंसा है और भूखा रह कर देह त्याग करना भी अहिंसा है। मूल सिद्धान्त जैन धर्म ने यह माना है कि अपने व्यवहार से किसी प्राणी को—मनुष्य, पशु, पक्षी और कीट पतंगों को ही नहीं बल्कि अति सूक्ष्म और अदृश्य कीटाणु को भी—कोई कष्ट नहीं होना चाहिये। मारना ही हिंसा नहीं है, बल्कि मन या वचन से किसी को दुःख या क्लेश पहुँचाना भी हिंसा है। इस प्रकार जैन धर्म ने उत्तम और आदर्श नागरिकता का उपदेश दिया है। इसी के प्रभाव से समस्त देश दया को प्रधान धर्म मानने लग गया है और शाकाहारी बन गया है। इस दृष्टि से भारत सम्पूर्ण जगत् में एक अद्भुत देश है। अहिंसा भारत में शास्त्र का विषय नहीं है, यह दैनिक जीवन का विषय है। प्रत्येक भारतीय बच्चा समझता है कि अहिंसा अच्छी बात है। मांसाहारी भी अहिंसा को सिद्धान्ततः स्वीकार करते हैं।

इसी प्रकार कर्म सिद्धान्त भी भारत का लोक विचार बन गया है। यह सिद्धान्त महावीर से पहले भी भारतीय ज्ञान का अंग था, परन्तु जैन धर्म में इसका अति सुन्दर विवेचन किया गया है। इसको इतना वैज्ञानिक, सुबोध और सर्व सम्मत जैन धर्म ने ही बनाया है। मनुष्य जैसा कर्म करेगा वैसा फल मिलेगा, इसको इस समय आबालवृद्ध अशिक्षित लोग भी जानते हैं। यह विचार अब न जैन मत है न वेद मत। यह भारत का लोक मत बन गया है और इसको इतना स्वतः सिद्ध माना जाता है कि इसकी कोई शास्त्रीय व्याख्या आवश्यक नहीं समझी जाती।

दर्शन, साहित्य और कला के क्षेत्र में जैन मार्गियों ने भारत को बहुत कुछ दिया है। जैन तर्कशास्त्र बड़ा उन्नत और परिमार्जित है। इससे भारतीय तर्क पुष्ट और सम्पन्न हुआ है। जैन शास्त्रों में कर्म सिद्धान्त का अद्भुत विवेचन है। कर्म के भेद प्रभेद और उसके नानाविध फल बड़ी सूक्ष्मता से समझाये गये हैं। जैन धर्म का अनेकान्तवाद भारतीय दर्शन का जगमगता हुआ रत्न है। इस वाद में बतलाया गया है कि प्रत्येक विषय या पदार्थ को सात प्रकार (सप्त भंग) से देखा जा सकता है। एक ही विधि या पक्ष का आग्रह करने से समस्त सत्य का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। अनेकान्तवाद विचारोदार्य की पराकाष्ठा है। जैन साहित्य भी विपुल और विशुद्ध है, इसमें कथा, वार्ता, काव्य, इतिहास, पुराण, व्याकरण आदि सब विषय हैं। जैन लेखकों की यह विशेषता है कि वे शृङ्गारिकता में नहीं घुसते और स्त्रियों के विविध अंगों का तथा काम भावनाओं और चेष्टाओं का ऐसा वर्णन नहीं करते जो विकार उत्पन्न करने वाला हो। यही बात जैन कला के विषय में कही जा सकती है। सारे देश में दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अगणित मन्दिर हैं और तीर्थकरों की और अन्य स्त्री पुरुषों की नाना प्रकार की अगणित प्रतिमायें हैं। जैन ग्रन्थों में अनेक विषयों के कितने ही हस्तलिखित सुन्दर चित्र हैं। कला के इन विविध अंगों में सात्विकता, सरलता, विशालता और सूक्ष्मता जैन मत की विशेष देन है।

———

# बारहवाँ अध्याय

## भारतीय सभ्यता का स्वर्णयुग

चन्द्रगुप्त मौर्य ( ईसा से ३२० वर्ष पूर्व ) से हर्षवर्धन ( ६०६ से ६४८ ईस्वी ) तक का युग भारत के इतिहास में स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस युग में बड़े-बड़े शक्तिशाली राजा हुए। बौद्ध, जैन और पौराणिक धर्म का प्रचार हुआ और कला, कौशल तथा शिक्षा की खूब उन्नति हुई। भारतीय सभ्यता विदेशों में फैली। भव्य भवनों का और सुन्दर स्तूप तथा मन्दिरों का निर्माण हुआ। संगीत, कला, नृत्य आदि ने प्रौढ़ावस्था प्राप्त की। यह युग वास्तव में भारत के इतिहास में जाज्वल्यमान युग है।

### तत्कालीन शासन प्रणाली

**मूलतः एक प्रणाली**

उपरोक्त साम्राज्यों और छोटे-छोटे राज्यों का शासन मूलतः एक ही प्रकार से होता था। प्रबन्ध के प्रयोजन से राज्य प्रान्तों में विभक्त किये जाते थे और प्रान्त आहारों में। आहार को भुक्ति भी कहते थे। भुक्ति में अनेक गाँव होते थे। इन विभागों के नाम समय-समय पर बदलते रहते थे और इसी प्रकार राज कर्मचारियों के नाम भी बदल जाया करते थे। प्रबन्ध की दृष्टि से एक हजार गाँवों की एक इकाई मानी जाती थी। इसका प्रबन्ध एक राज कर्मचारी के सुपुर्द होता था। इकाई के दस भाग किये जाते थे और प्रत्येक भाग पर एक अफसर रहता था। फिर इस भाग के भी दस विभाग किये जाते थे और प्रत्येक विभाग पर एक कर्मचारी होता था। प्रत्येक गाँव का एक मुखिया, ग्रामणी या पटेल हुआ करता था। राज्य के आकार के अनुसार यह भाग और विभाग भी छोटे या बड़े हुआ करते थे। परन्तु राज्य को इस प्रकार विभक्त करके प्रत्येक भाग के प्रबन्ध के लिए राज्य कर्मचारी नियुक्त कर प्रबन्ध संचालन करने का सिद्धान्त था।

**राजनीति के ग्रन्थ**

इस युग में राजनैतिक विचारों और सिद्धान्तों का अच्छा विकास हुआ था। राजनीति या दंडनीति पर कई ग्रन्थ लिखे गये थे जो कई कारणों से लुप्त हो गये परन्तु फिर भी कुछ ग्रन्थ बच गये हैं। कितने ही ग्रन्थ ऐसे हैं जिनका विषय मुख्यतः राजनीति नहीं है परन्तु एक दो अध्याय या प्रकरण उनमें इस विषय पर भी लिखे

हुये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों में प्रसंगवश राजनैतिक सिद्धान्तों का वर्णन या उल्लेख आ जाता है। इन सबके आधार पर प्राचीन राजनीति की रूपरेखा भली प्रकार से सामने आ जाती है।

**गणराज्य और एकतन्त्र राज्य**

राज्य दो प्रकार के होते थे—गणराज्य और एकतन्त्र राज्य। गण राज्यों का शासन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होता था और एकतन्त्र राज्य का प्रबन्ध राजा स्वयं करता था। जनता के प्रतिनिधि किस प्रकार और कितने समय के लिये निर्वाचित होते थे इसका पता नहीं चलता। परन्तु गणराज्य के सब मूल सिद्धान्त उस समय माने जाते थे और प्रचलित थे। गण शब्द से ही प्रकट है कि निश्चय या निर्णय करते समय गणना की जाती थी कि कितने प्रतिनिधि पक्ष में और कितने किसी प्रस्ताव के विपक्ष में हैं। इन प्रतिनिधियों के ऊपर एक प्रधान होता था जो किसी-किसी गण राज्य में राजा भी कहलाता था। यह पता नहीं चलता कि यह राजा किस प्रकार बनाया जाता था और कितने समय के लिये बनाया जाता था। गण राज्य कई प्रकार के थे और इनकी शासन प्रणाली तथा संगठन भी किंचित भिन्न थे। परन्तु कुछ मौलिक सिद्धान्त सब में समान माने जाते थे। पहली बात यह थी कि राज्य के प्रतिनिधियों की सलाह से शासन और नीति का निर्धारण तथा संचालन होता था। दूसरी बात यह थी कि राज्य का अधिपति जनता का बनाया हुआ होता था। किसी-किसी गण राज्य में वंशक्रमानुगत राजा भी होता था परन्तु यह क्रम लोकमत से चलता था। गण राज्य की स्थिति और रक्षा के लिये यह जरूरी माना जाता था कि उस राज्य में प्राचीन मर्यादाओं का आदर हो, वीर, वृद्ध और योग्य व्यक्तियों का सम्मान हो, देवालयों की रक्षा की जावे और मंत्र तथा नीति यथासम्भव गुप्त रहें। ऐसा न होने पर गणराज्यों के नष्ट होने का भय था। गणराष्ट्रों और नृपराष्ट्रों में प्रायः अनबन रहा करती थी। कभी कोई गणराज्य नृपराज्य बन जाता था और कभी कोई नृपराज्य गणराज्य बन जाया करता था। लगभग ११०० वर्ष तक (७०० ईसा पूर्व से ४०० ईसा पश्चात्) भारत में अनेक गण राज्य रहे लेकिन इनमें कोई भी ऐसा उन्नत, सम्पन्न और सफल नहीं हुआ जिसका इतिहास में कोई विशेष स्थान होता या जो भारतीय संस्कृति को कुछ देन दे सकता।

**तत्कालीन राजनीति के मूल सिद्धान्त**

प्रायः नृपराष्ट्र ही राज्य माना जाता था। राजा के बिना कोई राष्ट्र हो सकता है, इसकी कोई कल्पना ही नहीं करता था। एक लेखक का तो यहाँ तक कहना है कि राजा ही वास्तव में राष्ट्र है और राष्ट्र ही राजा है। राजा के बिना समाज की स्थिति नहीं रह सकती। एक व्यक्ति दूसरे को खाने लगता है। किसी की जान

या माल सुरक्षित नहीं रह सकता। इसलिये लोक-रक्षा के निमित्त ईश्वर ने राजा की सृष्टि की है। वह अष्ट दिग्पालों के शाश्वत अंशों से बनाया गया है। दीखने में वह मनुष्य है परन्तु वास्तव में वह देवता है। अतः वह चाहे बालक हो, तो भी उसकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। उसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी का और क्रोध में मृत्यु का निवास है। राजा वास्तव में सर्व-तेजमय है। यह राजनीति का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष यह है कि राजा वास्तव में प्रजा का दास है। वह जनता का दिया हुआ खाता है इसलिये उसको चाहिये कि प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करे। इसके अतिरिक्त राजा की शक्ति और अधिकारों पर अनेक प्रतिबन्ध थे। उसको वेद, धर्मशास्त्र, धनुर्वेद, कला, अर्थशास्त्र और वार्ता तथा पशुपालन आदि अनेक विषयों का अध्ययन करना पड़ता था जिससे उसकी बुद्धि निर्मल और कर्तव्य भावना जागृत तथा पुष्ट हो जाया करती थी। दंडनीति परम्परागत या ऋषि-मुनि-प्रणीत होती थी। राजा का इसके निर्माण से कोई सम्बन्ध नहीं समझा जाता था। दंड राज्य की रक्षा करता है और जनता को इसका आदर करना चाहिये—यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त था। दंड वास्तव में राजा से भी ऊपर माना जाता था। उसका भी यह कर्तव्य था कि दंड का आदर करे। यह एक परम्परा थी और इसका उलंघन कभी कोई राजा नहीं करता था कि राज्य का शासन संचालन स्वयं राजा को ही नहीं करना चाहिये बल्कि इस काम के लिये मंत्रियों की एक परिषद् बनानी चाहिये और उनकी सलाह से राजकाज करना चाहिये। मंत्री आठ से ग्यारह तक और विशेषावस्था में बारह तक हो सकते थे। यह जरूरी समझा जाता था कि मंत्री उसी राज्य का निवासी, निर्भय, दक्ष, वाग्मी, शूर और दृढ़-भक्त हो। अच्छा मंत्री वह माना जाता था जो राजा का मान तो पूरा करे लेकिन गुप्त रूप से उसको कड़वी से कड़वी बात भी कहदे और जिसके कोप के भय से राजा भी सदा धर्म नीति पर आरूढ़ रहे। राजकर प्रायः षष्ठांश होता था परन्तु यह नियम या मर्यादा प्रायः भूमि कर के सम्बन्ध में थी। अन्य कर इससे अधिक या न्यून भी होते थे। कुछ पदार्थों पर कोई कर नहीं लिया जाता था और बालक, विधवा, रोगी, अपंग आदि व्यक्तियों तथा बड़े बड़े विद्वानों पर भी कर नहीं लगाया जाता था। दंड, मंत्रि-परिषद् और कर, इन तीन प्रतिबन्धों के कारण राजा कभी स्वच्छन्द आचरण नहीं कर सकता था। इनसे भी बड़ा प्रतिबन्ध था अभिषेक के समय ली हुई शपथ। यदि कोई राजा राज्याभिषेक के समय धर्मपूर्वक ली हुई शपथ का उल्लंघन करे तो प्रजा का यह भी कर्तव्य माना जाता था कि उसके विरुद्ध खड़े होकर आवश्यकतानुसार उसको मार डाले।

### तत्कालीन राजनीति के मूल सिद्धान्तों के अनुसार चन्द्रगुप्त का शासन

उपरोक्त सिद्धान्तों पर लगभग एक सहस्र वर्ष तक भारत में शासन हुआ।

महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन चाणक्य के सिद्धान्तों पर चलता था। चाणक्य का अर्थशास्त्र लगभग उसी समय लिखा गया था। इसमें प्राचीन लेखकों का भी हवाला है। इससे प्रकट होता है कि चन्द्रगुप्त से पहले भी प्रायः ये ही सिद्धान्त प्रचलित थे। अतः इन्हीं सिद्धान्तों पर चन्द्रगुप्त का भी शासन चलता था। यह भी कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन को देखकर तथा उसी को एक प्रकार से आदर्श मानकर चाणक्य ने अर्थशास्त्र लिखा होगा। परन्तु अधिकांश विद्वान अर्थशास्त्र को सिद्धान्त ग्रन्थ मानते हैं, इसलिये यह कहना अधिक युक्तिसंगत है कि चाणक्य के सिद्धान्तों पर चन्द्रगुप्त के शासन का संचालन होता था। राजधानी में राजा को सलाह देने के वास्ते मंत्रि परिषद् थी और प्रान्तों में गवर्नर थे। शायद प्रत्येक गवर्नर की भी एक परिषद् होगी। गर्वनर प्रायः राजकुमार होते थे, परन्तु कभी कभी वे दूसरे भी हो सकते थे। महाराज चन्द्रगुप्त का एक गवर्नर वैश्य था जिसका नाम पुष्पगुप्त था। मालवा, गुजरात और काठियावाड़ उसके अधीन थे। प्रान्त में गवर्नर (प्रान्तपाल) के नीचे राजूक होते थे। इनकी संख्या प्रान्त के क्षेत्रफल पर निर्भर थी। राजूक (रज्जूक) माल (रेवेन्यू) के बड़े अध्यक्ष का नाम था। इनका प्रधान काम था बंदोवस्त जो रज्जु के द्वारा किया जाता था। इसीलिये ये रज्जूक कहलाते थे। इनका दूसरा नाम महा-मात्र भी था। अशोक के शासन काल में दूसरे बड़े-बड़े राज कर्मचारी भी महा-मात्र कहलाते थे। महामात्रों या रज्जूकों के मातहत राष्ट्रपति, विषयपति, ग्रामकूट, आयुक्त और नियुक्तक होते थे। राष्ट्र और विषय प्रान्त के हिस्सों के नाम थे। एक प्रान्त में उसके क्षेत्रफल के अनुसार कई राष्ट्र हो सकते थे और इसी प्रकार एक राष्ट्र में कई विषय। यदि विषय बहुत बड़ा होता था तो उसके भी अलग-अलग भाग कर दिये जाते थे जो आहार, आहरण या भुक्ति कहलाते थे। समय-समय पर ये नाम कभी-कभी बड़े भाग के लिये और कभी छोटे भाग के लिये प्रयुक्त हुआ करते थे। यदि राज्य छोटा हुआ तो उसके इतने भाग और प्रभाग करने की आवश्यकता नहीं होती थी और यदि बड़ा हुआ तो उसके सब प्रकार के छोटे बड़े हिस्से करने पड़ते थे। प्रत्येक भाग या प्रभाग पर एक अध्यक्ष या कर्मचारी होता था।

**उस समय के महकमे**

शासन के विभिन्न अंगों के लिये जुदे जुदे विभाग (महकमे) होते थे। चाणक्य ने ऐसे छत्तीस महकमों का उल्लेख किया है। दूसरे लेखकों ने भी शासन के कई महकमों के नाम लिखे हैं। प्रत्येक महकमे पर एक अध्यक्ष होता था। अध्यक्ष और मंत्री का पद प्रायः बराबर सा ही माना जाता था। इसलिये अध्यक्ष में उतनी ही योग्यता और क्षमता आवश्यक मानी जाती होगी जितनी मंत्री में। अर्थात् अध्यक्ष की नियुक्ति के समय देखा जाता होगा कि वह तद्देशनिवासी, कृत्त-शिल्प, प्राज्ञ, वाग्मी,

प्रगल्भ, दृढ़ भक्त और सच्चरित्र है या नहीं। मंत्री और अध्यक्ष प्रायः उच्चकुलीन लोग हुआ करते थे परन्तु शास्त्रकारों ने लिखा है कि राजसेवा में योग्यता को प्रधानता देनी चाहिये, जाति या कुल को नहीं। अशोक के समय में पश्चिम भारत का गवर्नर तुशाष्प नामक एक ईरानी था और वह राजा तुष्य कहलाता था। आवश्यकतानुसार विभागों की और उनके अध्यक्षों की संख्या घटा बढ़ा करती थी। परन्तु प्रधान अध्यक्ष होते थे—समाहर्ता, कोष्ठागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, आयुधगाराध्यक्ष, तुलाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सीताध्यक्ष, नावाध्यक्ष आदि। समाहर्ता रेवेन्यू कमिश्नर था, कोष्ठागाराध्यक्ष को ट्रेजरी आफिसर कह सकते हैं, पण्याध्यक्ष कमिश्नर आफ ट्रेड एण्ड इन्डस्ट्रीज होगा, आयुधागाराध्यक्ष स्पष्ट ही है, तुलाध्यक्ष बाटों का अफसर होता होगा, सीताध्यक्ष उस समय डायरेक्टर आफ़ एग्रीकल्चर का नाम था, शेष दो के नाम स्पष्ट ही हैं।

### पाटलिपुत्र की नगरपालिका

पाटलिपुत्र के प्रबन्ध के वास्ते तीस सदस्यों की एक नगरपालिका थी। यह संस्था पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियों में विभक्त थी। प्रथम समिति का काम था उद्योग प्रबन्ध। यह समिति श्रमिकों की मजदूरी निश्चित करती थी और देखती थी कि शुद्ध उपयुक्त सामग्री का उपयोग किया जाता है या नहीं। कुशल कारीगरों की रक्षा का काम भी इसी समिति के अधीन था। यदि किसी कारीगर को कोई ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाता जिसके कारण वह अपना धन्धा करने से बेकार हो जाता तो अपराधी को प्राण दंड दिया जाता था। कुछ उद्योग धन्धे सरकार भी चलाती थी और इसके लिए दक्ष कारीगर सरकार में नौकर रक्खे जाते थे। दूसरी समिति वाणिज्य और व्यापार की देख-रेख करती थी। इसका काम था कि व्यापारी लोग केवल ऐसे बाट और पैमानों का ही उपयोग करें जिस पर सरकार की छाप हो। यह समिति क्रय विक्रय की व्यवस्था करती थी। जिस चीज का कोई व्यापार करना चाहता था उसको लाइसेंस देती थी। जो व्यक्ति दो वस्तुओं का व्यापार करना चाहता था उसको दुगनी लाइसेंस फीस देनी पड़ती थी। तीसरी समिति के सुपुर्द वस्तुनिर्माण के निरीक्षण का कार्य था। पुरानी और नई बनी हुई वस्तुओं को सम्मिलित करके बेचना अपराध माना जाता था। पुरानी चीजों को बेचने के वास्ते आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी, जो खास शर्तों के साथ दी जाती थी। चौथी समिति बिक्री पर मापा (कर) वसूल करती थी। इस मापे को चुराना बड़ा अपराध माना जाता था और अपराधी को प्राणदंड दिया जा सकता था। पाँचवीं समिति का कार्य था मनुष्यगणना। इसकी विधि यह थी कि जन्म और मरण का सविस्तर इन्द्राज सरकारी रजिस्टर में करवाया जाता था। इस विभाग का अध्यक्ष "नागरिक" कहलाता था। सरकारी रजिस्टर में जन्म लेने वाले या मरने वाले का लिंग, वर्ण, नाम, वंश, व्यवसाय, आय, व्यय और

पशु धन दर्ज किया जाता था। छठी समिति के सुपुर्द ऐसे विदेशियों की देख-रेख करने का काम था जो पाटलिपुत्र में आकर ठहरते थे। उस समय भारत और विदेशों में परस्पर बड़ा व्यापार होता था। अतः वाणिज्य के लिए तथा अन्य कार्य के लिए विदेशी लोग भारत की राजधानी में आया करते थे। यह समिति उनके निवास, चिकित्सा तथा रक्षा का प्रवन्ध करती थी और जब वे लोग इधर-उधर कहीं जाते थे तो उनकी रक्षा का प्रवन्ध करती थी। यदि इनमें से किसी की मृत्यु हो जाती तो उसकी अन्त्येष्टि क्रिया का तथा उसकी सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों तक पहुँचाने का प्रवन्ध भी यही समिति किया करती थी।

### प्रतिवेदक व्यवस्था

उपरोक्त प्रवन्धवर्णन पाटलिपुत्र का है परन्तु मौर्य साम्राज्य के बड़े-बड़े नगरों का प्रवन्ध भी इसी ढंग पर होता होगा। उस समय के प्रसिद्ध नगर काशी, प्रयाग, उज्जयिनी, पुरुषपुर, भृगुकच्छ, गिरनार आदि थे। इन दूर-दूर स्थानों से समाचार पहुँचाने के वास्ते राज कर्मचारी नियत थे। ये "प्रतिवेदक" कहलाते थे। ये लोग गाँव और नगर की दैनिक घटनाओं को देखते रहते थे और जो कुछ सुनते या समझते थे उसको ठीक उसी प्रकार लिखकर प्रान्तपति तथा मन्त्रियों के पास भेज दिया करते थे। इस प्रकार साम्राज्य से सहस्रों पत्र नित्य पाटलिपुत्र में पहुँचा करते होंगे। इनको भेजने के वास्ते कोई नियमित व्यवस्था अवश्य होगी। अपने साम्राज्य का हाल चन्द्रगुप्त को इन प्रतिवेदकों के द्वारा ही विदित होता था। अतः केवल विश्वसनीय और सत्यवादी तथा स्पष्टवादी लोग ही इन स्थानों पर नियुक्त किये जाते होंगे। परन्तु तत्कालीन भारत में सत्यवादी और स्पष्टवादी लोगों की कोई कमी नहीं थी। एरियन नामक एक यूनानी लेखक ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त के पास सदा सच्ची खबर पहुँचा करती थी क्योंकि कोई भी भारतवासी असत्य नहीं बोला करता था।

### दंड व्यवस्था

चन्द्रगुप्त की उत्तम दंड-व्यवस्था, सुप्रवन्ध और प्रजा की सच्चरित्रता इस बात से प्रकट होती है कि उसके राज्य में चोरी बहुत कम हुआ करती थी। मैगस्थनीज ने लिखा है कि सौ सवा-सौ रुपये की चोरी से अधिक चोरी होती हुई उसने न सुनी और न देखी। सभी अपराधों के लिए बड़ा कठोर दंड दिया जाता था। चन्द्रगुप्त ने ही इतना विशाल और विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया था। इसको दृढ़ करने के वास्ते शीघ्रातिशीघ्र व्यवस्था और शान्ति जमाने की आवश्यकता थी। यह कठोर दंड के द्वारा ही सम्भव हो सकता था। अतः कई अपराधों के लिए हाथ-पैर कटवा दिये जाते थे और कई के लिए प्राणदंड दिया जाता था। इससे कोई वर्बरता या पाशविकता नहीं प्रकट होती है। चन्द्रगुप्त का समय तो तेईस-सौ वर्ष पहले का है, इंगलैंड में

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक अर्थात् अब से केवल सवासौ वर्ष पूर्व तक कई अपराधों के लिये प्राणदंड दिया जाता था। बात यह थी कि प्राचीन और मध्य-काल में अपराधों से लोग घोर घृणा करते थे और सच्चरित्रता को बड़ा ऊँचा स्थान दिया करते थे, अतः अपराधी वास्तव में समाज का घोर शत्रु माना जाता था और अपराधों को रोकने के प्रयोजन से घोर दंड दिया जाता था।

## भूमिकर तथा अन्य कर

प्राचीन परम्परा के अनुसार भूमि कर के रूप में उपज का छठा भाग लिया जाता था, परन्तु यह समस्त साम्राज्य में एक जैसा नहीं था। जहाँ भूमि अति उर्वरा थी वहाँ उपज का चतुर्थांश भी लिया जाता था। भूमि की सिंचाई के वास्ते नहरों की विस्तृत व्यवस्था थी और इसका एक अलग महकमा था। अर्थशास्त्र में नहरों की देख-रेख, इनके जल विकासों की निगरानी, जल विभाग के नियम, भूमि का माप आदि का विशेष उल्लेख है। इससे यह भी प्रकट है कि भूमि कर के सिवाय सिंचाई कर अलग लिया जाता होगा। मैगस्थनीज ने लिखा है कि नहरों से जहाँ-जहाँ पानी देने के वास्ते निकास बने हुए थे उनकी देख-रेख बड़ी सावधानी से की जाती थी और इस काम के लिए कर्मचारी नियत थे। यह भी देखा जाता था कि सब कृषकों को पानी का उचित हिस्सा मिले, ऐसा न हो कि किसी को अधिक मिले और किसी को न्यून।

## यात्रियों के लिये सुख व्यवस्था

मार्गों के निर्माण और रक्षा के लिये एक अलग विभाग था। सड़कों की उचित संभाल की जाती थी। अशोक ने रास्तों पर थोड़े-थोड़े फासलों पर बड़ और आम के वृक्ष लगवाये थे और आधे-आधे कोस पर कुएँ खुदवाये थे। रात्रि में तथा दिन में विश्राम करने के वास्ते सरायें बनवाई थीं और प्रति अर्द्ध कोस पर मार्ग तथा फासले को सूचित करने के वास्ते पत्थर गड़वाये थे। पाटलिपुत्र से पुरुषपुर तक एक ऐसा मार्ग था जिसकी लम्बाई लगभग ११३० मील थी।

## सुदर्शन झील

मौर्य साम्राज्य में सुदूर प्रान्त और प्रदेशों की उन्नति का बड़ा ध्यान रक्खा जाता था। महाराज चन्द्रगुप्त ने गिरनार के पास काठियावाड़ में एक बहुत बड़ा बाँध बंधवा कर सुदर्शन नामक झील बनवाई थी। महाराज अशोक ने इसका जीर्णोद्धार करवाने में बहुत सा धन खर्च किया था। यह झील आस-पास की भूमि की सिंचाई करने के वास्ते बनाई गई थी। मौर्य सम्राट् जानते थे कि भारत कृषिप्रधान देश है और कृषि की उन्नति के वास्ते जल की सबसे प्रथम आवश्यकता है।

## सेना का परिमाण और प्रबन्ध

महाराज चन्द्रगुप्त के पास चतुरंगिणी सेना थी। इसमें नौ सहस्र हाथी, आठ सहस्र रथ, तीस हजार सवार और छः लाख पैदल थे। एक हाथी पर चार और एक रथ में तीन सैनिक बैठा करते थे। इस प्रकार चन्द्रगुप्त की सेना में कुल सैनिक छः लाख और नव्वे हजार होंगे। उससे पहले महा-पद्मनन्द (मगध नरेश) के पास भी छः लाख सेना थी। इसका हाल सुनकर ही सिकन्दर के सैनिक त्रस्त हो गये थे। चन्द्रगुप्त के पश्चात् बिन्दुसार के पास और तत्पश्चात् महाराज अशोक के पास भी इतनी बड़ी सेना अवश्य होगी। अशोक ने केवल एक युद्ध कलिंग देश के राजा से लड़ा था जिसमें घोर जन हानि हुई थी। यह संहार अशोक की विपुल सेना ने ही किया होगा। इतने बड़े साम्राज्य की रक्षा के लिये छः लाख सेना अब भी बड़ी नहीं मानी जाती तो उस समय तो यह एक प्रकार से छोटी ही थी। उस समय वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों का आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिये जन-शक्ति की अधिक आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त के पास नौ सेना भी थी और यह अशोक के पास भी अवश्य होगी। सेना का प्रबन्ध छः समितियों द्वारा हुआ करता था। ये छः समितियाँ थीं—नौ समिति, रसद और वाहन समिति, पदाति समिति, अश्व समिति, रथ समिति और गज समिति। दूसरी समिति का काम था रसद पहुँचाना, सवारियों का प्रबन्ध करना, सैनिकों के वास्ते भोजन बनवाना और बाजे वालों, सईसों, घसकटों और मिस्त्रियों का प्रबन्ध करना। प्रत्येक घुड़सवार के पास दो बर्छियाँ और एक ढाल रहती थी और पैदल (पदाति) के पास तलवार। तलवार के अतिरिक्त उसके पास भाला या धनुष बाण तथा तूणीर रहता था। आत्म रक्षा के वास्ते सैनिक कवच धारण किया करते थे। एरियन लिखता है कि बाण ऐसे प्रबल वेग से चलाये जाते थे कि ढाल या कवच इसको रोक नहीं सकता था।

## वमनम् और मद्यकर आदि

धनाढ्य लोगों पर एक कर लगाया जाता था जिसको अर्थशास्त्रों में 'कर्षकम्' और 'वमनम्' कहा है। नाम से ही प्रकट है कि इस प्रकार के कर का क्या उद्देश्य था। सम्पन्न लोगों को प्रेरणा दी जाती थी कि वे लोग अधिक से अधिक स्वर्ण सम्राट् को भेंट करें। जो इस प्रकार स्वतः भेंट करते थे उनको राज की ओर से सम्मानित ... जाता था। किसी को राज सभा में स्थान दिया जाता था, किसी को छत्र धारण ... इजाजत दी जाती थी और किसी को आभूषण या पगड़ी दी जाती थी। विक्रय पर कर लिया जाता था। बड़े-बड़े नगरों में यही मुख्य आय थी। अन्न और पशुओं के अतिरिक्त दूसरी कोई चीज उत्पत्ति स्थान पर या यत्र-तत्र नहीं बेची जा सकती थी। विक्रय के निमित्त नगर द्वार के पास स्थान बने हुये थे। यहाँ क्रय-विक्रय हुआ करता

था और सौदा तय होते ही उस पर राज कर ले लिया जाता था। इस विधि से कर प्राप्त करने में सुविधा रहती थी। विक्री के वास्ते जो चीजें आती थीं उन सब पर सरकारी मुद्रा लगाई जाती थी। राज-कर केवल विक्रय के समय ही लिया जाता था, दुबारा नहीं। विदेशों से आई हुई चीजों पर मूल्य का बीस प्रतिशत कर लगाया जाता था, और अन्य पदार्थों के कर की दर चार से दस प्रतिशत तक थी। जवाहरात की कीमत विशेषज्ञों द्वारा अंकवाई जाती थी और उस पर कर लिया जाता था। मद्य विभाग से भी सरकार को बहुत आमदनी होती थी। शराब की दूकानों पर हर प्रकार के आराम का प्रबन्ध किया जाता था, वे पुष्पों से सजी रहती थीं और कई प्रकार की सुगन्धियों से उनको आकर्षक बनाया जाता था। इनमें भारत में बना हुआ मद्य ही नहीं कपिशा और अफगानिस्तान का मद्य भी बेचा जाता था। विदेशी शराबों पर विशेष कर लगाया जाता था। मद्य-विक्रय के वास्ते राजाज्ञा (लाइसेंस) प्राप्त करनी पड़ती थी जिसकी फीस ली जाती थी।

### देश की समृद्धि

देश सम्पन्न और समृद्ध था। पाटलिपुत्र के महल सूसा और इकबटाना (ईरान) के महलों को मात करते थे। महाराज अशोक के महलों की भव्यता और वैभव देखकर चीनी यात्री फाहियान दाँतों तले अंगुली दबाता था और कहता था कि ये मनुष्यों ने नहीं देवों ने बनाये हैं। हाथी, घोड़े, ऊँट और गधे सवारी के काम में आते थे। हाथी पर प्रायः राजा और सामन्त या धनाढ्य लोग ही बैठते थे। गधे की सवारी भी सब नहीं केवल कुम्हार आदि जाति के लोग ही करते होंगे। उद्योग धन्धे सब व्यवस्थित और उन्नत थे, विदेशों से व्यापार होता था तथा पास के देशों में भारतवर्ष का नाम और दबदबा था। देश की समृद्धि का केवल इससे अनुमान किया जा सकता है कि उच्च राजकर्मचारियों का वार्षिक वेतन अड़तालीस सहस्र रूप्य (चाँदी) पण दिया जाता था और चपरासी या साधारण मजदूर का कम से कम वेतन साठ पण वार्षिक था। पण का मूल्य आजकल के एक रुपये के बराबर था।

### शासन का नैरन्तर्य

अशोक के शासन काल में भी प्रबन्ध व्यवस्था प्रायः ऐसी ही बनी रही। उस समय का समाज और शासन प्रायः परम्परा के अनुसार चला करता था, इसलिये परिवर्तन बहुत कम हुआ करते थे। जन्म, मरण और जय पराजय से राजा और राजवंश बदला करते थे परन्तु व्यवस्था में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ करता था। यदि राज्य छोटा होता था तो उसकी शासन व्यवस्था छोटे मान पर होती थी और बड़ा होता था तो बड़े मान पर। प्रान्त, राष्ट्र, प्रदेश, आहार, भुक्ति आदि के आकार और स्वरूप बदल जाया करते थे परन्तु मूलतः शासन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ करता

था। विशेषकर दो बातें ज्यों की त्यों बनी रहती थीं—राज कर और दंड नीति। इसके अतिरिक्त गांव का प्रबन्ध प्रायः वहाँ की पंचायत ही कर लिया करती थी। यही कारण था कि राज्य या साम्राज्य के उत्थान या पतन का प्रभाव समाज या शासन पर बहुत कम पड़ा करता था। करनीति में यदि किंचित् परिवर्तन हुआ तो उसका प्रभाव केवल बड़े-बड़े नगरों पर पड़ता था गाँवों पर नहीं। भूमिकर प्रायः षडांश होता था और किसी भी अवस्था में चतुर्थांश से अधिक नहीं लिया जाता था। युद्ध के समय या दुर्भिक्ष आदि विपत्तियों के समय राज्य के धनाढ्य नागरिकों से विशेष कर या ऋण लिया जाता था जो वापिस दे दिया जाता था।

### कण्व सुंग राज्य में सिक्के और श्रेणियां

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद सुंगों और कण्वों का राज्य हुआ। उनकी भी शासन प्रणाली वैसी ही बनी रही। फिर उत्तर में कुशानों का, पश्चिम भारत (मालवा, गुजरात और काठियावाड़) में शक क्षत्रपों का तथा महाराष्ट्र में भी कुछ समय के लिए शकों के दूसरे वंश का और दक्षिण में आन्ध्र वंश का राज्य स्थापित हुआ। इनके समय में भी शासन का ढंग वैसा ही चलता रहा। कुशान काल में सिक्के नये प्रकार के चलने लगे थे। सबसे बड़ा सिक्का सुवर्ण कहलाता था। एक सुवर्ण में पैंतीस कार्षापण होते थे। उस समय व्यापारी श्रेणियाँ बना कर काम करते थे। आन्ध्रों के राज्य में नासिक, गोवर्द्धन, जुनार आदि स्थानों पर ऐसी कई श्रेणियाँ थीं। ये श्रेणियाँ व्यापार का सर्व प्रकारेण प्रबन्ध करती थीं। मार्ग में भी रक्षार्थ सिपाही नियुक्त करती थीं। नवयुवक काम सीखने के वास्ते इनमें जाया करते थे। श्रेणियाँ, मन्दिरों और विद्यालयों को दान दिया करती थीं। लोग इनमें अपना रुपया जमा किया करते थे जिस पर ब्याज दिया जाता था। श्रेणियाँ उस समय एक प्रकार से बैंकों का काम करती थीं। यदि कोई व्यक्ति किसी संस्था या किसी कार्य के लिए दान देता और उसके संचालन के वास्ते कोई स्थायी कोष बनवाता था तो उसका इन्द्राज इन श्रेणियों में या नगर की निगम समाजों में हुआ करता था। इस प्रकार बहुत-सा काम जो इस समय राज्य की सहायता के बिना नहीं होता है वह उस समय श्रेणियों या सभाओं द्वारा ही हो जाया करता था। इसलिए राजनैतिक परिवर्तन होने पर भी देश के आर्थिक जीवन में विशेष हेर-फेर नहीं हुआ करते थे।

### गुप्त युग और उसका शासन

गुप्त वंश का शासनकाल भारत का जाज्वल्यमान स्वर्ण युग था। इसमें सर्वाङ्गीण विकास और चेतना हुई और शासन, साहित्य, कला और धर्म का प्रत्येक पक्ष पुष्ट हुआ।

गुप्त सम्राटों का शासन भी मौर्य शासन से मिलता-जुलता था। सम्राटों को

शासन कार्य में सलाह और सहायता देने के वास्ते एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। मन्त्रियों की संख्या कितनी थी और प्रत्येक मंत्री के सुपुर्द कौन-कौन से विभाग थे इसका पता तो ठीक नहीं चलता लेकिन ये सब परम्परा के अनुसार ही होंगे। परम्परा प्रायः आठ मंत्रियों की थी। परन्तु इनकी संख्या चाणक्य के अनुसार अधिक भी हो सकती थी। सेना, न्याय, धर्म, कोष, परराष्ट्र, भूमिकर और दौत्य आदि विषयों के वास्ते अलग-अलग मंत्री हुआ करते थे और सबके ऊपर एक मुख्य मंत्री होता था, जो 'प्रधान' कहलाता था। इन विभागों के संचालन करने वाले क्रमशः सचिव, प्राड़ विभाग, पंडित, सुमंत्र, मंत्री, आमत्य और दूत कहलाते थे। इनके नाम समय-समय पर बदला भी करते थे। गुप्त काल में मंत्री महासंधिविग्राहिक कहलाता था, और प्रधान को सर्वाध्यक्ष कहते थे।

### प्रान्तों का प्रबन्ध

गुप्त साम्राज्य देशों ( प्रान्तों ) में विभक्त था। प्रत्येक देश पर एक गवर्नर होता था जो सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता था। गवर्नर प्रायः राजकुमार या सम्राट का छोटा भाई हुआ करता था परन्तु विशेष योग्यता वाले दूसरे लोगों में से भी गवर्नर बनाये जाते थे। देश भुक्तियों में विभक्त होता था और भुक्ति विषयों में। विषय का अफसर विषयपति कहलाता था और भुक्ति का अफसर उपरिक। गवर्नर को महाराजा, गोप्ता या राजस्थानीय कहते थे। गवर्नर को राजकाज में सहायता देने के वास्ते बड़े-बड़े कर्मचारी होते थे जिनमें मुख्य थे महादण्डनायक और महादण्ड-न्यायायिक, पहिला पुलिस का काम करता था और दूसरा जज का। विषयपति को सहायता देने के वास्ते भी एक छोटी-सी समिति होती थी जिसमें विषय का प्रसिद्ध सेठ (बैंकर) प्रसिद्ध व्यापारी और प्रसिद्ध कारीगर होता था। इस प्रकार शासन के संचालन में जनता के मुख्य लोगों के सहयोग की भी आवश्यकता समझी जाती थी। गाँव का मुखिया ग्रामिक कहलाता था। इसके अतिरिक्त गाँव के अनुसार दो-तीन राज्याधिकारी वहाँ और रहते थे जिनमें उल्लेख के योग्य सीमाकर्मकार, अध्वर्यु आचार्य तथा हाठिक हैं। प्रथम कर्मचारी गाँव की सीमा निश्चित करता था, दूसरा कर्मकांड करवाता था, तीसरा अध्यापन करता था और चौथा बाजार की देखभाल करता तथा सेर बाट की निगरानी करता था।

### वाहिनी व्यवस्था

सेना में परम्परागत चारों अङ्ग अर्थात् हस्ती, अश्व, रथ और पदादि तो थे ही, इनके अतिरिक्त ऊँटों के रिसाले की भी व्यवस्था की गई थी। नौसेना मौर्य नौसेना जैसी ही थी। सेना के अध्यक्ष को महाबलाधिकृत कहते थे। उसके अधीन महा सेनापति थे। शायद प्रत्येक देश में एक महा सेनापति नियत था। दूसरे अफसरों के नाम थे अश्वपति, महाअश्वपति आदि।

### शान्ति और सच्चारित्र्य का वायुमंडल

गुप्त सम्राटों का शासन बड़ा व्यवस्थित था। बड़े-बड़े राज कर्मचारी सम्राट द्वारा नियत किये जाते थे। सुदूर देशों की भी अच्छी निगरानी की जाती थी। सब स्थानों से सम्राट के पास प्रतिदिन प्रति वेदकों द्वारा खबरें आया करती थीं। राजधानी दूतों के द्वारा मौखिक आज्ञायें और लिखित आज्ञायें (शासन) जारी हुआ करती थीं। साम्राज्य सुप्रतिष्ठित था और लम्बे अर्से से भारत पर कोई विदेशी हमला भी नहीं हुआ था। इसलिए इस युग का दण्ड विधान उतना कठोर नहीं था जितना मौर्य का। अधिकांश अपराधों के लिए अर्थ दण्ड दिया जाता था जिसकी मात्रा अपराध के अनुसार निश्चित की जाती थी। महापराधों के लिए, विशेषकर डकैती आदि के लिए, दाहिना हाथ कटवा दिया जाता था, परन्तु ऐसे दण्ड बहुत ही कम दिये जाते थे, और अपराध भी बहुत कम होते थे। प्राणदण्ड सिद्धान्ततः तो माना जाता था पर दिया नहीं जाता था। फाहियान जब तक भारत में रहा उसने कहीं नहीं सुना कि किसी को प्राणदण्ड दिया गया हो। वास्तव में उस समय जनजीवन बहुत ऊँचा था। जैनधर्म के अहिंसा प्रचार ने मनुष्यों की प्रकृति कोमल और दयालु बनादी थी जिसके कारण जब जीव-जन्तु की हत्या ही पापमानी जाती थी तो मनुष्य की हत्या की तो बात ही क्या थी ?

### तत्कालीन समृद्धि और संपन्नता

सारा देश सुखी और सम्पन्न था। दुख और दारिद्रय मानो देश से विदा हो गये थे। फाहियान जिधर जाता था उधर उसको समृद्धि ही समृद्धि दिखाई देती थी। कुछ नगर कालान्तर में ऊजड़ हो गये थे और कहीं-कहीं खेती बन्द होने से जंगल उत्पन्न हो गये थे, परन्तु यह सब आबादियों के हेर-फेर के कारण थे, दारिद्रय के कारण नहीं। फ़ाहियान के समय में बुद्ध का जन्म स्थान कपिलवस्तु और मरण-स्थान कुसीनगर वीरान हो चुके थे और श्रावस्ती में केवल दो-सौ घरों की बस्ती थी। इसका कारण यह था कि गणतन्त्र राज्य बहुत पहले ही नष्ट हो चुके थे। इसलिए इन नगरों का महत्व कम हो गया था। समस्त देश की प्रबन्ध व्यवस्था उत्तम थी। किसी को कहीं आने-जाने की रोक-टोक नहीं थी। मार्ग विविध थे। उन पर यात्रियों के लिए वैसी ही सुख-व्यवस्था थी जैसी अशोक के समय में। चिकित्सा के वास्ते अस्पताल खुले हुए थे। इनमें वैद्य लोग निदान और चिकित्सा तथा देख-भाल करते थे। रोगियों के रहने का प्रबन्ध था। इस विषय में यह बात उल्लेखनीय है कि भारत में तो ऐसी संस्थायें अशोक ने ईसा से तीन सौ वर्ष पहले जारी करदी थीं और शायद उससे पहिले भी ऐसी संस्थाएँ हों लेकिन यूरुप में पहिला अस्पताल जिसमें भी इतनी सुव्यवस्था नहीं थी, सातवीं शताब्दी में जारी किया गया था, अर्थात् जनहित या जनसुख का यह कार्य वहाँ भारत की अपेक्षा एक हजार वर्ष पश्चात् जारी हुआ था।

## शिष्ट और उच्च जीवन

जनता सच्चरित्र, सत्यशील और दयालु थी। माँस भक्षण केवल निम्नश्रेणी के लोग करते थे। जीवों का वध करने वाले गाँवों के बाहर रहते थे। लोगों का पारस्परिक व्यवहार शिष्ट, स्पष्ट और धार्मिक था। चोरी का कहीं भय नहीं था। यहाँ तक कि लोग अपने घरों में प्रायः ताले नहीं डालते थे।

## महाराज हर्ष का राज्य प्रबन्ध

यह स्वर्ण युग प्रायः महाराज हर्षवर्धन के शासनकाल (६०६–६४८) तक रहा। हर्ष का राज्य-प्रवन्ध भी प्रायः वैसा ही था जैसा गुप्त सम्राटों का। अपनी प्रवन्ध व्यवस्था और प्रजा की दशा देखने के वास्ते हर्ष दौरा किया करता था। जहाँ ठहरता था वहाँ तम्बू का राजभवन-सा खड़ा कर दिया जाता था। जब वह चलता था तो आगे बाजा बजता था। दौरे बहुत जल्दी-जल्दी किए जाते थे। हर्ष बहुत परिश्रमी और पराक्रमी राजा था। उसको अपने आराम का ख्याल नहीं था। वह जन्म भर युद्ध में तथा प्रवन्ध व्यवस्था देखने में और विद्याविनोद में लगा रहा। उसकी शासन व्यवस्था देखकर ह्वानच्वाँग को बड़ा सन्तोष हुआ था। उसने देखा था कि राज कर हल्का था, षड़ांश से अधिक प्रायः नहीं लिया जाता था। दान-पुण्य और शिक्षा प्रचार में उदारता पूर्वक धन खर्च किया जाता था। राज्य का काम करने वाले मजदूरों को उचित और पर्याप्त मजदूरी दी जाती थी। दण्ड विधान गुप्तकाल से अधिक कठोर हो गया था। अब कारावास दण्ड प्रचलित हो गया था और कारावास में बन्दियों के वास्ते उचित व्यवस्था नही की जाती थी। नाक, कान, हाथ और पैर काटने की सजा दी जाती थी; परन्तु यह भारी अपराधों के लिए ही दी जाती थी। प्रायः अर्थ दण्ड ही दिया जाता था। माता-पिता का अनादर करना भी महापराध माना जाता था। इसके लिए अपराधी को राज्य से निर्वासित कर दिया जाता था। राज्य के कार्यालयों में दैनिक घटनाओं का तथा दुर्घटनाओं का वृत्त लिखकर सुरक्षित रखा जाता था। इसके लिए विशेष राजकर्मचारी नियत थे। जनता में विशेषकर ब्राह्मणों और भिक्षुकों में शिक्षा का अच्छा प्रचार था। हर्ष की राज सभा में अनेक पंडित थे जिन में बाणभट्ट प्रसिद्ध था।

## सच्चरित्र के एक सहस्र वर्ष

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो गया कि महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य से महाराज हर्ष वर्धन तक लगभग एक सहस्रवर्ष का युग शासन व्यवस्था, शान्ति और समृद्धि की दृष्टि से भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्णयुग था। इसके कारण मुख्यतया दो थे। पहला कारण था बौद्ध और जैनधर्म का प्रचार और दूसरा कारण था हिन्दू धर्म की अपूर्व जागृति।

इस युग में जितने छोटे या बड़े शासक हुए वे सब किसी न किसी धर्म के अनुसार अपने जीवन को उच्च बनाने में अपना गौरव समझते थे, तथा सबके जीवन की अभिलाषा थी कि उनकी प्रजा धार्मिक, सुखी, सन्तुष्ट और सम्पन्न हो। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन धर्म ग्रहण कर राजसिंहासन त्याग दिया था और व्रत उपवास के द्वारा अपने जीवन का अन्त किया था। अशोक ने अपना समस्त जीवन बौद्ध धर्म के प्रचार में व्यतीत किया था। राज्य के समस्त साधनों का उपयोग प्रजा के जीवन-स्तर को नैतिक और धार्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाने में किया गया था। इतना ही नहीं उसके भाई महेन्द्र और संघमित्रा तथा चारुमति दोनों राजकुमारियों ने भी धर्म प्रचार में ही अपना जीवन बिताया था। फिर उसका पौत्र सम्प्रति परम श्रद्धावान जैन बना और जैसे अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था उसी प्रकार उसने निष्ठा के साथ जैन धर्म का प्रचार किया। कनिष्क तो कुशाण जाति का विदेशी शासक था परन्तु बौद्ध धर्म ग्रहण करने पर उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार के वास्ते प्रयत्न किया और बौद्ध पंडितों की एक सभा बुलाई। यूनानी राजा मलिन्द (मेनेन्डर) ने भी बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा का परिचय दिया था। शुंग, कण्व, आन्ध्र और शक वंश के राजा वैदिक धर्मावलम्बी थे और गुप्तवंशीय सम्राट परम वैष्णव थे। इन सबने हिन्दू धर्म को पुनर्जाग्रत और पुनः पुष्ट किया। शुंगों और आन्ध्रों ने अश्वमेध यज्ञ करवाये थे और वैदिक परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। जैन, बौद्ध और वैदिक या पौराणिक राजाओं का एक मात्र लक्ष्य यह था कि जनता में जागरण हो और नैतिक दृष्टि से जीवन का स्तर ऊँचा हो। इस उच्च लक्ष्य के कारण भारत की सत्यशीलता और सच्चरित्रता को देखकर मेगस्थनीज, फाहियान और ह्वानच्वांग चकित हो गए थे।

# तेरहवाँ अध्याय

## कला और साहित्य

यह युग धर्म, साहित्य, कला, विज्ञान और ज्ञान की सर्वाङ्गीण जागृति का काल था। अशोक के स्तम्भ जिन पर उसने अपनी धर्म लिपियाँ खुदवाई हैं, कला की दृष्टि से अद्भुत कृतियाँ हैं। प्रत्येक स्तम्भ केवल एक ही पत्थर का बना हुआ है। इनमें कुछ तो पचास फीट ऊँचे हैं, और वजन लगभग १३५० मन है। इनकी समगोलाई और चिकनाई तत्कालीन शिलाविदों की कला-कुशलता को प्रकट करती है। इन सब का पत्थर काशी के पास मिरजापुर की खान का है। इतने वजन के पत्थर को सैकड़ों मील की दूरियों पर ले जाना भी असाधारण काम है, विशेषकर उस युग में जब वैज्ञानिक वाहन नहीं बन चुके थे। ये स्तम्भ इतने घुटे हुए और चिकने हैं कि तेईस सौ वर्ष के बाद आज भी इनमें दर्शक के मुख का प्रतिबिम्ब दिखाई दे सकता है। कुछ इंजीनियरों को तो यहाँ तक भ्रम हो गया था कि शायद स्तम्भों के ऊपर कोई पालिश लगा हो। इन सज्जनों की धारणा थी कि ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व भारतीय कला इतनी उन्नत और पुष्ट नहीं हो सकती थी कि पत्थर में कोई अपना प्रतिबिम्ब देख सके। इस सन्देह से प्रेरित होकर इन्होंने स्तम्भों के ऊपर चिकने भाग को खुरचा और फिर वैज्ञानिक ढंग से जाँच की, तो खुरचन पत्थर की सिद्ध हुई। इससे विश्वास हो गया कि स्तम्भों पर पालिश नहीं है। उनको घिस-घिस कर ही इतना चिकना किया गया है। स्तम्भों के शिखर और भी अद्भुत थे। इनमें किसी शिखर में एक, किसी में तीन और किसी में चार केसरी बने हुये हैं। सिंहों के नीचे जो पीठिका है उसके चारों ओर घोड़े, बैल आदि के चित्र खुदे हुए हैं। एक पार्श्व पर बुद्ध का धर्म चक्र बना हुआ है। यह पीठिका और चार सिंहों का शिखर अब भारत सरकार ने अपना राज-चिन्ह बना लिया है। इन शिखरों में सिंह, घोड़े और बैल के चित्र अति उत्कृष्ट हैं। इनमें सजीवता, कोमलता और तद्रूपता ऐसी है जो इस युग में भी श्लाघ्य मानी जाती है। सब पशुओं में वेग अत्युत्तम ढंग से दरसाया गया है। सांची (मध्य-भारत) में अशोक का बनवाया हुआ एक सुन्दर और विशाल स्तूप है। इसका शिखर और इसके तोरण अत्युन्नत कला के नमूने हैं। अशोक के राजभवन के स्तम्भ उन पर खुदी हुई प्रतिमायें और पुष्प अतीव सुन्दर थे। महल के खम्भे भी दूसरे स्तम्भों की भाँति समगोल और सुन्दर थे। भवन का स्वरूप और निर्माण सबको चकित करता था।

फाहियान ने देखे तब अशोक के महल लगभग छः सौ वर्ष पुराने हो गये थे। तिस पर भी वह उनको देखकर मुग्ध हो गया था।

### कुशाण काल की कला

शुंग और कुशाण काल में भी कला की उन्नति रुकी नहीं, बल्कि अधिक विकसित हुई। इस काल में बुद्ध और बौधिसत्वों की तथा महायान धर्म के अनेक देव और देवियों की प्रतिमायें बनने लगीं। कुशाण कला का विकास मथुरा के आस-पास हुआ था। अतः मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में तत्कालीन प्रतिमायें तथा अलंकार के निमित्त बने हुये बेलबूटे उस काल की कला के उदाहरण हैं।

### गुप्त कालीन गृह-निर्माण और मूर्ति कला

गुप्त काल में कला पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। उस समय की कोई इमारत अब दिखाई नहीं देती। इसका कारण यह है कि मुसलमानों ने कोई धार्मिक इमारत नहीं छोड़ी। जो उनको दिखाई दी उसको ही नष्ट कर डाला। एकान्त स्थानों में बने हुये मन्दिरों में से एक दो बच पाये हैं और विनष्ट मन्दिरों के कुछ खंडहर विद्यमान हैं। इन्हीं को देख कर कहा जा सकता है कि गुप्तकालीन गृह-निर्माण कला अत्यन्त विकसित और उन्नत थी। तत्कालीन मूर्तियाँ उत्कृष्ट कला की द्योतक हैं। इनकी रचना, स्वरूप, कोमलता, सापेक्षता और तद्वत्ता अद्भुत है। गुप्त काल में बौद्ध, जैन और हिन्दू सब प्रकार की प्रतिमायें बनी हैं। इनमें पुरुषों की प्रतिमायें हैं और स्त्रियों की भी। कुछ पशुओं की भी मूर्तियाँ हैं। नाना प्रकार के लता प्रसून भी पत्थर के बने हुये हैं। पौराणिक देव-देवियों की विविध मुद्राओं में प्रतिमायें हैं, जिनसे प्रकट है कि तत्कालीन शिलाविद् कितने सधे हुये और मजे हुये थे। इनका अभ्यास एक ही प्रकार की मूर्तियाँ बनाने का नहीं था। ये लोग विविध आकार, विविध न्यास, विविध भाव और विविध-मुद्रायें बड़ी सफलता और कुशलता से पत्थर द्वारा दरसा सकते थे। उस युग की प्रतिमाओं में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, उमा, बुद्ध, बौधिसत्व और जैन तीर्थाङ्करों की प्रतिमायें प्रधान और विशेष उल्लेखनीय हैं।

### गुप्तकाल की उत्कृष्ट विविध कलायें

मूर्ति कला के साथ ही साथ चित्रकला का भी अद्भुत विकास हुआ था। ये दोनों कलायें मूलतः तो एक ही हैं, परन्तु मूर्ति की अपेक्षा चित्र में कोमलता और सूक्ष्मता अधिक होती है। अजन्ता के भित्ति-चित्र गुप्तकालीन चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनसे पता चलता है कि चित्रकार प्रधान रंगों को मिला कर कई प्रकार के रंग बनाना जानते थे। एक विषय के चित्र में कई व्यक्तियों के चित्र बनाकर, उनमें भाव-साम्य या भाव वैषम्य बतलाने में वे लोग कुशल थे। चित्रों में समन्वय और सामंजस्य तथा लय दिखा सकते थे। अजन्ता की कला सिंहल द्वीप (लंका) में भी जा पहुँची

थी। वहाँ पांचवी शताब्दी में बने हुये चित्र गुप्तकालीन शैली के हैं। मुसलमानों की विनाश-प्रवृत्ति के कारण गुप्तकालीन कला के अधिकांश नमूने लुप्त हो गये हैं परन्तु जो कुछ इन प्रहारों से बच गये है वे ही तत्कालीन कलोत्कर्ष के अच्छे सूचक हैं। गुप्त सम्राटों की सुवर्ण मुद्रायें भी बड़ी सुन्दर हैं। इनका आकार, प्रकार, बनावट और काट सब कलामय है। इनमें सम्राट, सम्राज्ञी, देवी, वेदी तथा घोड़े की जो आकृतियाँ बनाई गई हैं उनमें यथातथ्य है। एक प्रकार के सिक्के में महाराज समुद्रगुप्त वीणा बजाते हुए दिखाये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि संगीत में उनकी विशेष अभिरुचि थी। तत्कालीन साहित्य से भी पता लगता है कि संगीत प्रेम सब प्रकार के लोगों में प्रचलित था। नृत्य और संगीत राजकुमारियों को भी सिखाया जाता था। साधारण लोगों में वीणा आदि बजाने का शौक था। वाद्य कई प्रकार के प्रचलित थे। संगीत पद्धति संगीत रत्नाकर की थी। उस समय संगीत निम्न श्रेणी के लोगों का विषय नहीं था। उच्चाति-उच्च लोगों में, यहाँ तक कि राज परिवारों में भी, इसका आदर था और सम्राट स्वयं संगीतज्ञ होने में आत्म गौरव समझते थे।

### कालिदास की काव्य कीर्ति

संस्कृत सहित्य के विकास, जागरण और उन्नति तथा पुष्टि के लिये गुप्तकाल अप्रतिम है। इस काल में संस्कृत भाषा और साहित्य की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई और महाकवि कालिदास ने इस युग को अपनी रचनाओं से अलंकृत किया। गुप्तकाल में उनसे पूर्व और भी अनेक सत्कवि हुए होंगे परन्तु इनमें अधिकांश कालिदास की कीर्ति के प्रबल प्रकाश में खद्योतों की भाँति लुप्त हो गये। गुप्तकाल में कालिदास ने इतनी ख्याति प्राप्त की कि उसके समकालीन अन्य कवियों में से कोई भी विद्वानों की स्मृति-शालामें नहीं टिक सका। केवल दो चार पूर्वकालीन और समकालीन कवियों की कृतियाँ बची है जो भी आधुनिक शोध के प्रयास से प्रकाश में आई हैं। इनके अतिरिक्त और भी नाटक और काव्य उस समय रचे गए होंगे परन्तु कालिदास के ग्रन्थों की भाँति ये घर-घर प्रचलित नहीं हुए। इनकी हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ बड़े-बड़े सरस्वती भंडारों में ही रक्खी रहीं और जब आक्रमणकारियों ने ये पुस्तकालय जलाये तो ये ग्रन्थ भी अन्य ग्रन्थ-राशियों के साथ भस्म हो गये। कालिदास के और अन्य कुछ कवियों के ग्रन्थ इसलिये बच गये कि ये बहुत प्रचलित थे और इनकी प्रतियाँ यत्र-तत्र घरों में विद्यमान थीं।

कालिदास ने तीन काव्य और तीन नाटक लिखे हैं जो परम प्रसिद्ध हैं। शकुन्तला, विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र नाटक हैं। इन तीनों में शकुन्तला अति लोकप्रिय है। इसकी भाषा, व्यवस्था और रचना बड़ी मनोहर है। इसका कथानक महाभारत से लिया है परन्तु नाटक को निर्दोष और सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिए कवि

ने मूल कथा में कुछ परिवर्तन कर दिए हैं। इन परिवर्तनों से कथा और अधिक मनोहर और आकर्षक बन गई है। इस नाटक का संस्कृत साहित्य में इतना ऊँचा स्थान है कि इसको पढ़े बिना कोई व्यक्ति साहित्यज्ञ नहीं कहला सकता। गत सोलह सौ वर्ष से भारतीय साहित्य की रत्नराशि में यह जाज्वल्यमान हीरे की भाँति चमक रहा है। जब इसका अनुवाद फ्रेंच और जर्मन भाषाओं में हुआ तो यूरोप के विद्वान इसको पढ़कर चकित हो गये और सबने कालिदास के प्रति बड़ा सम्मान प्रकट किया। इस समय इसका अनुवाद संसार की सब शिष्ट भाषाओं में हो चुका है। कालिदास के शेष दो नाटक भी बड़े सुन्दर और मनोहर हैं। विक्रमोर्वशी में विक्रम और उर्वशी की तथा मालविकाग्निमित्र में मालविका और अग्निमित्र की प्रेम कथा है। कालिदास के तीन काव्य हैं—रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत। इनमें शकुन्तला की भाँति रघुवंश अति प्रसिद्ध है परन्तु कुमारसम्भव और मेघदूत भी बहुत लोकप्रिय हैं। रघुवंश में महाराज दलीप से श्रीरामचन्द्र जी तक का वर्णन किया है और अन्त में उजड़ी हुई अयोध्या का मार्मिक चित्र है। इसका प्रत्येक पद मनोहर और आकर्षक है। जैसे ऊँचे भाव हैं, भाषा भी उनके अनुसार सरल, प्रांजल और परिमार्जित है। रघुवंश का दूसरा सर्ग तो मानो भारतीय भावों का मधुर सूत्र है। गत सोलह सौ वर्ष में कितने ही लाख व्यक्तियों ने इसको पढ़ा है और कालिदास की काव्य कला तथा अमर लेखनी को प्रणाम किया है। कुमारसम्भव में शिव-पार्वती से स्वामी कीर्तिकेय के जन्म का और उसके द्वारा असुरों के वध का वर्णन है। इसमें बसन्त, हिमालय और पार्वती तपश्चर्या का वर्णन तथा शिव पार्वती संवाद बड़े मनोहर हैं। यह शृङ्गार रस का काव्य है। मेघदूत में एक यक्ष और उसकी स्त्री के वियोग का मार्मिक वर्णन है। यक्ष एक मेघ के द्वारा अपनी प्रिया के पास सन्देश भेजता है और उस मेघ को विन्ध्यगिरि से अलकापुरी (हिमालय तक) का मार्ग बतलाता है। यह काव्य छोटा सा है और पूर्व तथा उत्तर मेघ इन दो भागों में विभक्त है। इसके भी भाव अति कोमल और मनोहर हैं तथा रचना में अनोखा मिठास है।

### गणित शास्त्र की उन्नति

इस युग में गणित और विज्ञान की भी अच्छी उन्नति हुई। प्रसिद्ध गणितज्ञ और ज्योतिषी आर्य भट्ट तथा वराहमिहिर इसी युग के पंडित हैं। आर्य भट्ट के गणितग्रन्थ का नाम आर्यभट्टीय है और वराहमिहिर के ज्योतिषग्रन्थ का नाम ·चसिद्धान्त है। आर्य भट्टीयम् में युक्लीदस की प्रथम चार पुस्तकों के प्रायः सर्व साध्यों का वर्णन है और वृत्तों तथा त्रिकोणों के सब लक्षण समझाये गए हैं। दशमलव पद्धति का आविष्कार और विकास भी इसी युग में हुआ है। शून्य का उपयोग भी इसी समय होने लगा था। इस प्रकार १ से ९ तक अंकों का आविष्कार

भी इसी समय भारत में हुआ था। फिर यहाँ से अंक पश्चिम एशिया गए और पश्चिम एशिया से यूरोप में पहुँचे। संख्याओं का वर्गमान और घनमान निकालने की विधि का विकास भी गुप्तकाल में हुआ है। गणित, बीजगणित और रेखागणित के ज्ञान में उस समय भारत सारे संसार से आगे था और कई शताब्दियों तक आगे रहा। परन्तु समय के फेर से यहाँ उन्नति रुक गई और अन्य देशों में शुरू हो गई।

### चिकित्सा ज्ञान की उन्नति

आयुर्वेद अर्थात् चिकित्सा शास्त्र दूसरी शताब्दी से विशेष उन्नति करने लगा था। ऐसा मानते हैं कि चरक और सुश्रुत दोनों महाराज कनिष्क के काल में हुए होंगे। इनके ग्रन्थों से प्रकट होता है कि इनसे पहले ही आयुर्वेद बहुत उन्नत हो चुका था। तत्कालीन ज्ञान को इन दोनों विद्वानों ने संगृहीत तथा व्यवस्थित करके अपने ग्रन्थ लिखे होंगे और इनमें स्वयं अपनी खोज और अनुभव का भी समावेश किया होगा। "चरक संहिता" और "सुश्रुत-संहिता" दोनों चिकित्सा शास्त्र के अद्भुत ग्रन्थ हैं। इनमें निदान, द्रव्य गुण, चिकित्सा विधि, रोगी परिचर्या, शल्य, शलाक्य सब विषयों का वर्णन है और पिछली अठारह शताब्दियों से इनके आधार पर भारत में सफलतापूर्वक चिकित्सा हो रही है। वर्तमान यूरोपिय चिकित्सा विज्ञान गत एक शताब्दी में विज्ञान की सहायता से हुआ है। इससे पहले अर्थात् अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय आयुर्वेद संसार की चिकित्सा पद्धतियों में सर्वोत्तम और सर्वोन्नत था। पाँचवीं, छठी और सातवीं शताद्वियों में रस चिकित्सा विधि का विकास हुआ और इस विषय पर लगभग बीस ग्रन्थों की रचना हुई। विविध धातुओं के संसर्ग से पारद को रस में परिणत करना, और धातुओं की भस्म बनाना गुप्तकाल में आरम्भ हो गया था। यह भारतीय बुद्धि का चमत्कार था। संसार के वैद्य इस बात पर अब तक चकित हैं कि धातुओं की भस्म बनाने की विधि का अविष्कार कैसे हुआ और मानव रोगों पर इनका उपयोग करना किस प्रकार आरम्भ किया गया। छठी शताब्दी के पश्चात् रस चिकित्सा विधि का महत्व बढ़ता ही गया। इस समय भी वनौषधि की अपेक्षा रस अधिक चमत्कारी माने जाते हैं।

### वैदिक देव देवियां मनुष्यों से दूर थे

इसी युग में भारतीय धर्म का बिल्कुल रूपान्तर हो गया। वैदिककाल के देव और देवियाँ भुलाये जाने लगे और यज्ञ का प्रचार भी कम हो गया। अग्नि, यम, वायु, सूर्य आदि वेदकालीन देव जिनको भुलाया नहीं गया, उनका भी रूपान्तर हो गया और उनकी पूजा विधि भी बदल गई। शुंग और आन्ध्रवंशीय राजाओं ने और उनके बाद गुप्तवंशीय राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किया, परन्तु फिर भी यह विधि जीवित और

प्रचलित नहीं रह सकी । इस युग में यज्ञ का स्थान भक्ति ने ले लिया । वैदिककाल के देव अति विशाल थे, उनके रूप और आकार का उपासकों को ठीक अनुमान नहीं होता था । उनकी प्रकृति का ठीक पता नहीं चलता था और उनको प्रसन्न करने के उपाय भी लोगों को ज्ञात नहीं थे । अग्नि, वायु और द्यौ आदि की अनन्त शक्तियों का वर्णन किया जाता था और उन से धन-धान्य, पुत्र-कलत्र की भीख भी माँगी जाती थी, परन्तु देव उपासकों से बहुत दूर थे । वे मनुष्य से कुछ मिलते जुलते थे लेकिन मनुष्य नहीं थे । इसलिये मनुष्य नहीं जानता था कि उनको किस प्रकार वश में किया जावे और उनकी शरण ग्रहण करके किस प्रकार मनुष्य-जन्म के दुःख और ताप से छुटकारा पाया जावे ।

**ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अन्य देव-देवियाँ**

नये देव और देवियाँ गुप्त काल से बहुत पहले प्रकट हो चुके थे । महाभारत में यत्र तत्र इनका उल्लेख है । परन्तु इनके प्रकट होने का ठीक समय निर्णय करना कठिन है । महाभारत का मूल भाग बहुत प्राचीन है परन्तु यह माना जाता है कि समय-समय पर इसमें अनेक प्रकरण जोड़े गये हैं । तो भी इतना तो निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि शिव, ब्रह्मा, विष्णु और कई प्रकार की देवियाँ ईसा से कई सौ वर्ष पहिले ही प्रकट हो चुकी थीं । गुप्त काल में उनका स्वरूप निश्चित हो गया और पौराणिक धर्म ने प्रधानता प्राप्त करली । अब ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) प्रधान देव माने जाने लगे । सारे पुराणों का इस काल में नया संस्करण हो गया । इन ग्रन्थों के द्वारा नये देव और देवियों का महात्म्य बतलाया गया और इनको लोक-प्रिय बनाया गया । इन तीनों देवों में विष्णु और शिव का विशेष महत्व माना गया था । यह माना जाने लगा कि विष्णु क्षीर सागर में निवास करते हैं, लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं और वे शेष-शैया पर सोते हैं । उनकी नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं और ब्रह्मा से अखिल विश्व में ज्ञान का प्रचार हुआ है । समय-समय पर दुष्टों का दमन और धर्म की रक्षा करने के लिए विष्णु अवतार लिया करते हैं । अर्थात् आवश्यकतानुसार मनुष्य या पशु के रूप में प्रकट होते हैं और अदभुत पराक्रम दिखाते हैं तथा डूबती हुई लोक मर्यादा की रक्षा करते हैं । विष्णु के चौबीस अवतार माने जाते हैं जिनमें रामावतार, कृष्णावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, कच्छपावतार, मत्स्यावतार, वराहावतार मुख्य हैं । प्रायः प्रत्येक अवतार के माहात्म्य और पराक्रम का वर्णन करने के लिए एक पुराण बनाया गया है । इस प्रकार अठारह पुराण हैं । शिव के अवतार नहीं माने जाते परन्तु स्वरूप अनेक हैं । इन विभिन्न स्वरूपों में इनकी पूजा होती है । तीनों मुख्य देवों में सर्वाधिक लोकप्रिय देव शिव ही हैं । भारत का कोई नगर या गाँव ऐसा नहीं है जहाँ शिव मन्दिर न हो । इसके अतिरिक्त जंगलों में और पहाड़ियों में भी

हजारों शिव मन्दिर हैं। शिव पूजा भारत में लगभग आठ हजार वर्ष से होती आ रही है। ब्रह्मा की पूजा गुप्त काल में काफी प्रचलित थी परन्तु शिव और विष्णु के समान इनका प्रचार नहीं हुआ। उस काल में ब्रह्मा के अनेक मन्दिर बने और हजारों प्रतिमाओं का निर्माण हुआ परन्तु शनैः-शनैः यह पूजा कम हो गई। अब ब्रह्मा का केवल नाम ही रह गया है और समस्त देश में केवल इने-गिने मन्दिर रह गये हैं। ब्रह्मा अब किसी का इष्ट देव नहीं होता और न इसके मन्दिर बनते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों देवों के अतिरिक्त अन्य कितने ही देवों की पूजा भी गुप्त काल में बहुत प्रचलित हुई। इन देवों में मुख्य है अग्नि, वायु, इन्द्र, कुवेर, नृसिंह, गणेश, वराह आदि। इसके अतिरिक्त अनेक देवियों की भी पूजा होने लगी। यों तो देवी पूजा मोहिन-जोदाड़ो काल से भी पहले से प्रचलित थी परन्तु अब इसकी पूजा अधिक विकसित हो गई। देवी के अनेक रूप निश्चित हो गये। इनमें कुछ देवियाँ तो देवों की पत्नियाँ हैं और कुछ कुमारी तथा स्वतन्त्र हैं। अति प्रसिद्ध देवियाँ, पार्वती, ब्रह्माणी, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और चामुण्डा हैं। गंगा, वाराही, कुमारिकायें और मातृकायें दूसरी श्रेणी की देवियाँ हैं। देवों के वाहनों में शिव का नन्दी, विष्णु का गरुड़ और दुर्गा का सिंह बहुत प्रसिद्ध है। स्वामी कार्तिकेय का मयूर भी इनका समकक्ष कहा जा सकता है।

**बौद्ध और जैन धर्म में देव-देवियाँ**

इसी प्रकार जैन और बौद्ध धर्म में अनेक देव और देवियाँ प्रकट हुई। पौराणिक देव-देवियों की भाँति इनकी भी पूजा होने लगी और प्रतिमायें बनने लगीं। इन तीनों धर्मों के अनुयायी अपने-अपने देव-देवियों से इष्ट सिद्धि चाहते थे। पहले लोग समझते थे कि यज्ञ करने से मनोवांछित फल प्राप्त हो सकता है। अब लोग यह समझने लगे कि देव-देवियों की उपासना से मनोवांछित फल मिल सकता है। जैसे मनुष्यों की प्रकृति और प्रवृत्ति में भिन्नता होती है उसी प्रकार देव और देवियों की प्रकृति और प्रवृत्ति में भी भिन्नता मानी गई। देव-देवियाँ इतनी थीं कि मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार अपना इष्ट देव बना सकता था। क्रूरातिक्रूर और कोमलातिकोमल स्वभाव वाले देव मौजूद थे, अतः उपासक को कोई कठिनता नहीं थी। वह जैसा चाहे वैसा देव उसको प्राप्त हो सकता था। गुप्त काल में जो पूजाविधि विकसित हुई वह तद्वत अब तक प्रचलित है। वास्तव में आधुनिक हिन्दू धर्म वैदिक धर्म नहीं, यह पौराणिक धर्म है। वर्तमान हिन्दू संस्कृति भी गुप्त काल की हिन्दू संस्कृति है। गुप्त काल ही हिन्दुओं का सतयुग है। जब भारत के वैभव और उत्कर्ष की बात कही जाती है तो वक्ताओं के ध्यान में गुप्त काल रहता है।

---

# चौदहवाँ अध्याय

## विदेशों में भारतीय संस्कृति

सुवर्ण युग की शक्ति, सम्पत्ति और समृद्धि से उत्साहित होकर भारतीय लोग बहुत बड़ी संख्या में विदेशों में भी पहुँचे और वहाँ अपने उपनिवेश तथा राज्य स्थापित करके बस गये। अपने साथ स्वभावतः अपना धर्म और संस्कृति भी वहाँ ले गये। वहाँ अपने रीति-रिवाज, भाषा, साहित्य आदि प्रचलित किये। इस समय कई मन्दिर, शिलालेख और रिवाज इन देशों में विद्यमान हैं जिनसे इन भारतीय उपनिवेशों के इतिहास का पता लगता है।

### विदेशों में जाने के मुख्य मार्ग

विदेशों में भारतीय लोग स्थल मार्ग तथा जलमार्ग दोनों से गये थे। स्थल मार्ग मुख्यतः तीन थे, खैबर की घाटी, बोलन की घाटी और ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी। खैबर मार्ग से गान्धार, तुर्किस्तान, खोतान, ईरान और चीन पहुँचते थे। बौद्ध धर्म का और भारतीय भाषा तथा संस्कृति का प्रचार करने के लिए हजारों बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण इन प्रदेशों में गये थे और वहीं बस गये थे। इन देशों में यत्र-तत्र कई बौद्ध मठ और शिक्षा केन्द्र बन गये थे जिनमें ये लोग निवास करते थे। व्यापार के लिए भी इन मार्गों से लोग आते जाते थे। ब्रह्मपुत्र के मार्ग से लोग चीन पहुँचते थे। इसी मार्ग से जाकर हजारों भारतवासी ब्रह्मदेश के उत्तर भाग में बस गये थे और वहाँ अपने कई छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिए थे। वहाँ से शनैः-शनैः नदियों के मार्ग से मध्य ब्रह्मा में और दक्षिण ब्रह्मा में आये और कई बस्तियाँ बसाई तथा नगर स्थापित किये जिनके भारतीय नाम रक्खे गये।

### विदेशों से व्यापार करने के जल मार्ग

जल मार्ग से पूर्व और पश्चिम के देशों के साथ व्यापार होता था। पूर्वी तट पर गोपालपुर बन्दरगाह था और मसुलीपट्टम के पास भी दो तीन छोटे-छोटे बन्दरगाह थे। बंगाल में ताम्रलिप्ती का बन्दरगाह प्रसिद्ध था। इन स्थानों से जहाजों में बैठ कर बंगाल की खाड़ी को पार करते हुए भारतीय लोग जावा, सुमात्रा, मलय अन्तरीप, बाली, फिलिपाइन टापू, कम्बोडिया और हिन्दचीन में पहुँचते थे। पश्चिमीय तट पर भी कई बन्दरगाह थे जिनमें भृगुकच्छ सर्वाधिक प्रसिद्ध था। यहाँ से हिन्दू जहाज

लंका होकर बंगाल की खाड़ी को पार करते थे और उपरोक्त देशों तथा टापुओं में पहुँचा करते थे। सुमेर, ईरान, अरब और मिस्र तथा यूनान के साथ भी व्यापार इसी बन्दरगाह से होता था।

### गन्धार और सिंहल द्वीप में उपनिवेश

उत्तर ब्रह्मा में बसने वाले और राज्य स्थापित करने वाले लोग विहार और बंगाल प्रान्त से गये थे। इस प्रदेश का नाम इन लोगों ने गन्धार रखा था और तेरहवीं शताब्दी तक यह नाम प्रचलित था। यहाँ ऐसी किंवदन्ती थी कि अशोक के किसी प्रतापी वंशज ने यह राज्य स्थापित किया था। दूसरी किंवदन्ती सिंहल विजय के बारे में थी। कहा जाता था कि बंगाल के एक शक्तिशाली राजकुमार ने, जिसका नाम विजय था, लंका को जीत कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था। इस घटना का चित्र अजन्ता की गुफा में बना हुआ है और इसकी एक प्रतिलिपि जयपुर के एल्बर्ट म्यूजियम में भी बनी हुई है।

### ब्रह्म देश और पूर्वी द्वीपसमूह में भारतीय संस्कृति

जावा, (यव) सुमात्रा, मलय (मलाया), सिंगापुर (सिंहपुर), बाली आदि नाम प्रत्यक्ष ही बतला रहे हैं कि ये भारतीय नाम हैं। जब हिन्दू बड़ी संख्या में इन प्रदेशों में जाकर बस गये और वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तो इन स्थानों के नाम भारतीय रखे गये। मुसलमानों के आक्रमणों के बाद भारत क्षत-विक्षत हो गया और इन उपनिवेशों के साथ सम्बन्ध टूट गया। इनको असहाय समझ कर अन्य जातियों ने इन पर आक्रमण करना शुरू कर दिया और कुछ समय में इन हिन्दू राज्यों को तथा उपनिवेशों को नष्ट कर दिया। परन्तु अब तक जावा (यव द्वीप) में ऐसी किंवदन्ती चली आ रही है कि कलिंगतट से भारतीय वहाँ पहुँचे और द्वीप को आबाद किया। इसी प्रकार की परम्परागत किंवदन्ती अन्य टापुओं में भी प्रचलित है। पीगू में ऐसा कहा जाता है कि कृष्णा और गोदावरी के संगमों के प्रदेशों के निवासी वहाँ गए और वहाँ राज्य स्थापित किये। यवद्वीप में ऐसा भी कहते हैं कि ईसा से पचहत्तर वर्ष बाद गुजरात का एक राजकुमार वहाँ पहुँचा और उसने वहाँ भारतीय उपनिवेश स्थापित किया। तेहरवीं शताब्दी के एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि उस समय उत्तर ब्रह्मा का राजा महाराज कहलाता था। वहाँ भारतीय लिपि प्रचलित थी और लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। वास्तव में उत्तर से दक्षिण तक अर्थात् ब्रह्मपुत्र नदी से दक्षिण में समुद्रतट तक समस्त ब्रह्म देश में यत्र-तत्र अनेक हिन्दू राज्य क्षत्रियों ने स्थापित कर लिये थे। इन प्रदेशों में संस्कृत तथा पाली भाषा का राजकार्य में व्यवहार होता था और धार्मिक कार्यों में ब्राह्मणों को बुलाया जाता था। वास्तव में दूसरी शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक ब्रह्मा, मलय अन्तरीप, पूर्वी द्वीप समूह, कम्बोडिया,

स्याम और अनाम में हिन्दुओं का आधिपत्य था और इनकी संस्कृति तथा सभ्यता का प्रभुत्व था। कम्बोडिया उस समय कम्बोज और अनाम चम्पा कहलाता था।

### चम्पा तथा अन्य उपनिवेश

चीन के इतिहास से पता चलता है कि तीसरी शताब्दी के मध्य में फौचन (चम्पा और कम्बोज) से एक राजदूत भारत में भेजा गया था। यह पता नहीं चलता कि वह भारत में किस राजा के दरबार में आया और रहा परन्तु इससे इतना अवश्य विदित होता है कि तत्कालीन चीनी लोग भी इस बात को जानते थे कि भारत तथा भारतीय उपनिवेशों में पारस्परिक राजनैतिक सम्बन्ध बना हुआ था। पाँचवीं शताब्दी में चम्पा देश के शासक, महाराज गंगा राज ने विरक्त होकर अपना राजसिंहासन त्याग दिया था। राज्य अपने पुत्र को देकर गंगाराज भारत में आये और अपना शेष जीवन गंगा के तट पर तपस्या करते हुए व्यतीत किया। फाहियान और इत्सिंग के वर्णन से भी विदित होता है कि पाँचवीं और सातवीं शताब्दियों के मध्य में जावा और सुमात्रा के राजा तथा बंगाल के पाल वंशीय राजा देवपाल में पारस्परिक अच्छा मित्र-भाव था। नयपाल के शासनकाल में अनेक बौद्ध भिक्षु बौद्ध धर्म तथा शिक्षा का प्रचार करने के लिये स्वर्णद्वीप पहुँचे थे। तेरहवीं शताब्दी में चम्पा की एक महारानी का नाम गौडेन्द्रलक्ष्मी था। इस नाम से ही प्रकट होता है कि यह महिला गौड बंग देश की राजकुमारी होगी। अर्थात् उस समय तक भारतीय उपनिवेशों के शासक क्षत्री विवाह सम्बन्ध भारत में किया करते थे।

### उपनिवेशों में संस्कृत भाषा

इन उपनिवेशों में भारतीय संस्कृति के स्मारक अब तक विद्यमान हैं जिनसे तत्कालीन हिन्दू संस्कृति के विविध अंगों का पता लगता है। वहाँ सर्वत्र संस्कृत भाषा का राज-काज तथा धार्मिक कार्यों में व्यवहार होता था। इस प्रकार प्रतिष्ठित होने के कारण संस्कृत का अध्ययन और अध्यापन भारतीयों में ही नहीं बल्कि तद्देश निवासियों में भी प्रचलित होगा। चम्पा देश के और अन्य उपनिवेशों के शिलालेख संस्कृत भाषा में लिखे हुये हैं। इनकी रचना से प्रकट होता है कि वहाँ अच्छी शुद्ध और प्रांजल संस्कृत प्रचलित थी और संस्कृत काव्य का प्रचार था।

### उपनिवेशों में देव और देवियाँ

इन उपनिवेशों में पौराणिक धर्म और बौद्ध धर्म दोनों प्रचलित थे। पौराणिक धर्म का स्वरूप वैसा ही था जैसा भारतवर्ष में। प्रधान देव ब्रह्मा, शिव और विष्णु थे। शिव की अनेक नामों से और अनेक रूपों में पूजा की जाती थी। शिव के साथ पार्वती, गणपति, स्कन्द और अन्य शैव देव भी पूजे जाते थे। शिव के साथ नान्दी की भी प्रतिमा बनाई जाती थी। पार्वती के अनेक रूप माने जाते थे। स्वतन्त्र देवी

उपासना भी प्रचलित थी। देवी के भारतीय रूपों का इन विदेशों में जाकर किंचित् रूपान्तर हो गया था। परन्तु यह नगण्य था। देवी की पूजा उसके विभिन्न रूपों में की जाती थी। दूसरा देव विष्णु था। इसके अवतारों की पूजा स्वयं इसकी पूजा से अधिक प्रचलित थी। विष्णु का स्वरूप भारतीय विष्णु के समान ही था। अवतारों में राम और कृष्ण की प्रधानता थी। दूसरे अवतारों का कहीं कहीं केवल उल्लेख और संकेत मात्र है। चम्पा में और बाली में राम और उनके तीनों भाइयों की पूजा प्रचलित थी। बाली द्वीप में रामायण की एक प्रति भी प्राप्त हुई है। कृष्ण के गोवर्द्धन धारण की कथा तथा कंस, केशी और चाणूर आदि राक्षसों के वध की कथायें भी बहुत प्रचलित थीं। पौराणिक कथा के अनुसार कामदेव, कृष्ण और रोहिणी का पुत्र माना जाता था। चम्पा के राजा अपने को विष्णु का रूप मानते थे। जयरुद्र वर्मा तो प्रकट रूपेण अपने को विष्णु का अवतार कहता था। विष्णु के साथ लक्ष्मी, पद्मा अथवा श्री की भी पूजा होती थी। विष्णु के वाहन, गरुड़ का स्वरूप इन उपनिवेशों में जाकर कुछ बदल गया था। वहाँ गरुड़ का मुख तो पक्षी का सा और शेष शरीर सिंह का सा बनाया जाता था। शिव और विष्णु के बाद तीसरा स्थान ब्रह्मा का था। ब्रह्मा का भारत में भी विशेष महत्व नहीं था। यही स्थिति इस देव की इन उपनिवेशों में, विशेषकर चम्पा में थी। ब्रह्मा विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ है। चम्पा में अनन्त शायी विष्णु की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें विष्णु का नाम पद्मनाभ है। चम्पा नरेश जयपरमेश्वर वर्मा ने ब्रह्मा की एक प्रतिमा का निर्माण करवाया था और उसके राजकुमार तथा सेनापति ने प्रतिमा की पूजा और प्रतिष्ठा के निमित्त भूमिदान दिया था। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देव सर्वत्र पूजे जाते थे, परन्तु लोगों का झुकाव शिव की ओर अधिक था। एक शिलालेख में पहले शिव की, फिर विष्णु की और तत्पश्चात् ब्रह्मा की स्तुति की गई है। शिव और विष्णु की एक सम्मिश्रित प्रतिमा भी मिली है। इसमें एक ही शरीर में एक पार्श्व में शिव और दूसरे में विष्णु का स्वरूप दिखलाया गया है। एक दूसरी प्रतिमा में तीनों देव साथ-साथ दिखाये गये हैं। इनमें मध्य में शिव हैं। इस प्रकार की प्रतिमायें भारतवर्ष में भी बनाई जाती थीं। वास्तव में सब देवों को एक ही मानने की परम्परा हमारे देश में अति प्राचीन है। इस भाव को प्रकट करने वाली छोटी-छोटी प्रतिमायें मोहनजोदाड़ो में भी मिली हैं। वेदों में "विश्वेदेवा" के नाम से समस्त देवों की एक साथ प्रार्थना की जाती थी।

### उपनिवेशों में महाभारत और रामायण आदि ग्रन्थ

उपरोक्त तीन प्रधान देवों और देवियों के अतिरिक्त अनेक छोटे छोटे देवों की भी पूजा की जाती थी। यम, वायु, अग्नि, सूर्य आदि की अनेक प्रतिमायें चम्पा, जावा और सुमात्रा में मिली हैं। कम्बोडिया में भी इन देवों की कुछ प्रतिमायें प्राप्त

हुई हैं। स्याम देश में हिन्दुओं का राज्य तेरहवीं शताब्दी में स्थापित हुआ और बहुत समय तक स्थित नहीं रह सका। मुसलमानों ने छल और बल से यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसलिये इस प्रदेश में मध्य कालीन हिन्दू संस्कृति के चिन्ह कम मिलते हैं। फिर भी परम्परा से यहाँ का राजवंश अपने को हिन्दू मानता है। इन उपनिवेशों में रामायण और महाभारत की तथा गीता की प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं। भारतीय प्रतियों में और इनमें कुछ भेद अवश्य है परन्तु मुख्य कथा-भाग में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इन उपनिवेशों के निवासी भारत में आते जाते थे। शासकों का भारतीय शासकों से परिवारिक सम्बन्ध भी था। बिहार और मद्रास प्रान्त में उपनिवेशों के शासकों ने कुछ मन्दिर बनवाये थे, परन्तु इतने पर भी यात्रा की कठिनाइयों के कारण आना जाना रात-दिन का काम तो नहीं हो सकता था। केवल व्यापार के लिये और कभी-कभी पठन-पाठन के लिये लोग आया-जाया करते थे। उल्लेखनीय और स्मरणीय बात तो यह है कि दूसरी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक हिन्दू संस्कृति पश्चिम में तुर्किस्तान तक और पूर्व में पूर्वी द्वीप समूह तथा हिन्द चीन तक फैली हुई थी और हिन्दू व्यापारी जल-मार्ग से चीन और जापान तक पहुँचा करते थे। जिस जहाज से फाहियान जावा आदि द्वीपों में होता हुआ चीन वापिस गया था उसी में उसके साथ सौ से अधिक हिन्दू व्यापारी थे।

**महायान धर्म**

पौराणिक धर्म के अतिरिक्त इन उपनिवेशों में बौद्ध धर्म का भी प्रचार था। यह प्रचार पाँचवीं शताब्दी के लगभग होने लगा था। बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय इन उपनिवेशों में प्रचलित हुआ था। इसी में यह क्षमता थी कि जहाँ जावे वैसा बन जावे। अतः यहाँ बौद्ध धर्म का बहुत रूपान्तर हुआ। इसके मूल तत्व अर्थात् बुद्ध, संघ और धर्म के नाम तो बचे रहे, परन्तु शेष आकार-प्रकार स्थानीय विचार, विश्वास और परम्परा तथा पद्धतियों से ढक कर और का और ही हो गया। जावा, चम्पा, मध्य प्रदेश, गान्धार, तक्षशिला, तिब्बत और ब्रह्मा की बौद्ध प्रतिमाओं की तुलना करने से स्पष्ट होता है कि स्थानीय कला और विश्वास तथा दृष्टिकोण से इस धर्म का किस प्रकार रूपान्तर हो गया था।

**मन्दिर और प्रतिमायें**

इन उपनिवेशों में भारतीय कला और विशेषकर मूर्तिकला भी उन्नत अवस्था में थी। चित्रकला भी अवश्य वहाँ पहुँची होगी, जैसे वह पश्चिमीय तुर्किस्तान में पहुँची थी, परन्तु उसके सब नमूने नष्ट हो गये थे। इन उपनिवेशों के हिन्दू मन्दिर दो प्रकार के हैं। उत्तर भारतीय शैली के और दक्षिण भारतीय अर्थात् द्रविड़ शैली के। इससे विदित होता है कि इन मन्दिरों के संस्थापक ही नहीं बल्कि इनके स्वरूप-निर्माता,

शिलाविद् और राज भी भारतीय थे। उत्तर भारत से गये उन्होंने उत्तर शैली के और जो दक्षिण भारत से गये उन्होंने दक्षिण शैली के मन्दिर बनाये। इससे भी स्पष्ट है कि सैकड़ों और हजारों की संख्या में ये लोग भारत से इन उपनिवेशों में गये होंगे। इन उपनिवेशों के शासक भारत में भी आते-जाते रहते थे। कई के विवाह सम्बन्ध भारत में हुये थे। एक राजा ने मद्रास प्रान्त में शिव मन्दिर बनवाया था। इस प्रकार के अनवच्छिन्न सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण इन उपनिवेशों में दक्षिण भारतीय शैली के मन्दिरों का निर्माण हुआ था।

**पश्चिम और मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति**

बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, बेक्ट्रिया और चीनी तुर्किस्तान में भी भारतीय संस्कृति की पाँचवीं शताब्दी तक प्रधानता थी। बलूचिस्तान में तो अर्से तक भारतीय क्षत्रियों का राज्य था। जब मुसलमानों का उदय और उत्थान हुआ तब भाटी राजपूत बलूचिस्तान से हट कर भारत में आये और जेसलमेर को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। अफगानिस्तान के अधिकांश भाग पर मौर्य सम्राटों का शासन था। वास्तव में काबुल और कन्धार भारत के द्वार माने जाते थे और भारतीय संस्कृति ही कन्धार तक फैली हुई थी।

अफगानिस्तान से पश्चिम का भाग उस समय बेक्ट्रिया कहलाता था। इस भूभाग में हजारों भारतीय बौद्ध और ब्राह्मण लोग निवास करते थे। ये बौद्ध भिक्षु अशोक के समय में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये वहाँ गये होंगे और उसके पश्चात् भी भिक्षुओं का वहाँ जाना जारी रहा होगा। उन प्रदेशों में महायान धर्म का प्रचार अधिक आसान था, अतः अधिकांशतः इसी धर्म के भिक्षु वहाँ जाया करते थे। इन लोगों के साथ ब्राह्मण भी वहाँ जाते थे और संस्कृत भाषा का तथा हिन्दू धर्म का प्रचार करते थे।

चीनी तुर्किस्तान तो एक प्रकार से हिन्दुओं का ही देश बन गया था और कई शताब्दियों तक वहाँ भारतीय संस्कृति की प्रधानता रही थी। इसी देश में होकर उस समय चीन पहुँचने के तीन मार्ग थे। यहाँ से बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण चीन जाया करते थे। चीनी तुर्किस्तान में हिन्दुओं की यत्र-तत्र अनेक बस्तियाँ थीं। छोटे-छोटे राज्य भी हिन्दुओं ने स्थापित कर लिये थे। अधिकांश लोग व्यापार और खेती करते थे। सैकड़ों भिक्षु और ब्राह्मण धर्म का और संस्कृत भाषा का प्रचार करते थे। काशगर नगर से चीन की सीमा तक समस्त प्रदेश एक प्रकार से हिन्दुओं का देश हो गया था। इस चीनी तुर्किस्तान के उत्तर नगर और दक्षिण के नगर सब हिन्दुओं के उपनिवेश थे। वहाँ के राजा को महानुभाव महाराज कहा जाता था। इस देश में अनेक खंडहर, लेख और वस्तुयें प्राप्त हुई हैं जिनका विद्वानों ने सूक्ष्म अध्ययन किया

है और उस खोज के आधार पर ये बातें मालूम हुई हैं। लेखों की भाषा संस्कृत या प्राकृत और लिपि ब्राह्मी है। कई लेख ऐसे भी हैं जिनकी भाषा तो स्थानीय है परन्तु लिपि ब्राह्मी है। वहाँ पर ब्राह्मी लिपि बारह खड़ी की विधि से सिखाई जाती थी जिसका चालीस वर्ष पूर्व तक भारत में भी प्रचार था और जिसका वर्णन लेख-प्रकाश नामक काश्मीरी ग्रन्थ में दिया हुआ है। यह ग्रन्थ अभी कुछ वर्ष पूर्व ही उपलब्ध हुआ है।

खोतान का भारतीय उपनिवेश विशेष महत्व का था। यहाँ भारतीय शासन था और राजकाज की भाषा संस्कृत थी। यहाँ पर जो लेख प्राप्त हुये हैं वे संस्कृत या प्राकृत भाषा के हैं और उनकी लिपि खरोष्ठी है। इस लिपि का प्रचार उस समय भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में भी था। महाराज अशोक ने भी उत्तरपश्चिमोत्तर प्रदेशों के शिला लेखों में इसका व्यवहार किया था। खोतान के एक प्राचीन लेख में महाराज राजाधिराज देव विजितसिंह का उल्लेख है। तिब्बत देश में खोतान के इतिहास की एक परम्परा प्राप्त कथा है। इसके अनुसार महाराज अशोक के एक पुत्र ने खोतान में अपना राज्य स्थापित किया था। उसका पुत्र विजित सम्भव हुआ। इसके पश्चात् अनेक राजा हुए जिनके नाम विजित से शुरू होते हैं। बारहवाँ राजा विजित-धर्म हुआ। इसने काशगर में अपने अन्तिम दिन धर्म चिन्तन में व्यतीत किये। इसका पुत्र विजितसिंह था और पौत्र विजित-कीर्ति। खोतान का राजवंश बौद्ध धर्म का अनुयायी था। इससे इस प्रदेश में इस धर्म का बहुत प्रचार रहा। उस समय यह बौद्ध धर्म का उधर की ओर एक मुख्य केन्द्र था। इसमें सैकड़ों भिक्षु और ब्राह्मण लोग निवास करते थे। यहाँ से ये लोग इधर-उधर धर्म प्रचारार्थ जाया करते थे। ब्राह्मण लोग संस्कृत का प्रचार करते थे और छोटे-छोटे कई संस्कृत के विद्यालय स्थापित हो गये थे। महायान धर्म के ग्रन्थ प्रायः सब संस्कृत भाषा में थे। अतः बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ-साथ संस्कृत का प्रचार होना स्वाभाविक बात थी।

उत्तर चीनी तुर्किस्तान में भारतीय संस्कृति का दूसरा केन्द्र कूची था। यहाँ भी हिन्दू क्षत्री राज्य करते थे। इनके नाम थे स्वर्ण पुष्प, हरिपुष्प, हरदेव, सुवर्ण आदि। कूची अति सम्पन्न और समृद्ध नगर था। इसमें अनेक बौद्ध विहार और भव्य भवन थे। यहाँ की सब जनता प्रायः बौद्ध थी और यहाँ संस्कृत भाषा का खूब प्रचार था। यहाँ संस्कृत पढ़ने की एक निराली विधि प्रचलित थी। इसके द्वारा विदेशी लोग संस्कृत जल्दी सीख लिया करते थे। कूची नगर में तथा अन्य तुर्किस्तानी नगरों में पाणिनी पद्धति से व्याकरण नहीं पढ़ाया जाता था। वहाँ जो व्याकरण प्रचलित था उसका नाम था कातान्तर व्याकरण। यह व्याकरण अब भी विद्यमान है और जैन पाठशालाओं में इसका अधिक प्रचार है। कातान्तर नाम भी विचित्र है। सम्भव है

इस व्याकरण का प्रणेता भारतीय नहीं हो और कोई विदेशी विद्वान, सम्भवतः तुर्किस्तान का ही निवासी हो। कूची में संस्कृत पढ़ाने की विधि या तो वहीं विकसित हुई होगी या भारतवर्ष के विद्वान लोग जो वहाँ गये उन्होंने स्थानीय आवश्यकताओं को समझ कर यह विधि निश्चित की होगी। कूची में बौद्धधर्म के ऐसे अनेक संस्कृत ग्रन्थ मिले हैं जिनका भारत में केवल नाम ही शेष रह गया है। धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त, ज्योतिष, आयुर्वेद और साहित्य के भी ग्रन्थ वहाँ मिले हैं। कूची भाषा का साहित्य भी उस समय अच्छा पुष्ट और सम्पन्न हुआ था। उस पर भी संस्कृत का गहरा प्रभाव था। कई ग्रन्थ तो संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर ही लिखे गये.थे।

कूची से और आगे करा शहर था। यह भी भारतीय उपनिवेश था। इसको अग्निदेश भी कहा जाता था। यहाँ के राजाओं के नाम चन्द्रर्जुन और इन्द्रार्जुन आदि थे। इस नगर में भी कितने ही बौद्ध विहार थे। यहाँ से भिक्षु लोग चीन में धर्म प्रचारार्थ जाया करते थे। ऐसा ही एक नगर बजालिक था। वहाँ के बौद्ध विहारों की दीवारों पर बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनेक चित्र बने हुये थे। ये अब भी कुछ मिलते हैं। इनमें भिन्न-भिन्न देशों के बौद्ध भिक्षुओं के चित्र हैं। भारतीय भिक्षु पीले कपड़े पहिने हुये बतलाये गये हैं।

इन तमाम नगरों में बौद्धधर्म और बौद्ध सभ्यता प्रचलित थी लेकिन कुछ लोग पौराणिक धर्म को भी मानते थे। संस्कृत के प्रचार के साथ-साथ यह स्वाभाविक ही बात थी। इस प्रदेश में कुबेर, त्रिमुख और गणेश की छोटी-छोटी प्रतिमायें मिलीं जिनसे प्रकट होता है कि पौराणिक देव भी यहाँ पूजे जाते थे। इस सुदूर देश मे हिन्दू सभ्यता की स्थापना करना तत्कालीन भारतीयों के पुरुषार्थ और पराक्रम का ज्वलन्त प्रमाण है।

---

# पन्द्रहवाँ अध्याय

## तुर्कों और मुगलों की भारत विजय और इस्लाम का प्रभाव

अरब लोगों ने सिन्ध पर आठवीं शताब्दी के आरम्भ में अपना प्रभुत्व तो स्थापित कर लिया, परन्तु न तो वे सिन्ध प्रान्त में अपने शासन को दृढ़ कर सके और न सिन्ध से बाहर भारत में वे अपनी शक्ति का विस्तार कर सके। दक्षिण, पूर्व और उत्तर में राजपूत नरेशों ने उनको नहीं बढ़ने दिया और सिंध के अन्दर स्वयं अपनी निर्बलताओं तथा मतभेदों के कारण वे अपनी स्थिति को दृढ़ नहीं कर सके। दसवीं शताब्दी में सिन्ध के दो भाग हो गये। दक्षिण में एक मुस्लिम घराना राज्य करता था और उत्तर में दूसरा। उत्तर के शासक एक नये मुस्लिम सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनमें और सुन्नी मुसलमानों में गहरा मतभेद था। सिन्ध की आन्तरिक स्थिति ऐसी निर्बल थी कि यदि खैबर की घाटी से नये मुसलमान भारत पर आक्रमण नहीं करते तो भी शनैः-शनैः सिन्ध से मुसलमान राज्य स्वतः ही विलीन हो जाते। यदि कन्नौज के प्रतिहार, या गुजरात के चालुक्य भी सिन्ध पर आक्रमण करते तो इन जीर्ण और शीर्ण राज्यों को नष्ट कर सकते थे परन्तु पारस्परिक द्वेष के कारण वे विदेशी शक्ति का सामना करने से डरते थे। सिन्ध में लगभग तीन सौ वर्ष तक अरब लोगों का राज्य रहा। भारत की इससे यह क्षति हुई कि उसका एक अङ्ग टूट गया और मुसलमानों के लिये भारत में प्रवेश करने के लिये दरवाजा खुल गया। कई इतिहासकारों का मत है कि सिन्ध विजय एक महत्वहीन और फलहीन घटना थी। परन्तु यह मत ठीक नहीं है। सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से इससे मुस्लिम जगत को बहुत लाभ हुआ। भारत की कला-कौशल और गणित, ज्योतिष तथा साहित्य आदि का ज्ञान पश्चिम एशिया में पहुँचा और भारतीय व्यापार से अरब लोगों को विपुल लाभ हुआ। भारत महासागर पर अरब नाविकों का एकाधिकार-सा हो गया। वे लोग अपने जहाजों द्वारा चीन तक पहुँचने लगे और अरब देश सम्पन्न तथा मालामाल हो गया। भारत में अरब यात्री और सौदागर यत्र-तत्र घूमने लगे। एक अरब विद्वान ने कई वर्ष तक काशी में संस्कृत पढ़ने के लिये निवास किया। पश्चिमीय समुद्रतट के नगरों और कस्बों में मुसलमानों की अच्छी बस्तियाँ बस गई। आरम्भ में ये लोग केवल व्यापार के लिये बसे थे परन्तु अब सिन्धी शासकों के प्रभाव का लाभ उठाकर ये अपनी स्थिति दृढ़ करने लगे। कई स्थानों पर मसजिदें बन गई।

बस्तियों में काजी नियुक्त हो गये। मुस्लिम जनता के मुकद्मों के काजी लोग ही फैसले करने लगे। इस प्रकार कई स्थानों पर मुसलमानों का प्रभाव जम गया। इन लोगों की कई पीढ़ियाँ भारत में व्यतीत हो चुकी थीं। धर्माभिमान के कारण ये लोग अपने को किसी प्रकार हीन नहीं मानते थे, बल्कि ब्राह्मण और क्षत्रियों की बराबरी करते थे और मुस्लिम देशों को अर्थात् अरब और ईरान को अपनी शक्ति का स्रोत समझते थे। अतः दसवीं शताब्दी के अन्त में जब भारत पर खैबर की घाटी से मुसलमानों के आक्रमण होने लगे तो भारतीय मुस्लिम जनता में अपूर्व उमंग और उल्लास उत्पन्न हुआ होगा। लगभग बीस वर्ष में सुबुक्तगीं और महमूद गजनी के तूफानी आक्रमणों से सम्पूर्ण उत्तर भारत और गुजरात तथा काठियावाड़ में घोर त्रास व्याप्त हो गया और समस्त पंजाब पर मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया।

## तुर्कों के आक्रमण

दशवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में तुर्क लोग पंजाब के ब्राह्मण शासकों के राज्य पर आक्रमण करने लगे। आरम्भ में पंजाब की पश्चिमी सीमा पर कुछ छेड़छाड़ हुई होगी, फिर काबुल पर आक्रमण हुआ और पंजाब के शासकों को काबुल छोड़कर सिन्ध नदी के पूर्व की ओर वाहिन्द नगर को अपनी राजधानी बनाना पड़ा। फिर भी मुसलमानों का काबुल पर अधिकार स्थापित नहीं हुआ। विशेष अवसरों पर पंजाब के शासक वाहिन्द से काबुल जाते रहे और एक दो बार उनके राज्याभिषेक भी वहाँ हुए, परन्तु यह बात अधिक अर्से तक नहीं निभ सकी। जब अल्पतगीं नामक एक तुर्क ने गजनी पर अधिकार कर के उसको अपने नवनिर्मित राज्य की राजधानी बनाया तो पंजाब राज्य की सीमा पश्चिम की तरफ धीरे-धीरे दबाई जाने लगी। सन् ९८० के लगभग अल्पतगीं के पुत्र सुबुक्तगीं ने जयपाल के राज्य पर चढ़ाई की। घमासान युद्ध हुआ और मुसलमान हारने लगे। इस युद्ध में महमूद गजनी अपने बाप सुबुक्तगीं के साथ था। उस समय वह केवल पन्द्रह वर्ष का था परन्तु उसकी बुद्धि और वीरता अपूर्व थी। उसने अपने पिता को सलाह दी कि युद्ध बन्द कर दिया जावे और युद्धस्थल के पास ही जो जल का केवल एकमात्र चश्मा है उसमें खूब शराब डाल दी जावे। महमूद जानता था कि जयपाल और उसके सैनिक मद्यमिश्रित जल नहीं पियेंगे और प्यास से मर जावेंगे। उसने भारत की रीति रिवाज का अध्ययन कर रक्खा था। वह हिन्दुओं की निर्बलताओं को भली-भाँति समझता था। उसकी सलाह के अनुकूल चश्मे में बहुत सी शराब डाली गई और हिन्दू युद्ध-शिविर में वास्तव में एक समस्या उपस्थित हो गई कि क्या किया जावे। हिन्दू सैनिक प्यास से मरने लगे। इन तृषाकुल सैनिकों पर सुबुक्तगीं की सेना ने प्रबल आक्रमण किया और विजयश्री प्राप्त की। यह शराब की बात आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। जयपाल ब्राह्मण था। इस

राजवंश का संस्थापक लल्लिय नामक एक ब्राह्मण वीर था जिसने पंजाब पर अपना प्रभुत्व कायम करके काबुल को अपनी राजधानी बनाया था। इस वंश में भीम देव, जयपाल देव कई वीर राजा हुये। जयपाल पाँचवाँ राजा था। वे लोग वर्ण से ब्राह्मण थे परन्तु व्यवहार में राजपूतों जैसे ही थे। इनके विवाह सम्बन्ध राजपूतों में होते थे। इसलिये इनके परिवार में खानपान के विषय में विशेष प्रतिबन्ध नहीं माने जाते होंगे। जयपाल के सैनिक भी सब ब्राह्मण नहीं होंगे। शायद एक दो दिन युद्ध चलता तो ये लोग उस चश्मे के पानी को पीने भी लग जाते। कुछ घंटे तक ये निर्णय नहीं कर सके होंगे कि क्या किया जावे। यह स्थिति देख कर मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया और स्थिति से लाभ उठाया। शास्त्रों में माँस-भक्षण इतना बड़ा पाप नहीं माना गया है जितना मद्यपान, परन्तु राजपूतों में सब कुछ चलता था। इस कहानी पर इसलिये विश्वास करना पड़ता है कि यह मुसलमान इतिहासकार ने लिखी है। यह उसका आँखों देखा वर्णन तो नहीं है, परन्तु इस घटना के लगभग पच्चीस वर्ष पश्चात् उसने अपना ग्रन्थ लिखा था और उस समय ऐसे सैकड़ों मुस्लिम सैनिक जीवित थे जो इस युद्ध में लड़े थे।

### समस्त पंजाब पर मुस्लिम प्रभुत्व

इस युद्ध में जयपाल हार तो गया परन्तु उसके राज्य का अन्त नहीं हुआ। इसलिये महमूद गजनी ने सन् १००१ में उस पर पुनः आक्रमण किया और पेशावर के पास युद्ध हुआ जिसमें जयपाल और उसका परिवार बन्दी बना लिये गये। जयपाल को कुछ दिन बाद छोड़ दिया परन्तु वह पराजय से इतना लज्जित हुआ कि उसने अपने प्राणों का अन्त कर डाला। तब महमूद ने उसके पुत्र आनन्दपाल को मुक्त कर राज्य करने की इजाजत दे दी। परन्तु तुर्कों की आर्थिक माँगों और धार्मिक कट्टरताओं को आनन्दपाल सहन नहीं कर सका। अतः पेशावर के पास ही पुनः युद्ध हुआ जिसमें उसका रण-निमंत्रण स्वीकार करके धार, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के नरेशों ने उसकी सहायता के लिये सेना भेजी। इस युद्ध में मुसलमानों के पैर उखड़ गये थे और वे रणभूमि को छोड़कर भागने ही वाले थे कि अचानक स्थिति बदल गई और वे हारते-हारते जीत गये। आनन्दपाल का हाथी मुसलमानों के शस्त्र और अस्त्रों की वर्षा से आहत होकर युद्धक्षेत्र से भाग निकला जिसको देखकर उसकी सेना में भगदड़ मच गई। महमूद गजनी ने इस स्थिति में हिन्दुओं पर जोर से आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। इसके पश्चात् भी आनन्दपाल राज्य करता रहा परन्तु यह निभनेवाली बात नहीं थी। कुछ वर्ष बाद फिर युद्ध हुआ जिसमें आनन्दपाल ने वीरगति प्राप्त की और उसका पुत्र त्रिलोचनपाल राजसिंहासन पर बैठा परन्तु वह थोड़े ही समय राज्य कर सका। महमूद गजनी की विजय-बाढ़ रुकने वाली

नहीं थी। अतः ललिय के राजवंश का अन्त हो गया और समस्त पंजाब पर मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया।

अन्य स्थानों पर आक्रमण

उस समय गोर में भी हिन्दुओं का राज्य था। महमूद ने उस पर हमला किया और वहाँ के राजा को हरा कर हिन्दू जनता को मुसलमान बना लिया। इसी प्रकार सिन्धु नदी मे पश्चिम में रहने वाले सब हिन्दुओं को तलवार के बल से मुसलमान बना कर उसने अपने राज्य की नींव दृढ़ की और शेष पंजाब के विषय में भी इसी नीति का अनुसरण किया, परन्तु पेशावर से ज्यों-ज्यों वह पूर्व की ओर बढ़ता था त्यों-त्यों हिन्दुओं में धार्मिक दृढ़ता अधिक पाई जाती थी। इसलिये यह बात असंभव थी कि समस्त हिन्दुओं को सामूहिक रूप से मुसलमान बनाया जा सके। इस प्रकार धर्म-परिवर्तन करवाने में मुसलमान शासकों के दो मुख्य उद्देश्य पूरे होते थे। प्रथम तो ज्यों-ज्यों इस्लाम का प्रचार होता जाता था त्यों-त्यों मुस्लिम शासक की मुसलमान जगत में कीर्ति बढ़ती जाती थी क्योंकि मुसलमान जनता इस बात पर कभी विचार नहीं करती थी कि प्रचार किस विधि से किया गया है। इस्लाम के प्रचार के लिये बल प्रयोग करना और गैर मुस्लिम देशों को तबाह करना भी पुण्य कार्य माना जाता था। मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थों में कुछ भी लिखा हो परन्तु आम जनता का विचार तथा मन्तव्य यही था और इसी नीति के अनुसार महमूद गजनी ने भारत को पुनः-पुनः लूटा और नष्ट किया था। पंजाब पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के बाद महमूद ने भारत पर कई आक्रमण किये। प्रतिवर्ष उसका यही धन्धा था कि मुसलमान लुटेरों की सेना तैयार करके किसी सम्पन्न नगर या मन्दिर पर आक्रमण करे, और वहाँ से विपुल धन राशि लूट कर अपने देश को ले जावे। इस उद्देश्य से उसने मुलतान के मुस्लिम राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ के मुसलमान शासकों का उन्मूलन कर अपना राज्य स्थापित किया फिर उसने नगरकोट, थानेश्वर, मथुरा, कन्नोज, कालिंजर, ग्वालियर और सोमनाथ पर धावे किये। इन आक्रमणों में उसने राजपूत राजवंशों को नष्ट किया, नगरों को तबाह किया, मन्दिरों का ध्वंस किया, देव-प्रतिमाओं को तोड़ा, असीम धन राशि लूटी और असंख्य बच्चों तथा स्त्रियों को गुलाम बना कर गजनी में बेचा। उसकी लूट के माल का जो मुसलमान इतिहासकारों ने वर्णन किया है उस पर आजकल विश्वास नहीं होता। हजारों मन सोना, सैकड़ों मन मोती, लाल, पन्ना और जवाहरात, चाँदी के बने हुये कमरे और हजारों मन बर्तन, बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र आदि का वर्णन पढ़कर सिर चकराने लगता है। सबको यदि रुपयों में आँका जावे और उन सैकड़ों मन्दिरों के मूल्य का अनुमान किया जावे जो उसने ध्वंस किये थे, तो महमूद के आक्रमणों से होने वाली भारत की क्षति कई लाख अर्ब रुपये

होनी चाहिये। इससे भारत के असीम वैभव का अनुमान होता है।

**मतों का जाल और खतरे की उपेक्षा**

महमूद के आक्रमणों के बाद भी भारत की धार्मिक दृष्टि नहीं बदली। किसी सन्यासी या ब्राह्मण ने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि सम्पूर्ण भारतीय धर्मों में एकता उत्पन्न करके इस भव्य संस्कृति की रक्षा के लिये देश को तैयार किया जावे और भावी विनाश से देश को बचाया जावे। जब महमूद मर गया और मुसलमानों के आक्रमण बन्द हो गये तो एक ब्राह्मण ने काशी से सोमनाथ तक समस्त उत्तर भारत और गुजरात तथा काठियावाड़ की यात्रा की और भग्न मन्दिरों के पुनर्निर्माण के लिये नरेशों तथा धनाढ्य लोगों से प्रार्थना की। इस प्रयत्न के फलस्वरूप सोमनाथ का मन्दिर तथा अन्य कई ध्वस्त मन्दिर फिर खड़े कर दिये गये, परन्तु इससे न तो हिन्दू धर्म सजीव और जागृत हुआ और न हिन्दुओं को देश और धर्म की रक्षा के लिये कोई प्राणपद प्रेरणा प्राप्त हुई। इस युग में वेदान्त पर और उसके विविध भेदों पर गहन साहित्य की रचना हुई। पौराणिक साहित्य की वृद्धि हुई। शैव और शाक्त धर्म पर विविध आगम और तन्त्र ग्रन्थों की सृष्टि हुई। यह सब सुन्दर साहित्य था परन्तु इसमें नये खतरे की उपेक्षा थी और पुराने ज़ख्मों की विस्मृति। इस युग में शैव, वैष्णव और जैन धर्म का कुछ रूपान्तर और विस्तार हुआ। पूर्व भारत में प्रायः सर्वत्र मुख्यतः वैष्णव धर्म का प्रचार हो गया और अहिंसा इसका भी प्रधान सिद्धान्त बन गया। बौद्धों और जैनियों का शैव और वैष्णव धर्म के प्रति मुख्य आक्षेप यह था कि इन धर्मों में अहिंसा को प्राधान्य नहीं दिया जाता और अहिंसा ही वास्तव में मुख्य और परम धर्म है। इस समय अहिंसा सिद्धान्त सर्वमान्य-सा हो चुका था और इसका विरोध करना किसी सम्प्रदाय के लिये संभव नहीं था। इसलिये वैष्णव धर्म में ही नहीं, शैव धर्म में भी अहिंसा परम धर्म माना जाने लगा। दक्षिण में शैव और पूर्व में वैष्णव धर्म का आधिपत्य जम गया और दोनों धर्मों ने अहिंसा का सिद्धान्त तथा व्यवहार स्वीकार कर लिया। दक्षिण में शैवों का एक नया सम्प्रदाय बना जो वर्ण व्यवस्था को नहीं मानता था, स्त्रियों को सब भाँति पुरुषों के समान समझता था, शिखासूत्र में विश्वास नहीं करता था, नई गायत्री का उपयोग करता था और जिसमें भिक्षावृत्ति का निषेध तथा परिश्रम की महिमा थी। यह लिंगायत सम्प्रदाय कहलाता था, इसके अनुयायी शिवलिंग गले में लटकाये रहते थे। अहिंसा को ये लोग भी मानते थे। यह सब दृष्टियों से क्रान्तिकारी सम्प्रदाय था। यह धर्म, समाज और परम्पराओं को पुनर्व्यवस्थित करना चाहता था, परन्तु नये खतरे के निवारण के लिये इसके पास भी कोई सन्देश नहीं था। यह तो संभव नहीं है कि लिंगायतों को मुस्लिम आक्रमणों का पता ही न हो। सोमनाथ मन्दिर के ध्वंस की करुण कहानी दक्षिण में अवश्य

पहुँच गई होगी। दक्षिण के पश्चिम तट पर मुसलमानों की कई वस्तियाँ थीं। इसके आचार-विचार और दृष्टिकोण की विदेशीयता से भी लिंगायत लोग अवश्य परिचित होंगे, परन्तु रक्तपात, ध्वंस और अपहरण इन्होंने या इनके पूर्वजों ने अपनी आँखों से नहीं देखा था, और शायद इसीलिये उसकी प्रलयंकर भयंकरता का इनको अनुभव नहीं हुआ हो। जैन धर्म दशवीं शताब्दी से पूर्व दक्षिण में वहुमान्य था। राजवंशों में और जनता में सर्वत्र इसके अनुयायी थे। एक दो राजाओं ने जैन सम्प्रदाय को नष्ट करने के लिये अत्याचार और नृशंसता भी की परन्तु इन जघन्य साधनों से धर्म नष्ट नहीं हुआ करता है। जैन धर्म दवा नहीं वल्कि इसमें और भी नवीन प्राण आ गये। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में शैव धर्म भी त्याग, तपस्या और अहिंसा को प्रधानता देने लगा। तब जैन धर्म में कोई विशेष आकर्षण नहीं रहा और इसको वहाँ से हटना पड़ा। इस युग में इसका गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान और मालवा में विशेष प्रचार हुआ। इसका श्रेय मुख्यतः हेमचन्द्र आचार्य को है। यह गुजरात निवासी प्रकांड पंडित था और सर्वस्व त्याग कर आचार्य पद प्राप्त करके जैन धर्म के प्रचार में लग गया था। गुजरात के सोलंकी नरेशों ने इसको प्रचार में बड़ी सहायता दी। वे स्वयं शैव थे परन्तु उदार हृदय थे और हेमचन्द्र के प्रकांड पांडित्य तथा तपोमय जीवन का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। उसकी सहायता से जैन धर्म ने गुजरात और राजस्थान में अपने लिये अच्छा स्थान वना लिया और यहाँ से यह उत्तर भारत के अन्य स्थानों में भी पहुँचा। वैदिक धर्म के उद्धार में जो कुमारिल भट्ट और स्वामी शंकराचार्य का स्थान है, लगभग वही स्थान जैन धर्म के प्रचार में आचार्य हेमचन्द्र का है और वही स्थान वैष्णव धर्म के प्रचार में स्वामी रामानुजाचार्य का मानना चाहिये। इस प्रकार समस्त देश वारहवीं शताब्दी में तीन मुख्य सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था। दक्षिण में शैव मत की, पूर्व में वैष्णव मत की और पश्चिम में जैन मत की प्रधानता थी। यह नहीं समझ लेना चाहिये कि इन भागों में दूसरे मत थे ही नहीं। वास्तव में तीनों धर्मों के सम्प्रदाय भारत के प्रत्येक प्रान्त में मिलते थे परन्तु प्राधान्य उपरोक्त प्रकार से था। अहिंसा तीनों सम्प्रदायों में परम धर्म माना जाता था। तप, त्याग और संयम पर जोर देते थे। परन्तु वैष्णव मत का दृष्टिकोण इससे भिन्न था। वैष्णवों में कृष्ण-चरित्र का महत्व वहुत वड़ा था और कृष्ण चरित्र में गोपियों का विहार वड़ा लोकप्रिय हो गया था। इससे वैष्णवों के जीवन में विलासिता आ गई थी। इस युग के लोक साहित्य में विलासिता भरी हुई है। काव्य-शास्त्र पर जितने ग्रन्थ तैयार हुये उनमें नायिका भेद मुख्य विषय है। अलंकार, रस और ध्वनि को समझाने के वास्ते लेखक उपयुक्त नायिका ढूंढ़ते हैं और उसके हाव-भाव और अङ्ग विन्यास का सजीव वर्णन करने में अपना पांडित्य प्रकट करते हैं। इस प्रकार के शृङ्गारी साहित्य

का और धर्म के नाम पर अश्लील लीलाओं का तथा लोक गीतों का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ता था। आश्चर्य है कि घोर संकट के समय जनता में इस प्रकार की सर्व-व्यापिनी विलासता का विकास क्यों हुआ। शैव और जैन तपस्या के द्वारा मोक्ष की खोज में थे और विलासी वैष्णव आत्मसमर्पण द्वारा गोलोक की तलाश में। जीवन लक्ष्य था नैराश्य या विलास। जैन धर्म का दृष्टिकोण सदा से अति उदार था और वैष्णवों में द्वेष चलता रहता था। ग्यारहवीं शताब्दी से यह कम अवश्य होने लग गया था, और विचारशील लेखक तथा प्रचारक इस द्वेष का अन्त करना चाहते थे। यत्र-तत्र यह प्रवृत्ति क्रियात्मक रूप धारण करने लग गई थी। एलोरा का कैलाश मन्दिर शैव मन्दिर हैं परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में इसमें रामायण के चित्र भी बनाये गये और एक चित्र जैन सम्प्रदाय का भी जान पड़ता है। सम्भव है इस मन्दिर में और भी वैष्णव और जैन चित्र बनवाये गये हों परन्तु कालान्तर में वे अति धुंधले हो गये हैं जिससे पहिचानने में नहीं आते। बंगाल नरेश महाराज विजयसेन ने भी वैष्णव और शैव धर्म को मिलाने का प्रयत्न किया था। उसने एक सुन्दर मन्दिर बनवाकर उसमें प्रद्युम्नेश्वर की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई थी। यह प्रतिमा ऐसी बन-वाई थी कि विष्णु और शिव के साथ-साथ दर्शन होते थे। इसी प्रकार की प्रतिमायें राजस्थान के हाडोती प्रदेश में भी मिली हैं। यह प्रवाह इस बात का द्योतक है कि दोनों सम्प्रदायों में एक प्रकार का समन्वय करके इनके पारस्परिक द्वेष हटाने का व्यापक प्रयास किया गया था। इसकी बड़ी आवश्यकता थी, परन्तु इससे भी बड़ी आवश्यकता थी धर्म की रक्षा करने की। इसके लिये तत्कालीन नेताओं ने कोई प्रयत्न नहीं किया।

### शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण

बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गोर के सुलतानों ने गजनी पर आक्रमण किया। महमूद के वंशज वहाँ से भाग निकले और गोर के सुलतान ने गजनी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इतना ही नहीं, उसने महमूद और उसके लड़कों की कब्रों को खुदवा कर उनकी हड्डियों को फिकवा दिया। इस प्रकार गजनी पर अधिकार स्थापित करने के पश्चात् शहाबुद्दीन ने पहले पंजाब पर आक्रमण किया और गजनी सुलतानों के शासन का अन्त करके वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित किया। तदन्तर उसने पृथ्वीराज चौहान के राज्य पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज ने थानेश्वर के समीप तलावड़ी नामक ग्राम से कुछ दूरी पर उसका सामना किया। गोरी बुरी तरह से हारा और आहत होकर पृथ्वीराज का बन्दी बन गया। मुस्लिम सेना भाग निकली परन्तु राजपूतों ने अपनी प्राचीन युद्ध मर्यादा के अनुसार भागते हुये सैनिकों का पीछा नहीं किया। दूसरे दिन पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी को भी मुक्त कर दिया और वह

अपनी सेना में जा मिला। दूसरे वर्ष गोरी और अधिक सेना लेकर भारत पर चढ़ आया और पुनः उसी स्थान पर पृथ्वीराज के साथ घमासान युद्ध हुआ जिसमें पृथ्वीराज ने वीरगति प्राप्त की और भारत की श्री और शोभा उसी के साथ विलीन हो गई। यह सन् ११९२ का वर्ष भारतवर्ष का अन्तिम स्वातन्त्र्य वर्ष था। उसके बाद लगभग आठ सौ वर्ष तक भारत विदेशियों के क्रूर और शोषक शासन से आक्रान्त होकर कराहता रहा। इसके बाद दिल्ली, मेरठ, अजमेर, कन्नौज और काशी पर मुसलमानों ने हमले किये और वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। प्रत्येक स्थान पर राजपूत वीरतापूर्वक लड़े परन्तु केवल कर्त्तव्य पालन करने के वास्ते। अब शहाबुद्दीन गोरी और उसके सेनानायकों की उत्तर भारत में धाक जम चुकी थी और राजपूत स्वयं समझ चुके थे कि मुसलमानों का आधिपत्य अवश्यम्भावी है। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में कालिंजर, लखनौती, रणथंभोर, ग्वालियर, भीलसा और उज्जैन पर भी मुसलमानों ने अधिकार कर लिया। मेवाड़ की राजधानी नागदा को उन्होंने नष्ट कर डाला और गुजरात की राजधानी अनहिलपाटन पर भी छापा जा मारा, परन्तु उस पर अधिकार स्थापित नहीं कर सके। इस प्रकार लगभग पच्चीस वर्ष में अखिल उत्तर भारत पर मुसलमानों ने अपना राज्य जमा कर सदियों पुराने और प्रतिष्ठित अनेक राजवंशों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। अगले सौ वर्ष में गुजरात और दक्षिण के राजघराने भी नष्ट हो गये और सन् १३०० के लगभग समस्त भारत में मुसलमानों का डंका बज गया। परतन्त्र और पदाक्रान्त भारत के लिये अगले सात सौ वर्ष का समय सहन और संघर्ष का युग बन गया।

एबक कुतुबुद्दीन सन् १२०६ में दिल्ली के तख्त पर बैठा। उत्तर भारत में उसी समय हिन्दुओं का गौरव और वैभव विलीन हो गया। अगली दो शताब्दियों में मुसलमानों ने भारत का कोना-कोना टटोल डाला और बचे हुये सम्पन्न हिन्दू राज्यों को नष्ट करके हजारों मन सोना, चाँदी तथा जवाहरात लूट लिये। प्रतिवर्ष लड़ाइयाँ और लूट खसोट हुआ करती थीं। हजारों स्त्री-पुरुष गुलाम बना लिये जाते थे। लोगों के सोने, चाँदी और आभूषण लूट लिये जाते थे। जहाँ तहाँ हजारों नर-नारी कत्ल कर दिये जाते थे। मन्दिरों का और मूर्तियों का तोड़ना रात दिन का काम था। लोगों को डरा कर, सता कर या फुसला कर मुसलमान बनाया जाता था। बीसियों प्रकार के करों से हिन्दू जनता त्रस्त और उत्पीड़ित थी। हिन्दुओं को राज्य में किसी प्रकार के कोई अधिकार नहीं थे। प्रतिष्ठा और सम्मान केवल मुसलमानों के लिये ही थे। हिन्दुओं का पद-पद पर अपमान होता था। जजिया कर से हिन्दू लोग रात दिन सिसकते रहते थे। यह स्थिति सारे उत्तर भारत में खैबर की घाटी से बंगाल की पूर्वी सीमा तक थी। ग्वालियर, रणथम्भोर और कालिंजर के किले भी कुतुबुद्दीन ने जीत लिये

थे। अभी राजपूतों का पूर्ण दमन नहीं हुआ था वे कभी हारते थे और कभी जीतते थे। इसलिये इस युग में ये किले कभी मुसलमानों के हाथ में रहते थे और कभी हिन्दुओं के हाथ में। राजपूताने में भी अभी मुसलमानों का प्रवेश नहीं हुआ था। दक्षिण भारत सारा स्वतन्त्र था। वहाँ हिन्दुओं के चार बड़े बड़े राज्य थे। इनका विदेशों के साथ खूब व्यापार होता था। इससे दक्षिण भारत अच्छा सम्पन्न था। यह स्थिति लगभग एक सौ वर्ष तक रही। सन् १३०० के बाद मुसलमानों ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण शुरू किये और कुछ ही वर्ष में समस्त हिन्दू राज्यों की अपार लक्ष्मी और सम्पत्ति लूट कर उनको नष्ट कर डाला। चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्पूर्ण भारतवर्ष मुसलमानों के अधीन हो गया। हिन्दुओं की संस्कृति धारा सर्व भाँति कुंठित हो गई। उनका धर्म, उनकी भाषा, उनकी संस्कृति और सभ्यता हेय दृष्टि से देखी जाने लगी। कहाँ तो वे लोग सोने, चांदी और मोतियों के आभूषणों से लदे रहते थे और कहाँ अब उनका पेट पालन भी कठिन हो गया। मुसलमानों के शासन का ध्येय था हिन्दुओं के धन का शोषण और उनके धर्म का अपमान।

### मुसलमान वंश

भारतवर्ष में मुसलमान राज्य स्थापित करने वाले तुर्क मुसलमान थे। फिर इनमें अफगान मुसलमान आ सम्मिलित हुये। इन तुर्क अफगानों के पाँच वंशों ने भारत पर १२०६ से १५२७ तक अर्थात् लगभग तीन सौ वर्ष तक राज्य किया। इन पाँच वंशों के नाम हैं—गुलामवंश, खिलजीवंश, तुगलकवंश, सैयदवंश और लोदी वंश। गुलाम वंश ने १२०६ से १२९० तक, खिलजीवंश ने १२९० से १३२० तक और तुगलक वंश ने १३२० से १४१४ तक राज्य किया। शेष दो वंशों ने १४१४ से १५२७ तक दिल्ली का तख्त अपने हाथ में रक्खा।

### मोहम्मद तुगलक की तरंगें

खिलजियों के राज्य (१२९०-१३२०) के बाद तुगलक मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ। इनमें मुहम्मद तुगलक (१३२५-१३५१) प्रसिद्ध है। वह अरबी, फारसी, गणित, ज्योतिष, दर्शन आदि अनेक विषयों का अच्छा ज्ञाता था। विद्वानों की संगति उसको अच्छी लगती थी। उसकी बातचीत में पांडित्य था और व्यवहार में शिष्टता तथा सज्जनता। परन्तु वह दूरदर्शी नहीं था, इसलिये उसने अपने शासनकार्य में अनेक भूलें कीं। उसको जो तरंग आती थी उसी को वह कार्य रूप में परिणत करना चाहता था। इसलिये उसने हुक्म दिया कि राजधानी देवगिरि (दौलताबाद) होनी चाहिये, दिल्ली नहीं। इसी प्रकार उसने चीन को विजय करने के लिये एक बड़ी सेना भेजी जो पर्वतों के मार्ग में अनेक कष्ट पाकर क्षीण होकर वापिस आ गई। खुरासान को जीतने के वास्ते भी उसने एक बड़ी सेना तैयार की परन्तु हमला नहीं किया।

जब उसका राजकोष खाली हो गया तो उसने सोना चाँदी बचाने के वास्ते तांबे का सिक्का चलाया।

## तैमूर का आक्रमण

तुगलक वंश का अन्तिम बादशाह महमूद तुगलक था (१३९४-१४१४)। इसके शासन काल में एक भयंकर तूफान आया जिसने तुगलक साम्राज्य की अन्त्येष्टि कर डाली और उत्तर भारत सारा क्षतविक्षत हो गया। यह तूफान तैमूर का आक्रमण था। यह समरकन्द का बादशाह था। सन् १३९८ में इसने भारत पर आक्रमण किया। ईरान, ईराक और अफगानिस्तान में यह पहले ही लूटमार कर चुका था। अब यह भारत की अपार सम्पत्ति की कहानियाँ सुनकर यहाँ लूट खसोट करने आया था। अपने लुटेरेपन को छिपाने के लिये वह इस्लाम धर्म की आड़ लेता था और कहता था कि आक्रमण का उद्देश्य काफिरों को दंड देना और उनको सत्य मार्ग पर लाना है। सिन्धु नदी के बाद झेलम, चिनाव और रावी नदियाँ इसने पार कीं। पंजाब के गाँवों और नगरों को लूटता तथा जलाता हुआ और हिन्दुओं को कत्ल करता हुआ या बन्दी और ग़ुलाम बनाता हुआ वह दिल्ली के निकट आ पहुँचा। महमूद तुगलक ने बहुत बड़ी सेना के साथ उसका सामना किया परन्तु उसकी हार हुई और वह गुजरात की ओर भाग गया। इस युद्ध के आरम्भ से एक दिन पहले तैमूर ने एक लाख हिन्दुओं का वध करवाया था। ये लोग उसके लश्कर के साथ बन्दी थे। दिल्ली में पाँच दिन तक उसने नागरिकों को कत्ल करवा कर बाजार तथा गलियों को लाशों से पाट दिया था। हजारों बच्चों तथा स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाया और अपार सम्पत्ति लूट ली। तदनन्तर उसने अल्लाह को अपनी विजय के लिये धन्यवाद दिया और खुशियाँ मनाई। फिर मेरठ, हरिद्वार आदि नगरों को उजाड़ता हुआ और जलाता हुआ तथा निरपराध लोगों को मारता हुआ वह वापिस अपने देश को लौट गया।

## दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न

मोहम्मद तुगलक की झकों के कारण राजकोष खाली हो गया था और साम्राज्य डगमगाने लग गया था। तैमूर ने नाम शेष साम्राज्य का भी अन्त कर डाला और सारे उत्तर भारत में त्राहि-त्राहि मचा दी। इस स्थिति से लाभ उठा कर कितने ही मुसलमान वीरों ने अपने-अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये, राजपूताने के राजपूत शासक पुनः स्वतंत्र हो गये इनमें मेवाड़ के महाराणा अग्रगण्य थे। दक्षिण में मुसलमानों ने बहमनी राज्य और हिन्दुओं ने विजयनगर राज्य स्थापित किया। उत्तर भारत में बंगाल, जौनपुर, मालवा और काश्मीर में तथा गुजरात और खानदेश में मुसलमानों ने स्वतंत्र राज्य बना लिये।

### विजय नगर राज्य

उपरोक्त राज्यों में विजयनगर का राज्य विशेष उल्लेख के योग्य है। मलिक काफूर के आक्रमणों ने जब दक्षिण भारत को विदीर्ण कर डाला और पीढ़ियों की कमाई हुई प्रभूत धनराशि उसने एक ही झटके में छीन ली तो साहसी हिन्दू सोचने लगे कि अपनी प्राचीन संस्कृति को किस प्रकार बचाया जावे। इस प्रकार के वायु-मण्डल में विजयनगर राज्य की स्थापना हुई। आरम्भ में वह छोटा सा राज्य था परन्तु बढ़ते-बढ़ते उसकी पूर्वी और पश्चिमी सीमा समुद्रतटों तक जा पहुँची और उत्तर में वह तुंगभद्रा नदी के पास बहमनी राज्य से जा सटा। इस प्रकार तुंगभद्रा नदी से दक्षिण का भारत सारा विजयनगर राज्य में शामिल हो गया। यह राज्य सन् १३७० के लगभग स्थापित हुआ और करीब दो शताब्दियों तक कायम रहा। यहाँ के नरेशों में महाराज कृष्णदेवराय बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसने पुर्तगाली लोगों को एक किला बनाने की इजाजत दी। इसके राज्य में पेस नामक एक पुर्तगाली यात्री आया था जिसने लिखा है कि "कृष्णदेव राय बड़ा विद्वान् और आदर्श नरेश है। उसका स्वभाव सरस है और वह सदा प्रसन्न तथा हँसमुख रहता है। वह विदेशियों का आदर और स्वागत करता है। वह बड़ा न्यायप्रिय है। उसके बराबर राज्य या सेना, किसी अन्य शासक के पास नहीं है। वह विद्वानों का आदर करता था। धार्मिक कामों के लिये पुष्कल दान देता था। अपनी प्रजा के सुख और हित की सदैव चिन्ता करता था।" निकोली केन्टी नामक एक इटेलियन यात्री ने विजयनगर को पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में देखा था। वह लिखता है कि "यह नगर साठ मील के घेरे में बसा हुआ है। इसकी नगर प्राचीर पर्वतों तक पहुँची हुई है। इस नगर में नब्बे हजार पुरुष ऐसे हैं जो शस्त्र धारण कर सकते हैं। यहाँ का राजा भारत के सब राजाओं में अधिक शक्तिशाली है।" अबदुर्रज्जाक नामक एक ईरानी यात्री ने सन् १४४२-४३ में इस राज्य का भ्रमण किया था। वह लिखता है कि "राजकोष में कितने ही तहखाने हैं जिनमें सोना पिघलाकर भरा गया है। नगर के सब, लोग यहाँ तक कि गरीब से गरीब भी, जवाहिरात पहिनते हैं और गर्दन, कलाई तथा उंगलियों में सोना चाँदी के जेवर पहिने रहते हैं।" पेस कहता है कि "विजयनगर में प्रत्येक देश के लोग मिलते हैं। ये लोग यहाँ अनेक प्रकार के रत्नों की और हीरों की तिजारत करने आते हैं। दूसरी प्रकार का व्यापार भी यहाँ खूब होता है। यह नगर संसार में सर्वाधिक सम्पन्न है। यहाँ गेहूँ, चावल, जौ, मूंग और दूसरे प्रकार की दालें बहुत हैं और सस्ती मिलती हैं।" एडोर्डो बारबोसा नामक एक अन्य यूरोपियन यात्री विजयनगर के विषय में लिखता है कि "यह नगर अति विस्तृत और सम्पन्न है। यहाँ व्यापार खूब होता है। पीगू से हीरे और लाल आते हैं, चीन से रेशम मँगवाया जाता है, सिकन्दरिया का

रेशम भी यहाँ खूब बिकता है और मलाबार से चन्दन के अतिरिक्त मसाले की कई चीजें आती हैं।" विजयनगर से कई प्रकार के व्यवसाय भी सम्पन्न अवस्था में थे। यहाँ कई प्रकार के सुन्दर कपड़े बनते थे। भूमि में से धातुएँ निकाली जाती थीं, उनको साफ किया जाता था। यहाँ इत्र कई प्रकार के बनाये जाते थे। जल और स्थल दोनों के मार्गों से व्यापार होता था। अब्दुर्रज्जाक लिखता है कि "इस राज्य में तीन सौ बन्दरगाह हैं।" न्यूनिट्ज नामक एक यूरोपियन यात्री ने इस राज्य की स्त्रियों के विषय में जो लिखा है वह भी उद्धरण के योग्य है। "यहाँ की स्त्रियाँ ज्योतिषी हैं, लेखिका हैं और हिसाबनवीस हैं। कई स्त्रियाँ राज्य का दैनिक वृत्तान्त लिखती हैं, कितनी ही अच्छा संगीत जानती हैं, और कुछ न्यायाधीश का भी काम करती हैं।" खान-पान के विषय में न्यूनिट्ज लिखता है कि "यहाँ अनेक लोग कई प्रकार के पशु और पक्षियों का मांस खाते हैं, परन्तु गौ मांस वर्जित और निषिद्ध है।"

विजयनगर राज्य कला और साहित्य का केन्द्र था। यहाँ के नरेश संस्कृत, तेलगू, तामिल और कन्नड़—इन सब भाषाओं को प्रोत्साहन देते थे। इनकी छत्रछाया में इन भाषाओं के सत्साहित्य की सृष्टि हुई। प्रसिद्ध वेद भाष्यकार सायणाचार्य और उसका विद्वान् भाई माधवाचार्य दोनों विजयनगर राज्य के आश्रित और प्रतिष्ठित पंडित थे। कृष्णदेव राय स्वयं कवि, पंडित, संगीतज्ञ और गुणग्राही नरेश था। उसकी राजसभा सदैव अनेक दार्शनिक, विद्वान, कवि ज्योतिषी और धर्माचार्यों से अलंकृत रहा करती थी। इन सबका यथोचित सम्मान किया जाता था और राजकोष से उदारतापूर्वक इनको दान दिया जाता था। उसने तेलगू भाषा में "आमुक्त माल्यदा" नामक एक सुन्दर ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें राजनीति और शासन नीति के विविध अंगों का अच्छा विवेचन है। इस राजा ने संस्कृत भाषा में भी कई छोटे बड़े ग्रन्थ लिखे थे जिसका उसने इस ग्रन्थ में उल्लेख किया है। उसकी राजसभा में आठ विद्वान बड़ी उच्च कोटि के थे। ये अष्ट दिग्गज कहलाते थे।

विजय नगर के शासक सब पुण्यवान् और धार्मिक थे, और सब धर्मों का आदर करते थे। शैव, बौद्ध, वैष्णव और जैन ही नहीं, ईसाई और इस्लाम धर्म के साथ भी उनका उदारता का व्यवहार था। बारबोसा लिखता है कि "राजा ने सब लोगों को पूर्णरूप से स्वतन्त्रता दे रक्खी है। ईसाई, मुसलमान, हिन्दू और यहूदी इस राज्य में जा सकते हैं। किसी को तंग नहीं किया जाता। कोई किसी से उसके धर्म के विषय में कुछ पूछता ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने धर्म का पालन कर सकता है।"

मुग़ल साम्राज्य

लोदीवंश के अन्तिम सुल्तान इब्राहीम को पानीपत के मैदान में हराकर (१६२६) और अगले वर्ष मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) को कनवाह की रणभूमि में पराजित करके बाबर ने भारतवर्ष में मुग़ल राजवंश स्थापित किया, परन्तु उसके पुत्र हुमायूं को एक अफगान वीर शेरशाह ने भारत से भगा कर अपना राज्य स्थापित कर लिया। शेरशाह ने कुछ ही वर्ष राज्य किया। परन्तु उसका शासन उदार और उन्नत था। उसके उत्तराधिकारी अयोग्य थे इसलिये हुमायूं ने वापिस आकर पुनः अपना पैतृक राज्य प्राप्त कर लिया। उसके मरने पर अकबर ने अपने फूफा बहरामखां की सहायता से अपना राज्य जमाया और फिर अपने ही पराक्रम से इसको दृढ़ और संगठित किया। उसने अपनी उदार और निपुण नीति से एक नये युग का आरम्भ किया।

---

# सोलहवाँ अध्याय
## सल्तनत काल की मिश्रित संस्कृति

### हिन्दू मुसलिम संस्कृति

विशुद्ध या निर्मल संस्कृति का अस्तित्व केवल कल्पना में है, इतिहास में नहीं। संसार में कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसकी संस्कृति विशुद्ध हो। जैसे अनेक नदियाँ समुद्र में प्रवेश करके विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक देश के संस्कृति-सागर में अनेक विचार-धाराएँ आती हैं, ये कुछ तरंगें और क्षोभ उत्पन्न करती हैं और अन्त में समुद्र उनको निगल जाता है। मुसलमानों के आक्रमणों से पहिले, अर्थात् सन् ७१२ से पूर्व भारतवर्ष में भी ये क्रियायें हुई। ईरानी, यूनानी, शक, पार्थियन, हूण आदि जितनी भी जातियों ने भारत में प्रवेश किया, वे सब कुछ क्षोभ उत्पन्न करके भारत की सुखद गोद में सो गई और भारत ने उनको आत्मसात् कर लिया। परन्तु मुसलमानों के आक्रमणों के बाद यह क्रम टूट गया। मुसलिम संस्कृति नदी के रूप में किसी सागर में विलीन नहीं होना चाहती थी बल्कि यह औरों को निगलना चाहती थी। उसकी विस्तारवाद ने यह सिद्ध कर दिया था कि अन्य संस्कृतियों को अपने में विलीन करने की उसमें शक्ति है। उसका मन्त्र सरल और सुबोध था, उसकी मोहिनी शक्ति में अप्रतिहत प्रभाव था और उसकी शक्ति अदम्य थी। परन्तु जब खैबर की घाटी को पार करके उसने भारत में प्रवेश किया तो उसको अनुभव हुआ कि भारतीय संस्कृति निगली नहीं जा सकती। अपने तीन सौ वर्ष के शासन में तुर्क अफ़गान लोगों ने कई प्रकार के प्रयत्नों से अगणित हिन्दुओं को मुसलमान बनाया, परन्तु अन्त में उन्होंने यह अनुभव अवश्य कर लिया होगा कि समस्त भारतवर्ष को मुसलमान नहीं बनाया जा सकता। साथ ही हिन्दुओं ने भी देखा कि मुसलमान हूण आदि जातियों से बहुत भिन्न नहीं हैं। सातवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों की बस्तियाँ गुजरात, सिंध और भारत के पश्चिमी तट पर यत्र-तत्र स्थापित होने लग गई थीं। उस समय तक हूणों के आक्रमणों की तथा उनके पराजय की तथा राजपूतों में घुल-मिल जाने और हिन्दू धर्म स्वीकार कर लेने की कथायें यत्र-तत्र अवश्य प्रचलित थीं। आरम्भ में हिन्दुओं ने समझा होगा कि मोहम्मद कासिम की प्रथम विजय बाढ़ का जोर समाप्त हो जाने पर उसके साथ आये हुए मुसलमानों की भी दस बीस वर्ष बाद वही दशा होगी जो हूणों की हुई थी, परन्तु उनका अनुमान गलत

साबित हुआ। मुसलमान केवल लूटमार करने या अपना राज्य स्थापित करने ही नहीं आये थे, वे अपना धर्म, तर्ज और तरीका भी जहाँ जाते थे वहाँ कायम करना चाहते थे। इससे उनके राज्य की नींव दृढ़ होती थी और उनका यह भी विश्वास था कि इससे खुदा खुश होता है। जिस जाति में इतनी निष्ठा और दृढ़ता हो वह अपने ध्येय और उद्देश्य से विचलित नहीं हो सकती। इसलिए, अपने धर्म प्रचार के आवेश और मद में मुसलमानों ने भारतवर्ष के धर्म, ज्ञान, कला, दर्शन आदि को समझने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया। उनको किसी अन्य धर्म की या दर्शन की या साहित्य की आवश्यकता ही नहीं थी। उनके उस रुख को देखकर हिन्दुओं को भी अनुभव हो गया कि मुसलमानों को आत्मसात् नहीं किया जा सकता। इस स्थिति के कारण हिन्दुओं में भी अनुदारता बढ़ने लगी। शायद इसको ही उन्होंने अपनी रक्षा के लिए दुर्ग समझा। अब मुसलमान अपना धर्म फैलाना चाहते थे और हिन्दू लोग अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा करना चाहते थे। मुसलमानों के पास राजशक्ति थी और शस्त्र बल था। वे छल, बल या कौशल से या लोभ से हिन्दुओं को मुसलमान बना सकते थे किन्तु हिन्दुओं के लिए यह मार्ग बन्द था। उनके पास न राजशक्ति थी और न शस्त्र शक्ति। फिर नवनिर्मित अनुदारता के कारण मुसलमानों को अपने धर्म में मिलाने की उनमें न उमंग थी और न अभिलाषा। वे तो मुसलमानों से यथासंभव दूर रहना चाहते थे। आरम्भ में जो हिन्दू मुसलमानों ने गुलाम बना लिए थे या जिन्होंने दबाव के कारण मुसलमान धर्म को स्वीकार कर लिया था, उनको प्रायश्चित करवा कर पुनः हिन्दू धर्म में सम्मिलित कर लिया जाता था, परन्तु यह प्रथा भी केवल लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक जारी रही। ज्यों-ज्यों अनुदारता और दृढ़ता बढ़ी त्यों-त्यों यह बन्द होने लगी और अन्त में यह हो गया कि जो हिन्दू लोभ से, स्वार्थ से, दबाव या त्रास से मुसलमान हो गया वह हमेशा के लिए हिन्दू समाज से पृथक् हो गया। इस प्रकार भारतवर्ष में दो समाज कायम हो गये—एक हिन्दू समाज और दूसरा मुसलिम समाज। ये दोनों समाज एक दूसरे से दूर रहना चाहते थे। इनकी दृष्टि और भावना बिलकुल पृथक्-पृथक् थी। मुसलिम शासक भी चाहते थे कि यह पार्थक्य बना रहे। इसलिए दोनों समाजों का सम्मिश्रण दोनों में एकता और दोनों संस्कृतियों का समन्वय असम्भव नहीं तो कठिन तो था ही। लेकिन यह सम्भव नहीं था कि करोड़ों हिन्दू और मुसलमानों का पार्थक्य सदैव बना रहे। दोनों वर्गों के बीच गहरी खाई थी। उसका भरना या पटना निःसन्देह असम्भव था, परन्तु यह भी सम्भव नहीं था कि दोनों वर्ग परस्पर नहीं मिलें, एक भाषा नहीं बोलें, रंज या खुशी के मौके पर शामिल न हों, आमोद-प्रमोद कभी-कभी साथ-साथ न मनावें, और दोनों वर्गों के दो व्यक्तियों में कभी मित्रता हो ही नहीं। इस प्रकार के संपर्क अवश्यंभावी थे। इनके कारण हिन्दू मुसलिम संस्कृतियों का कुछ न कुछ समन्वय हुआ और भारत में एक नया

सांस्कृतिक वायुमंडल बना, परन्तु तो भी यह अवश्य है कि दोनों के मध्य में खाई बनी रही। हिन्दू और मुसलमान हाथ अवश्य मिलाते थे परन्तु खाई के ऊपर से। हिन्दू मुसलिम संस्कृति का यह मुख्य स्वरूप था।

## हिन्दू-मुसलिम धर्म

इन दोनों धर्मों का दृष्टिकोण भिन्न है, दोनों के अनेक सिद्धान्तों में महाभेद है। दोनों के अनुयायियों का व्यवहार पृथक्-पृथक् हैं। दोनों का सामाजिक कर्त्तव्य जुदा-जुदा है। दोनों के खानपान के नियमों में भेद है। पुनर्जन्म के विषय में दोनों के विचार नही मिलते। दोनों के स्वर्ग की कल्पना भी एक जैसी नहीं है। इस्लाम की भक्ति और हिन्दू धर्म की भक्ति भी एक जैसी नहीं है। दोनों धर्मों में सबसे बड़ा भेद है प्रतिमा पूजन। इस्लाम धर्म प्रतिमा पूजन को अत्यन्त हेय और गर्हित मानता है और इसका उच्छेद करना उसका ध्येय है। मुसलमान लोग समझते हैं कि मूर्तियों के तोड़ने से और मंदिरों को ढहाने से धर्म की सेवा होती है और खुदा खुश होता है। कुछ ऐसे भी आक्रमक लुटेरे थे जो हिन्दुओं को कत्ल करना धार्मिक सेवा मानते थे और उनका कत्ल इसलिए वाजिब समझा जाता था कि वे प्रतिमा पूजन को अपने धर्म का मुख्य अंग मानते थे।

## हिन्दू प्रतिमा पूजन

वेदों से उपनिषद् काल तक तो हिन्दू भी प्रतिमा पूजन नहीं करते थे लेकिन बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रभाव से वे प्रतिमायें बनाने लगे और उनकी पूजा भी प्रचलित हो गई। राजपूत काल में प्रतिमा पूजन का इतना प्रचार हुआ कि भारतवर्ष में हजारों सुन्दर मन्दिर निर्मित हो गये और प्रत्येक गाँव में ही नहीं, प्रत्येक घर में मूर्तियों का प्रवेश हो गया। मुसलमानों को मूर्तियों से बड़ी घृणा थी। उनका खयाल था कि जगन्नियन्ता सर्वशक्तिमान प्रभु को पत्थर या धातु या काष्ठ मानना घोर मूर्खता है और प्रभु का अनादर है। इस्लाम के उदय से पूर्व अरब के निवासी वास्तव में प्रतिमाओं को ही खुदा मानते थे। इस्लाम धर्म के संस्थापक पैग़म्बर मोहम्मद ने इसके विरुद्ध बड़ा प्रचार किया था और उनके प्रयत्न से यह प्रतिमा पूजन अरब में बन्द हुआ था। उनके अनुयायियों की धारणा हो गई थी कि जहाँ भी प्रतिमाओं का पूजन होता है वहाँ पत्थर आदि को ईश्वर माना जाता है और ऐसे अज्ञान का उच्छेद करना मुसलमानों का कर्त्तव्य है। परन्तु हिन्दुओं का मूर्ति पूजन ऐसा नहीं था। हिन्दू लोगों ने मूर्तियों को भगवान कभी नहीं माना। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में अलबेरुनी नामक अरब विद्वान ने इस विषय पर भारतीय पण्डितों से कई प्रश्न किये और उसको सदा यही उत्तर मिला कि मूर्ति भगवान नहीं है। प्रतिमा को एक विशेष शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठित किया जाता है और ईश्वर का प्रतीक मात्र माना जाता है। वह ध्यान

और चिन्तन का एक साधन मात्र है। यह बात सिद्धान्ततः तो ठीक है, परन्तु असंख्य मन्दिरों का वैभव और ऐश्वर्य, प्रतिमाओं को पूजने की विधि और भोग तथा परिधान का आडम्बर इस बात को भी प्रकट किये विना नहीं रह सकता था कि सूक्ष्मदर्शी कुछ विद्वान चाहे कुछ और समझें, अधिकांश जनता वास्तव में तथा व्यवहार में मूर्ति को ही परमेश्वर मानती है। इस स्थिति में मुसलमानों को हिन्दू धर्म में कोई ग्राह्य तत्व नहीं मिलता था। हिन्दू वेदान्त और मुसलमानों का सूफी दर्शन अवश्य एक दूसरे के निकट थे परन्तु ऐसी सूक्ष्म बातों को जानने और समझने वालों की संख्या अत्यन्त अल्प थी। यह लोक धर्म नहीं विद्वद्धर्म था।

### हिन्दू धर्म में क्षोभ

जब मुसलमान लाखों की संख्या में भारत में बस गये और लाखों हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तथा यत्र-तत्र मसजिदें निर्मित हो गई और मुल्लाओं की अजान से आकाश गूंजने लगा तो हिन्दू धर्म में एक क्षोभ उत्पन्न हुआ। ऐसा होना स्वाभाविक बात थी। भारत को पहिले भी विदेशी आक्रमणों के धक्के लग चुके थे, परन्तु उनसे यह भयभीत नहीं हुआ था। कुछ कांपा अवश्य था परन्तु धक्कों को सह गया था, किन्तु इस्लाम का धक्का बड़ा जोरदार था। इससे मूर्ति पूजा पर घोर प्रहार होने लगा, वर्ण-व्यवस्था की जड़ हिलने लगी, समाज का स्वरूप बदलने लगा, और हिन्दू परम्पराओं के विषय में कई प्रकार के प्रश्न उठने लगे तथा उठाये जाने लगे। सर्वत्र विचारशील लोग यह सोचने लगे कि हिन्दू धर्म में तथा इस्लाम धर्म में कहीं कोई समानता है या नहीं। क्या आडम्बर केवल हिन्दू धर्म में ही है और इस्लाम धर्म में नहीं है या दोनों में है और यदि ऐसा है तो सार क्या है और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। इस क्षोभ के दो पक्ष थे। एक पक्ष ने हिन्दू धर्म को दुर्भेद्य बनाने का प्रयास किया, अर्थात् इसके चारों ओर एक ऐसी ऊँची प्राचीर बनादी कि जिसको उलांघ कर न तो बाहर से कोई आसानी से उस पर आक्रमण कर सकता था और न अन्दर से कोई बाहर जा सकता था। दूसरे पक्ष ने हिन्दू धर्म को टटोला और देखा कि इसमें कोई कमजोरी तो नहीं है। यदि है तो क्या है तथा किस प्रकार से दूर हो सकती है, और यह कमजोरी केवल हिन्दू धर्म में ही है या इस्लाम धर्म में भी है। इस क्षोभ के कारण हिन्दू धर्म को लाभ हुआ और उसमें नवीन प्राण और बल आया।

### इसकी रक्षा के प्रयत्न

कुछ लेखकों ने हिन्दू धर्म को पहिले की अपेक्षा बहुत कट्टर और संकुचित बना दिया। इन लेखकों में प्रथम स्थान माधव का है। यह विजय नगर के प्रसिद्ध वेद व्याख्याता सायणाचार्य का भाई था। इसका काल चौदहवीं शताब्दी निर्णय किया गया है। सायण ने वेदभाष्य लिखा जो अब तक वेद विषय पर अत्युच्च कोटि

का ग्रन्थ माना जाता है। माधव ने पराशर स्मृति पर टीका लिखी और काल निर्णय नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा। दोनों में उसने इस मत का प्रतिपादन किया है कि वर्ण-व्यवस्था में शिथिलता नहीं आनी चाहिए, और ब्राह्मण को किसी अन्य वर्ण के व्यक्ति का बनाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिए। विश्वेश्वर पंडित (१३३५-१३६०) ने मदन परिजात नामक एक स्मृति ग्रन्थ लिखा जिसमें मुख्यतः उपरोक्त विषय का प्रतिपादन किया गया। यह पंडित बंग देश का निवासी था और पालवंशीय नरेश मदनपाल का आश्रित था, अतः अपने ग्रन्थ का नाम उसने तत्कालीन नरेश के नाम पर रखा था। ये दोनों चैतन्य महाप्रभु के समकालीन थे, अर्थात् इनका समय तुर्क-अफगान राज्य के पतन का समय है। दोनों लेखकों ने वर्ण व्यवस्था, विवाह, खान-पान आदि को जटिल बनाया और उनमें किंचितमात्र भी हेर-फेर करने की गुंजाइश नहीं रखी। कुंल्लूक भट्ट ने मनुस्मृति की टीका लिखी है जो बड़ी सरल और लोक प्रसिद्ध है। इस टीका में भी उसने उपरोक्त मत का प्रतिपादन किया है। मुसलमानों के आक्रमणों के आघातों को अनुभव करने के बाद और उनकी संख्या को शीघ्रता के साथ बढ़ते हुए देखने के बाद हिन्दू लोक ऐसा बन गया होगा कि इस आक्रमण और उत्पीड़क तथा खान-पान और विवाह-व्यवहार में उच्छृंखल और अमर्यादित शासक वर्ग के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखना चाहिए। इसका उद्देश्य यह था कि हिन्दू धर्म में विदेशीय धर्म के कोई तत्व न घुसने पावें, सम्पर्काभाव की यह दीवार जो अब नई खड़ी की गई थी वह दृढ़ नगर-प्राचीर के समान हिन्दू धर्म की रक्षा करती रहे और इस दीवार को लाँघ कर कोई बाहर भी न जा सके। यदि वह क्षोभ और लालचवश निकल भागे या विदेशी शासक उसको दीवार में घुस कर लूट ले जावें तो फिर उसका धर्म-नगरी में पुनः प्रवेश भी न हो सके। यही विधि हिन्दू धर्म को सम्पर्क और संक्रमण से बचाने के हेतु रची गई थी।

यह स्थिति सदा नहीं चल सकती थी। जब दो जातियों को एक देश में रहना ही था तो इसका घुलना-मिलना भी अनिवार्य था। लोकमत यह चाहता था कि हिन्दू और मुसलमान मिलजुलकर रहें और रात दिन की कटुता समाप्त हो। इसलिए ये दोनों लोग परस्पर समीप आने लगे। ऐसी स्थिति में स्वामी रामानन्द, कबीर, नामदेव और नामक आदि ऐसे महात्मा हुए जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में कोई भेद नहीं माना और दोनों धर्मों के उत्तम तत्वों को समन्वित करने का प्रयास किया।

### स्वामी रामानन्द

इनका जन्म चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रयाग के एक कान्यकुब्ज के घर में हुआ था। वे जन्म से विचारशील और भगवत्परायण थे। युवावस्था से ही सन्यास धारण करके ये धर्म प्रचार करने लगे। राम की भक्ति ये सगुण और निर्गुण दोनों

रूपों में करते थे। अधिक जोर निर्गुण रामभक्ति पर दिया करते थे। स्वामी रामानन्द जाति पाँति के टंटे को आवश्यक नहीं समझते थे। इनका मत था कि ईश्वर के यहाँ सब बराबर हैं। भगवान् की भक्ति के लिये और जन्म जरा के बन्धनों से विनिर्मुक्त होने के वास्ते मनुष्य का जीवन निष्पाप और निर्मल होना चाहिये, तथा परमात्मा में उसकी निष्ठा होनी चाहिये। रामानन्द जी का मूल मन्त्र यह था कि "जाति-पाँति पूछे नहीं कोई हरि को भजे सो हरि का होई।" इनके शिष्यों में बारह मुख्य थे—कबीर, पीपा, भवानन्द, सुखा, सुरसुरा, पद्मावती, नरहरि, रैदास, सेना, सुरसुरा की धर्म पत्नी और अनन्तानन्द। इनमें कबीर और रैदास धार्मिक नेता हुये और उनके मार्मिक विचारों से तथा चुभते हुये वचनों से धार्मिक क्षेत्र में खूब हलचल मची और लोगों का ध्यान बाह्य आडम्बरों से हट कर धर्म के मूल तत्वों पर गया। इन बारह शिष्यों में कई जाति के लोग थे। कबीर जन्मतः ब्राह्मण किन्तु व्यवसाय और लालन पालन की दृष्टि से मुसलमान थे, रैदास चमार थे, अनंतानंद ब्राह्मण थे और पीपा राजपूत थे।

### कबीर साहिब

कबीर का जन्म सन् १३९८ में एक ब्राह्मण के घर में हुआ था। कहा जाता है कि एक जुलाहे ने इनको किसी तालाब के किनारे पर पड़ा पाया। वह उन्हें अपने घर ले गया और उनका पुत्रवत् पालन किया। अतः उनके संस्कार और परिस्थिति में हिन्दू और मुसलमान दोनों का समन्वय था। इनके माता-पिता तथा पालक-पोषक दोनों काशी के निवासी थे और इनका जीवन भी प्रायः काशी में ही कटा। कबीर साहिब ने अपने गुरु की भाँति एक सौ वर्ष से अधिक आयु पाई और काशी के निकट ही उनका देहान्त हुआ। जिस मोहल्ले में वे रहते थे वह इस समय भी कबीर चौरा कहलाता है।

### कबीर साहिब के सिद्धान्त

कबीर निर्गुण भक्त थे। वे जगन्नियन्ता और जगदरचयिता निराकार ईश्वर को मानते थे। उनका ईश्वर कभी सांख्य के पुरुष से, कभी न्याय के ईश्वर से और कभी वेदान्त के ब्रह्म से मिलता जुलता था। इसका कारण यह है कि कबीर जी न विद्वान् थे और न दार्शनिक। वे तो सन्त थे जो भगवान की भक्ति में मस्त रहा करते थे और जिस समय जो तरंग हृदय में उठी, जैसे भी आध्यात्मिक प्रकाश की झलक दिखाई दी या जो अन्तः प्रेरणा हुई, उसी को अपने पद या गीत में प्रकट कर दिया करते थे। इसलिये कबीर साहब के विचारों में कोई व्यवस्था नहीं है। उनके मत में एकरसता का भी अभाव है। वे निर्गुणोपासक हैं और ऐकेश्वरवादी है परन्तु कभी कभी वे लोक विचारों के प्रवाह में भी वह जाते हैं। भक्त प्रहलाद का उल्लेख करते हुए उन्होंने नृसिंहावतार का भी संक्षिप्त वर्णन कर दिया है। अपने ईश्वर के लिये भी वे किसी

नाम विशेष का उल्लेख नहीं करते। बहुधा वे उसको राम कहते हैं परन्तु रघुनाथ, रघुराई, गोपाल आदि शब्दों का भी उन्होंने व्यवहार किया है। कबीर साहिब का धर्म हृदय का धर्म था, मस्तिष्क का धर्म नहीं। इसलिये उनके मीठे और पैने शब्द श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करते थे। कबीर ईश्वर और गुरु के सिवाय और किसी को नहीं मानते थे। ईश्वर की प्राप्ति के लिये वे योग, ध्यान, व्रत, उपवास या शास्त्रों का अध्ययन या अन्य किसी प्रकार का वेष-भूषा कुछ भी आवश्यक नहीं समझते थे। तत्कालीन भारत में जितने भी ईश्वर प्राति के या आत्म-साक्षात्कार के साधन प्रचलित थे, कबीर साहिब उन सबको निरर्थक और हेय समझते थे, परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कभी स्पष्ट नहीं बतलाया कि भगवत्प्राप्ति का सच्चा साधन क्या है। उनके तमाम ग्रन्थों को पढ़ने से यह सार निकलता है कि ईश्वर की प्राप्ति के हेतु मनुष्य सीधा, सादा और सरल जीवन व्यतीत करे, सबके साथ सद्व्यवहार करे, सत्य बोले, किसी को पीड़ा न पहुँचाये और बाह्य आडम्बरों में न फँसे। इन सरल और सत्य उपदेशों का कौन क्या विरोध कर सकता था। न हिन्दुओं का इनसे मतभेद था और न मुसलमानों का। वास्तव में कबीर साहिब के उपदेश दोनों को रुचिकर थे, इसलिये मुसलमान उनको मुसलमान मानते थे और हिन्दू उनको हिन्दू मानते थे। कबीर साहिब का यही बड़ा महत्व है कि उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक ही स्थान पर धर्म-चर्चा सुनने के वास्ते खड़ा कर दिया था, मानो इन दोनों वर्गों के बीच में जो खाई थी वह उन्होंने भर दी हो या पाट दी हो। हिन्दू और मुसलमान दोनों को साथ-साथ रहते लगभग छः सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे लेकिन इस लम्बे अर्से में किसी मुल्ला ने या पंडित ने यह प्रयत्न नहीं किया था कि धर्म के नाम पर होने वाला रक्तपात बन्द करके दोनों वर्गों को ऐसा धर्म-सन्देश दिया जावे जिसको दोनों निर्विरोध प्रेम से सुनें। यह महा कार्य सर्वप्रथम कबीर साहिब ने किया। इसलिये चौदहवीं और पन्द्रवीं शताब्दी में जो एक प्रकार की कुछ मिश्रित सी संस्कृति का विकास होने लगा था उसका कबीर साहिब को प्रधान प्रतीक और मुख्य सन्देश हर कहा जा सकता है। कबीर साहिब ने ईश्वर के लिये खुदा, अल्लाह और रब शब्दों का प्रयोग किया है। कभी कभी वे खालिक जैसे अप्रचलित शब्द का भी प्रयोग करते थे—

ज्यों नैनन में पूतरी यों खालिक घट माँहि।

कबीर साहिब ने शब्द, नाम, प्रेम विरहिन, सूक्ष्म मार्ग, शूरधर्म, सत्गुरु, नूर का महल, दीदार, नबी, कुरान, किताब, जौक, शौक, मौज, विरह निवेदन, सैयद, शेख आदि का जो उल्लेख या वर्णन किया है वह सब सूफीमत का प्रभाव है।

## गुरु नानक

गुरु नानकजी का जन्म सन् १४६९ में लाहौर के निकट तलवंडी नगरी के एक

खत्री परिवार में हुआ था। बचपन से ही ये विचारशील, दयालु और बुद्धिमान थे। अपनी युवावस्था में इन्होंने बिहार, बंगाल, आसाम, ब्रह्मा, उड़ीसा, मारवाड़, हैदराबाद, मद्रास, लंका, बद्रीनाथ, नैपाल, सिकम, भूटान, सिंध, मक्का, मदीना, रूम, बगदाद, ईरान, बिलोचिस्तान, कंधार, काबुल और कश्मीर की यात्रा की। सर्वत्र विद्वानों और सन्तों से इनकी भेंट हुई और काशी में कबीर साहिब के साथ भी धर्म चर्चा हुई। लगभग ६९ वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ। गुरु नानकजी भी कबीर साहिब की भाँति तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों से परेशान और प्रभावित थे। इसलिये उन्होंने भी बाह्य आडम्बर को हेय समझ कर असली तत्व की खोज की और अन्त में इस निर्णय पेर पहुँचे कि परमतत्व मन्दिर, मसजिद, वेद, कुरान या रोजा नमाज में नहीं है, बल्कि वह प्रत्येक व्यक्ति के मन में निहित है। जब हृदय का भय दूर हो जाता है और मन लोभ, मोह आदि निर्बलताओं से ऊपर उठता है तब उस आत्म-प्रकाश का दर्शन होता है। इसलिये नानक महाराज ने कहा कि तुम उसको ढूंढने के लिये वन में क्यों जाते हो? जिस प्रकार पुष्प में सुगन्ध और दर्पण में प्रतिछाया रहती है उसी प्रकार परब्रह्म तुम्हारे मन में ही निवास करता है। वह घट-घट वासी है, वह किसी में लिप्त नहीं है, लेकिन प्रत्येक के अंग में समा रहा है। नानकजी ने कहा कि केवल नाम रटने से धर्म नहीं होता है। सच्चा धार्मिक पुरुष वह है जो सब मनुष्यों को बराबर समझता है। कब्रों की जियारत करने से या समसान में निवास करने से कोई लाभ नहीं है और न ध्यान मुद्राओं से कुछ प्राप्त होता है। तीर्थों में स्नान करने से या इधर-उधर भटकने से भी धर्म नहीं बनता। संसार पापों से पूर्ण है तो क्या, तुम निष्पाप और निर्मल होकर उसमें बैठे रह सकते हो। इस प्रकार तुमको धर्म का मार्ग प्राप्त हो सकेगा? नानकजी को न उग्र तप पसन्द था और न विलास का जीवन। वह महात्मा बुद्ध की भाँति मध्यम मार्ग पर चलने का उपदेश दिया करते थे। मिथ्याचार, स्वार्थ-परायणता और झूठ से बड़ी ग्लानि थी और अपने भक्तों से कहा करते थे कि इन बुराइयों को त्यागे बिना सन्मार्ग पर चलना असम्भव है। कबीर साहिब की भाँति नानकजी का भी विचार था कि गुरु के अनुग्रह से ही हृदय के कपाट खुलते हैं और प्रकाश के दर्शन होते हैं। नानकजी संसार को असार मानते थे। इन्होंने भी कबीर साहिब की भाँति शूरवीर का वर्णन किया है। ये रामनाम को सबका सार मानते थे और भजन से ही उद्धार होने पर विश्वास करते थे। परन्तु कबीर साहिब की भाँति इनका भी यह विश्वास नहीं था कि ईश्वर अवतार लेता है। अतः कबीर, नानक, रैदान, धर्मदास आदि तत्कालीन संत राम को दशरथ का पुत्र नहीं किन्तु "घट-घट वासी सदा अलेपा" मानते थे। इस प्रकार के राम में और रहीम में कोई भेद नहीं था और इसलिये सन्तों की वाणी हिन्दू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य थी। नानकजी राम, गोविन्द आदि पौराणिक शब्दों का प्रयोग परब्रह्म परमेश्वर के अर्थ में करते थे। वे कहते थे कि—

"मृग तृष्णा ज्यों जग रचना यह देखो हृदय विचार।
कह नानक भज रामनाम नित जाते होय उधार।।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं तिन यह जुगति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविन्द में ज्यों पानी संग पानी।।"

नानकजी पर भी सूफी मत का प्रभाव था। ये हिन्दू मुसलमानों के भेद को मिटाना चाहते थे।

### रैंदास

ये कबीर साहिब के समय के अति प्रसिद्ध सन्त हैं। जाति से ये चमार थे परन्तु मांस और मदिरा का स्पर्श नहीं करते थे। इनके जीवन के विषय में केवल इतना ज्ञात है कि ये काशी के निवासी थे और प्रायः कबीर साहिब की संगति में रहा करते थे। इनके जन्म संवत् या निधन सवत् का पता नहीं है। रैंदासजी भी निर्गुण सन्त थे। ये जाति-पाँति के विरोधी थे। तीर्थ, व्रत और तिलक छाप आदि को व्यर्थ समझते थे, और मन तथा हृदय को निर्मल करने पर जोर दिया करते थे। इनकी भक्ति और निष्ठा के कारण लोग इनका बहुत आदर करते थे। काशी में ही सैकड़ों आदमी इनके भक्त थे। रैंदास भी हिन्दू मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते थे। सूफियों के साथ इनका सम्पर्क नहीं था, इसलिये इस सम्प्रदाय से इनका परिचय नहीं था। परन्तु तत्कालीन भारत में सूफी-सन्तों के विचार खूब प्रचलित थे, इसलिये रैंदासजी की वाणी में भी इनकी छाया यत्र-तत्र दिखाई देती है। यह आश्चर्य की बात है कि रैंदासजी के भक्त सबसे अधिक गुजरात में मिलते हैं और रविदासजी कहलाते हैं। मुसलमानों के सम्पर्क से या सन्तों के उपदेशों से पन्द्रहवीं शताब्दी के भारत में जाति बन्धन कुछ ढीले होने लगे थे। यह बात इसी से स्पष्ट है कि हिन्दू संस्कृति के प्रधान केन्द्र काशी में रैंदास अपने मत का प्रचार कर सकते थे और सैकड़ों लोग उनका आदर करते थे। वास्तव में काशी ने न कबीर साहिब का विरोध किया और न रैंदास का। कारण यह था कि हिन्दू लोग विचार स्वातंन्य को हमेशा से मानते आये हैं। भारत में ईश्वर का द्वार सबके वास्ते सदा खुला है। वहाँ किसी भी जाति का मनुष्य किसी भी मार्ग से जा सकता है। रैंदास कहते हैं कि:—

"जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच किया है कह रैंदास चमारा।"

### धर्मदास

ये कबीर साहिब के समकालीन प्रसिद्ध सन्त थे। ये बांधवगढ़ के धनाढ्य महाजन थे और बचपन में ही धर्मात्मा तथा भगवद्भक्त थे। इन पर सूफी

मत का बड़ा प्रभाव था। कबीर साहिब की भाँति इन्होंने भी भक्त को विरहिणी और ईश्वर को पति माना है और सूफियों की इश्कमारफत की शैली पर कविता लिखी है।

## भाषा का विकास

### अरबी-फारसी का प्रवेश

मुसलमानों के प्रवेश के बाद भारतीय भाषाओं में और विशेषतः उत्तर की भाषाओं में एक नया तत्व घुसने लगा। यह तत्व था फारसी और अरबी। इन भाषाओं की रचना और शैली भारतीय भाषाओं से भिन्न थी। ज्यों-ज्यों हिन्दू और मुसलमानों का सम्पर्क बढ़ने लगा त्यों-त्यों मुसलमान कुछ भारतीय भाषाओं के और हिन्दू लोग अरबी-फारसी के शब्दों का व्यवहार करने लगे। उत्तर भारत में, विशेषकर दिल्ली के आस-पास, मुसलमानों का प्राधान्य था। इसलिये उस प्रदेश में ऐसी भाषा का शनैः-शनैः विकास होने लगा जिसको हिन्दू और मुसलमान दोनों समझते थे।

### अमीर खुसरो

ये आगरा के पास एटा जिले में एक मुसलमान परिवार में सन् १२४० के आस-पास उत्पन्न हुए थे। इनका देहान्त लगभग सन् १३३५ में अर्थात् लगभग एक सौ वर्ष की आयु में हुआ था। अतः इन्होंने बलबन से अलाउद्दीन तक सब बादशाह देखे थे। इनके समय में लगभग बारह बादशाह हुए और सब प्रसिद्ध बादशाहों से इनका सम्पर्क रहा। इन्होंने फारसी और हिन्दी का एक छन्दोबद्ध कोष लिखा है जो खालिकबारी के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी रचना इस प्रकार की गई है कि फारसी शब्द के साथ ही उसका समानार्थक हिन्दी शब्द दिया गया है। इस ग्रन्थ का आरम्भ योग्य लेखक ने इस प्रकार किया है—"खालिक बारी सरजन हार, वाहिद एक बिदा करतार।" इस ग्रन्थ से पता चलता है कि उस समय सरजनहार, करतार आदि रूप बन चुके थे। भाषा अन्य अवस्थाओं को अर्थात् प्राकृत, और अपभ्रंश को पार करके हिन्दी का रूप धारण करने लग गई थी और यह रूप मुसलमानों के सम्पर्क से अर्थात् विदेशी भाषाओं के दबाव से बनने लगा था।

### कबीर साहिब और पन्द्रहवीं शताब्दी की भाषा

कबीर साहिब की भाषा संस्कृत प्रधान हिन्दी थी परन्तु उस पर विदेशी भाषा का पुट भी काफी था। वास्तव में उस काल में इसी प्रकार की अर्थात् मिश्रित भाषा प्रचलित होती जाती थी। रुचि और परिस्थिति के अनुसार कहीं विदेशी शब्दों का व्यवहार अधिक होता था और कहीं कम। इसके सिवाय वाक्य, वाक्यांश और मुहावरों का भी स्वरूप निखरने लग गया था। इस विकास में तत्कालीन राजनैतिक

और सामाजिक स्थिति का बड़ा हाथ था। कबीरजी के समय में वास्तव में हिन्दी का स्वरूप पक्का हो गया था।

## पारस्परिक समन्वय के अन्य साहित्यिक प्रयास

कश्मीर का सुलतान जैनुल आब्दीन इस युग में बुद्धिमान और उदार शासक था। अकबर की भाँति वह हिन्दू और मुसलमानों के मध्य की खाई को भरना चाहता था। इस्लाम कुछ भी कहता हो, उसकी यह धारणा बन गई थी कि दोनों कौमें शान्ति से उसी अवस्था में साथ-साथ रह सकती हैं जब वे एक दूसरे के आचार, व्यवहार और विचार को समझें और उसका आदर करें। ऐसा ही सुल्तान बंगाल में हुसैनशाह था। इन दोनों सुल्तानों ने अपने-अपने दरबारों में संस्कृत साहित्य का अध्ययन करवाया और हिन्दुओं के ज्ञान-विज्ञान को समझने का प्रयास किया। अनेक ग्रन्थों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया, कई ग्रन्थों का सार फारसी में लिखवाया और मुसलमानों की विद्वन्मंडलियों में उनका प्रवेश और प्रचार करवाया। मुस्लिम सुल्तानों ने हिन्दुओं के योग दर्शन और विधियों का अध्ययन करवाया और मुस्लिम फकीरों को आकर्षित किया और कुछ लोगों ने इसका अध्ययन भी किया परन्तु यह इतना जटिल और कठिन विषय था कि इसमें विदेशियों की गति नहीं हुई और यह लोकप्रिय नहीं बन सका। भारत का आयुर्वेद और ज्योतिष इस समय अति विकसित और प्रौढ़ अवस्था में था। इसके चमत्कारों को मुसलमान लोग लगभग सात सौ वर्षों से देख रहे थे। अरब के मुसलमान तो इन पर मुग्ध थे और अरब तथा ईराक में भारतीय प्रणाली के कई चिकित्सालय जारी किये गये थे, जिनमें भारत के वैद्य काम करते थे। अफगान तुर्क काल में भी इन विषयों के चमत्कारों ने मुसलमानों को आकर्षित और मुग्ध किया और उन्होंने इनका अध्ययन किया।

## समन्वित कला

जब मुसलमानों का विजयविनाश कुछ कम हुआ और दोनों कौमें कुछ शान्ति के साथ पास-पास रहना सीखने लगीं और दोनों के दार्शनिक विचार और भाषायें परस्पर प्रेम करने लगीं तब दोनों कौमों की कलाओं में भी आदान-प्रदान आरम्भ हुआ। जो काम अपने-अपने क्षेत्रों में अमीर खुसरो, कबीर, नानक और रैदास आदि ने किया था, कला के क्षेत्र में वही काम असंख्य राज और सलावट करने लगे। इन लोगों ने वाणी से प्रकट नहीं किया कि दोनों कलाओं में क्या निष्फल आडम्बर है और क्या तत्व हैं तथा सर्वग्राह्य सारभूत कला का क्या स्वरूप है या क्या स्वरूप होना चाहिये। ऐसा सूक्ष्म विवेचन करने की न इन लोगों में क्षमता थी और न हिम्मत। जैसे दार्शनिक विवेचन को सहन कर लिया गया था या उसकी उपेक्षा की गई थी, वैसा कला के क्षेत्र में नहीं हो सकता था। जो व्यक्ति मसजिद या मजार के निर्माण पर

रुपया खर्च करता था, वह लोक रुचि की क्यों चिन्ता करता और यदि चिन्ता करनी थी और लोकरंजन भी उसका उद्देश्य था तो केवल मुस्लिम वर्ग की चिन्ता करना उसके लिये काफी था। मसजिद कैसी हो और मजार कैसा हो इस विषय में हिन्दुओं की कलाभिरुचि को जानने की या उसका अनुरंजन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। तो भी मुस्लिम कला में हिन्दू कला का प्रवेश हुआ ही। इसको मुसलमानों ने निमन्त्रित नहीं किया। यह तो परिस्थिति के बल से घुस ही पड़ा। यह कैसे हो सकता था कि लगभग दो हजार वर्ष पुरानी भारतीय कला मुसलमानों के सिर पर चढ़कर जादू की भाँति बोलने न लग जाती। ज्यों-ज्यों विजय और संग्राम का कोलाहल कम होता गया त्यों-त्यों विनाश कार्य कम होने लगा और भारतीय कला ऐसी कला से मुस्लिम कला में घुसने लगी कि किसी को यह पता ही नहीं चला कि क्या हो रहा है। मुसलमान कलाविदों या इंजीनियरों ने कभी यह प्रश्न ही नहीं किया कि काफिरों की कला मुसलमानों की कला का क्यों आलिंगन कर रही है। कलावन्तों को वास्तव में यह विचार ही नहीं आया। इस क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम का भेद कभी प्रकट होने नहीं पाया। स्थापत्य में ही नहीं, संगीत और चित्रकारी में यही प्रवृत्ति रही। इस प्रकार दोनों कलाओं के घुलने मिलने से कला-समन्वय होने लगा। परन्तु यह केवल आरम्भ मात्र था। इसका पर्यवसान लगभग एक सौ वर्ष बाद अकबर के शासन काल में हुआ।

---

# सत्रहवाँ अध्याय

## मुगल काल को मिश्रित संस्कृति

**अकबर का धर्म**

तख्त पर बैठने के बाद लगभग दस बारह वर्ष तक अकबर इस्लाम धर्म के सम्पूर्ण नियमों का यथावत् पालन करता रहा। परन्तु जन्मतः और स्वभावतः अकबर कट्टर नहीं था। शनैः-शनैः उसकी उदारता बढ़ती ही गई। अबुल फजल और अबुल फैजी ने अपनी विद्वत्ता से उसको बहुत प्रभावित किया। ये दोनों भाई और इनका पिता शिया मुसलमान थे और तीनों अद्भुत पंडित थे। इनके सम्पर्क से अकबर के विचार बहुत ही उदार हो गये और उसके हृदय में विभिन्न धर्मों का सार और तत्व जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उसने फतेहपुर सीकरी में एक मनोहर स्थान बनवाया, जिसका नाम इबादतखाना रखा और वहाँ पर वह विद्वानों द्वारा सब धर्मों के निविध पक्षों का विवेचन सुनने लगा। आरम्भ में शिया, सुन्नी और सूफी लोग ही धर्म-विवेचन करते थे। फिर उसने अन्य धर्मों के अधिकारी विद्वानों को भी निमंत्रित करना शुरू किया। हिन्दू पंडितों के व्याख्यानों को सुनकर अकबर पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने लगा और उसका यह विश्वास हो गया कि संसार के प्रत्येक धर्म में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को किसी न किसी रूप में माना जाता है। हीरविजय सूरी, विजयसेन सूरी और भानुचन्द्र उपाध्याय उस समय के प्रसिद्ध जैन विद्वान थे। हीरविजय सूरी के सम्पर्क से अकबर ने विशेष दिनों पर प्राणियों का वध निषिद्ध कर दिया था और फिर सिद्धान्त चन्द्र नामक जैन विद्वान् से मिलने पर उसने जैनियों के लिये कई रियायतें जारी कर दी थीं और जैन तीर्थों पर कर लगाना बन्द कर दिया था। दस्तूर महरजी राणा पारसी विद्वान था। उससे पारसी धर्म का विवेचन सुनकर अकबर सूर्य और अग्नि की पूजा करने लगा। अकबर ने गोआ से ईसाई विद्वानों को निमंत्रित किया और उनके द्वारा ईसाई धर्मो के मूल सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त किया। ईसाई विद्वानों में एक्वाविवा और मोन्सीरेट विशेष उल्लेख के योग्य हैं। प्रत्येक धर्म की व्याख्या को अकबर ऐसी रुचि और श्रद्धा के साथ सुनता था कि व्याख्याताओं को यह भ्रम हुआ करता था कि उसने उनके धर्म को स्वीकार कर लिया। वास्तव में अकबर ने कोई भी धर्म स्वीकार नहीं किया था, परन्तु इतना कहा जा सकता है कि उसको इस्लाम धर्म से सन्तोष नहीं होता था। अतः अकबर मुल्लाओं के प्रभाव को नहीं मानता था और

न उसकी व्याख्याओं का आदर करता था। उसने यह भी घोषणा करवादी थी कि यदि इस्लाम धर्म के किसी सिद्धान्त के विषय में मतभेद होगा तो वह निर्णय देगा और उसका निर्णय सब लोगों को मान्य होगा।

इस प्रकार विचार करते करते अकबर ने स्वयं अपना एक धर्म चलाया। इसका नाम "दीन-ए-इलाही" रखा। इसका वह स्वयं आचार्य बन गया और शिष्यों की तलाश होने लगी। अकबर का सिद्धान्त था कि प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ सार है। समझदार व्यक्ति को यह सार ही ग्रहण करना चाहिये। परमात्मा एक है। विभिन्न धर्म या मत में उसको प्राप्त करने के विभिन्न साधन हैं। दीन-ए-इलाही से किसी को विरोध तो क्या हो सकता था, परन्तु अपने कुल-क्रमागत धर्म को तज कर नए धर्म को स्वीकार करने के लिये लोग तैयार नहीं हुये। किसी ने इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी। उदार हिन्दू-हिन्दू रहते हुए भी सब धर्मों का आदर कर सकता था और अबुल फजल जैसा उदार मुसलमान इस्लाम धर्म को मानते हुये भी अन्य धर्मों को सम्मान की दृष्टि से देख सकता था और इस प्रकार का रुख रखते हुये वह अपने सह-धर्मियों के और दूसरे धर्मावलम्बियों के विरोध से भी बच सकता था। ऐसी अवस्था में दीन-ए-इलाही का अनुयायी बनने की आवश्यकता किसी ने अनुभव नहीं की। यही कारण था कि अकबर के इस नवीन धर्म के केवल तेरह अनुयायी बने। इनमें बारह मुसलमान थे और एक हिन्दू। अकबर ने किसी पर दबाव नहीं डाला, यह उसकी उदारता थी। जब जयपुर महाराज भगवानदास और उनके पुत्र मानसिंह से दीन-ए-इलाही स्वीकार करने के लिये कहा गया तो उन्होंने नम्रतापूर्वक स्पष्ट इन्कार कर दिया। शायद उसके बाद अधिक अनुयायी बनाने का प्रयत्न भी नहीं किया गया।

अकबर की धार्मिक नीति बहुधा जहाँगीर के समय भी चलती रही। शाहजहाँ ने कुछ कट्टरता दिखाई परन्तु औरंगजेब ने हिन्दुओं पर बड़े अत्याचार किये। उसने मन्दिरों में गोवध करवाया, कितने ही मन्दिर तुड़वाये, समस्त हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया, हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से निकाल दिया, मुसलमानों की अपेक्षा उनसे अधिक कर लिये, संस्कृत का पठन-पाठन बन्द कर दिया, दीवाली और दशहरा आदि हिन्दू त्यौहारों का निषेध किया, परन्तु सन्तोष की बात यह थी कि इन आदेशों का अक्षरशः पालन नहीं हो सका। अकबर के समय से निर्गुण और सगुण भक्ति का जो प्रबल प्रवाह जारी हुआ था वह औरंगजेब के अत्याचारों से भी नहीं दब सका। अकबर के समय गुसांई तुलसीदास, दादूदयाल और गुरु अर्जुन बड़े प्रभावशाली सन्त हुये। तुलसीदास ने रामायण लिखकर हिन्दुओं में नये जीवन का संचार किया। दादूदयाल ने राजस्थान, गुजरात और मालवा में निर्गुण भक्ति का प्रचार करके कबीर

की परम्पराओं को जारी रक्खा। गुरु अर्जुन ने गुरुओं की वाणी का संग्रह किया और सिक्खों को संगठित किया। इसी प्रकार वंग देश में भी अपूर्व जागृति हुई। चैतन्य बड़े महात्मा हुये। दक्षिण में भी कवीर, रैदास और रांमदास के समान कितने ही अब्राह्मण सन्त हुए जिन्होंने देश की अच्छी सेवा की। जाति-पाँति को तुच्छ समझा और भगवद् भक्ति को प्रधान माना।

**मुगल काल की साहित्य को देन**

मुगल काल पारस्परिक आदान-प्रदान का युग था। इसमें मुसलमानों ने हिन्दू संस्कृति, धर्म और दर्शन को समझने का प्रयत्न किया और हिन्दुओं ने अरबी और फारसी का अध्ययन करके इस्लाम के असली स्वरूप को समझा। इसी युग में उर्दू का विकास, उत्थान और पोषण हुआ और इसी युग में हिन्दी भाषा में फारसी शब्दों ने अधिक प्रवेश करना शुरू किया। अरबी और फारसी के शब्द लोगों की जबानों पर इतने चढ़ गये और इतने प्रचलित हो गये कि गुसांई तुलसीदास ने भी अपने रामचरितमानस में इनका प्रयोग करने में कोई दोष नहीं माना। विहारी सतसई में लगभग वीस प्रतिशत शब्द फारसी के हैं। महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने फारसी शब्दों का खूब प्रयोग किया है। इसी प्रकार राजस्थान के अन्य कवियों ने भी अपनी भाषा को सबल और समृद्ध बनाया है। मुगलों के दरबार में हिन्दू कवियों का आदर होता था और राजाओं के शासन कार्य में फारसीबाहुल्य हिन्दी भाषा का प्रयोग होता था। मुगलों के पतन काल में भी विद्या की उपेक्षा नहीं हुई। बहादुरशाह के समय में उसके वजीर गाजीउद्दीन ने और खान फीरोज जंग ने अपने खर्च से दो विद्यालय जारी किये थे। मुहम्मदशाह सवाई जयसिंह के विद्याप्रेम पर मुग्ध था। शाहआलम के समय में भी एक अच्छा शाही कुतुबखाना अर्थात् पुस्तकालय था। अवध के वजीर भी विद्या को प्रोत्साहन देते थे। बंगाल के नवाबों में मुर्शिदकुली, अलीवर्दीखां और मीर कासिम बड़े विद्याप्रेमी थे। नदिया के महाराजा कृष्णचन्द्र ने संस्कृत के प्रचार के लिये बहुत सा धन खर्च किया था। जो विद्यार्थी नदिया में विद्या ग्रहण करने के लिये जाता था, उसको वे सौ रुपये मासिक छात्रवृत्ति दिया करते थे। भारतचन्द्र और रामप्रसाद सेन उनके समय के प्रसिद्ध लेखक थे। द्विज भवानी नामक एक वंगाली लेखक ने जब रामायण लिखना शुरू किया तो जयचन्द्र नामक एक जमींदार उसको दस रुपये प्रतिदिन दिया करता था। वीर भौम का मुसलमान जमींदार अपनी आय का आधा भाग विद्वानों के पोषण के लिये खर्च किया करता था। महाराष्ट्र के पेशवा पंडितों और विद्वानों को पुष्कल दक्षिणा देकर सत्कृत किया करते थे। पेशवाओं के बड़े बड़े पुस्तकालय थे और उनकी वृद्धि करने के लिये प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ खरीदे जाते थे और उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार करवाई जाती थीं।

### विकास का आरम्भ

गुलाम, खिलजी, तुग़लक, सैयद और लोदी वंश के मुसलमानों ने भारतवर्ष में अपने-अपने ढंग की कला जारी की थी। इनमें पश्चिम और मध्य एशिया, उत्तर अफ्रीका और दक्षिण-पूर्वी यूरोप से आई हुई कला की परम्परायें थीं। परन्तु इनके वाहक अरब, ईरान और तुर्किस्तान के लोग थे। इसलिये कुछ लोगों ने यह निश्चित किया कि यह मुस्लिम कला थी। परन्तु ये कलायें अति प्राचीन थीं और इस्लाम के उद्गम से पहले ही इनका विकास हो रहा था। इन पर इस्लाम की कोई विशेष छाप नहीं थी, केवल मस्जिदों के निर्माण पर और मकबरों की रचना पर मुस्लिम धर्म का किंचित् प्रभाव था। जब इन कलाओं ने भारतवर्ष में प्रवेश किया तो यहाँ के प्रान्तों की विभिन्न कलाओं के साथ इनका मिश्रण होना प्रारम्भ हुआ और इस स्थानीय प्रभाव के कारण वाह्य कलाओं का रूपान्तर हो गया। भारतवर्ष में पहले से ही हिन्दू, बौद्ध और जैन शैलियाँ विकसित हो चुकी थीं। इन्होंने वाहर से आई हुई कला को अपनी कुक्षि में धारण कर लिया। यही कारण है कि सहसराम में बना हुआ शेरशाह का मकबरा दूर से देखने पर हिन्दू मन्दिर, बौद्ध विहार या जैन चैत्य मालूम होता है और सूक्ष्मता से देखने पर मकबरा जान पड़ता है। जिसको प्रायः मुगल कला कहा जाता है उसको मुगलों ने जन्म नहीं दिया था और न मुगलों के शासन के कारण उसकी सृष्टि या पुष्टि हुई थी। मुगलों से पहले जो देशव्यापी धार्मिक और साहित्यिक चेतना हुई थी, उसने इस मिश्रित कला की सृष्टि की थी और इसका स्वरूप मुख्यतः भारतीय हो गया था। इसी का विकास मुगल काल में होता रहा। मुगल सम्राटों के वैभव और ऐश्वर्य ने इसको अधिक आकर्षक और उज्ज्वल बना दिया और इसकी महत्ता और विशालता बढ़ा दी। परन्तु मुगल काल की प्रारम्भिक कला वास्तव में भारतीय कला थी। मुगल कला को प्राण प्राप्ति राजपूतों की राजधानियों से, उनके महलों के गुम्बजों से, दक्षिण के ऊंचे स्तम्भों से, गुजरात की पुराने ढंग की जालियों से, और मालवा तथा राजपूताने के महलों की लदाव की छतों से हुई थी।

### अकबर की कला

अकबर के समय में कला ने प्रौढ़ता प्राप्त की। अकबर में अद्भुत कल्पना शक्ति थी। इसका पता नहीं चलता कि यह निरक्षर था या किंचित् शिक्षित। परन्तु उसका हृदय विशाल था और मस्तिष्क अति सम्पन्न। इसको समन्वय में आनन्द प्राप्त होता था। अबुल फजल ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है कि अकबर के दिल और दिमाग में जो ख्वाब आये, उनको उसने मिट्टी और पत्थर का जामा पहना दिया। फरगसन ने फतेहपुर सीकरी के सम्बन्ध में लिखा है कि यह नगर अकबर के मस्तिष्क की भव्य भावनाओं का साकार स्वरूप है। अकबर को ईरानी कला से प्रेम था। यह उसको

अपने माता, पिता तथा पितामह से प्राप्त हुआ था। परन्तु ज्यों-ज्यों उसके साम्राज्य का विस्तार हुआ और उसने राजनैतिक आवश्यकताओं का अनुभव किया, त्यों-त्यों उस पर हिन्दू कला का प्रभाव बढ़ने लगा। फिर उसने जो इमारतें बनवाई उनमें हिन्दू कला की प्रधानता बढ़ने लगी। आगरे का जहाँगीरी महल और फतेहपुर-सीकरी की इमारतें ऐसी मालूम होती हैं कि मानों किसी हिन्दू नृपति की बनवाई हुई हों। हुमायूं की कब्र के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह शुद्ध ईरानी शैली की बनी हुई है परन्तु वह भी भारतीय कला के प्रभाव से नितान्त मुक्त नहीं है। इसकी कला के अनेक अंश भारत में पहले ही विद्यमान थे। इसके गुम्बज का उभार और गर्दन की रचना सर्वांशतः भारतीय कही जा सकती है और अलंकरण तो भारतीय हैं ही। फतेहपुर-सीकरी की इमारतों में विशेषतः उल्लेख के योग्य हैं—बुलन्द दरवाजा, दीवान-ए-खास, इबादतखाना और पंचमहल। बुलन्द दरवाजा १३० फुट ऊँचा है। इसकी विशालता में एक विचित्र विशेषता है। इसकी निर्माण कला सर्वांशतः भारतीय है। इसकी कल्पना न किसी दूसरे जमाने में हुई और न किसी दूसरे देश में। इसके पख, उप-पख, उतरंगे, टोड और धारियाँ सब विशुद्ध भारतीय हैं। इबादतखाना एक कमल पुष्प है जो एक स्तम्भ पर स्थित है और इसके ऊपर बैठने का स्थान बनाया गया है। इसका निर्माण-चातुर्य भी विचित्र है। पंचमहल का निर्माण बौद्ध विहार के ढंग का है। अकबर का मकबरा जिसको सिकन्दरा कहते हैं पंचमहल की शैली का बना हुआ है। सबसे ऊपर हल्का सा गुम्बज बनाने का विचार था जो बना नहीं। उसके नीचे का खंड बड़ा है और क्रमशः तीसरा और चौथा खण्ड छोटा होता गया है। अकबर के समय में इस प्रकार की इमारतें पूर्वी द्वीप समूह में और विशेषकर कम्बोडिया में विद्यमान थीं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि अकबर ने सिकन्दरा के निर्माण के लिये तथा उसके स्वरूप और नक्शे तैयार करने के लिये इन दूरस्थ द्वीपों से कारीगर बुलाये होंगे। इन्हीं की कारीगरी की छाप फतेहपुर सीकरी और सिकन्दरा की कला पर दिखाई देती है। अकबर की कला में भव्यता और विशालता है। आगरे का दुर्ग और फतेहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा अत्यन्त प्रभावोत्पादक इमारतें हैं। ऐसा मालूम होता है मानों अकबर की महानता और शूरवीरता ने पत्थर का रूप धारण कर लिया हो। इन इमारतों के सामने खड़े होकर देखा जाय तो अकबर के वैभव और शौर्य की स्मृति स्वतः ही जागृत हो जाती है, मानों इनके निर्माण के प्रत्येक अंश पर उसका विशाल व्यक्तित्व अंकित हो।

### जहाँगीर और शाहजहाँ की कला

जहाँगीर के समय में उतना निर्माण कार्य नहीं हुआ जितना अकबर के शासन में हुआ था। इसके समय की बनी हुई इमारतों में सिकन्दरा और इत्माद्-उद्-दौला विशेष

उल्लेख के योग्य हैं। सिकन्दरा का आरम्भ अकबर ने करवा दिया था और उसको पूरा जहाँगीर ने करवाया था। इत्माद-उद्-दौला नूरजहाँ ने बनवाया था। यह उसके पिता का मनोहर स्मारक है और शुद्ध मकराने का बना हुआ है। इसमें पच्चीकारी का काम बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक है। इस काम के लिए विविध रंग के मूल्यवान पत्थरों का उपयोग किया गया है। इत्माद्-उद्-दौला में जो पच्चीकारी का काम है वह अत्यन्त पुष्ट और परिमार्जित है। शाहजहाँ की इमारतों में भी इतना दिव्य और निर्दोष काम नहीं मिलता। शाहजहाँ की इमारतों में न भव्यता है और न मौलिकता, लेकिन उनमें कोमलता और अलंकृति मानों बरस पड़ी है। उनको देखते ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। उसका सारा निर्माण मानों अलंकार है। ऐसी अनुभूति होती है मानों उसकी हर एक इमारत एक जड़ाऊ जेवर है जिसमें विविध रत्नों के सौन्दर्य को और जिसकी मनोहरता को आँखें इकटक देखती ही रह जाती हैं। वहाँ से हटना नहीं चाहतीं। उसने आगरा, दिल्ली, लाहौर, काबुल, काश्मीर, अजमेर और अहमदाबाद आदि स्थानों पर कई इमारतें बनवाई। दिल्ली में उसका दीवाने आम, दीवानेखास और मोती मस्जिद उसकी कला की पराकाष्ठायें हैं। ताज शाहजहाँ की कला का मुकुट है। इसकी दिव्यता और मनोहरता अनिर्वचनीय है।

**मुगल कला का पतन**

औरङ्गजेब का शासन मुगलों के अधःपतन का युग है। उसके समय में उदारता की परम्परायें, समानता का व्यवहार, वैभव का विलास और शक्ति का महात्म्य सब साथ-साथ अन्तर्ध्यान हो गये और इन्हीं के साथ वह सुन्दर मुगलकालीन कला भी विलीन हो गई, जो गत कई शताब्दियों के निरन्तर विकास से पुष्ट हुई थी।

**चित्रकला**

अकबर के दरबार में जो अनेक चित्रकार थे उनका मुखिया अब्दुस समद माना जाता था। यह हुमायूं के शासनकाल में भारत में आया था। अमीर हम्जा को इसने सन् १५५० और सन् १५६० के मध्य में चित्रित किया होगा। इस ग्रन्थ के चित्र स्पष्ट ईरानी प्रतीत होते हैं। परन्तु इसके दो वर्ष बाद ही अकबर की दरबारी चित्रकला में परिवर्तन होने लगा। सन् १५६० में अकबर का राजपूतों से प्रथम सम्पर्क स्थापित हुआ और इसके बाद यह बढ़ता ही गया। शनैः-शनैः अकबर हिन्दू संस्कृति की ओर अधिकाधिक झुकने लगा और हिन्दू कला का यह परम पुजारी बन गया। सन् १५५० और सन् १५८५ के मध्य में फतेहपुर सीकरी के राजप्रासादों को अलंकृत करने के लिए अनेक ईरानी व हिन्दुस्तानी कलाविद व चित्रकार नियुक्त किये गये। अब्दुस समद इनका मुखिया था। सब चित्रकारों को इस बात की स्वतन्त्रता थी कि वे अपनी-अपनी कला का चमत्कार दिखावें और एक दूसरे का अनुकरण करने का

प्रयास न करें। इन चित्रकारों में विदेशी चित्रकार बहुत थोड़े थे। बाहुल्य भारतीय चित्रकारों का था। बाहर के चित्रकारों में समद, खुसरो, कुली, जमशेद और फर्रुखबेग प्रसिद्ध थे। सब मिलकर प्रसिद्ध चित्रकार सत्रह थे। इनकी मदद करने वाले बीसियों अन्य चित्रकार भी थे। परन्तु उच्च श्रेणी के सत्रह ही माने जाते थे। इनमें उपरोक्त चार चित्रकार मुसलमान थे और शेष तेरह हिन्दू थे। हिन्दुओं में दसवन्त, लेखावनलाल, केशव, मुकन्द और हरिवंश तथा जगन्नाथ अग्रगण्य थे। शेष हिन्दू चित्रकारों में अधिकांश कायस्थ थे और कुछ चितेरा, सलावट, खाती और कहार जाति के थे। काम करने का तरीका यह था कि सब प्रमुख चित्रकार मिलकर एक चित्र बनाया करते थे। एक स्वरूप बनाता था। दूसरा इसको सिद्ध करता था। तीसरा रेखायें सुधारता था। चौथा रंग बनाता था। पाँचवा अंगों को उभार देता था। छठा रंग भरता था और अन्त में एक उस्ताद चित्र की सफाई करता था। इस भाँति आकार प्रकार और महत्व के अनुकूल एक चित्र के निर्माण में कई कलाविद् काम करते थे। अकबर के उदार प्रोत्साहन के कारण उसके दरबार में चित्रकारों का वास्तव में जमघट सा लगा रहता था। हिन्दू चित्रकारों ने आश्रय और जीविका प्राप्त करने के लिए तथा कीर्ति और ख्याति की लालसा से अपने परम्परागत वैष्णव विषयों को छोड़ कर नवीन विषयों को बड़ी सफलता के साथ बहुत जल्दी ग्रहण कर लिया था। व्यक्तियों के चित्र, ग्रन्थ-चित्रण और पशु पक्षियों की भाव भंगियों के चित्र इन लोगों ने बड़े उत्तम तैयार किये थे। अबुल फजल ने अपनी आइन-ए-अकबरी में लिखा है कि भारतीय चित्रकारों की बराबरी संसार के कोई चित्रकार नहीं कर सकते। धीरे-धीरे अकबर स्वयं धार्मिक विषयों की ओर झुकने लगा और समझने लगा कि चित्रकार में भगवान् की विभूति को समझने के लिए बड़ी सामर्थ्य होती है। बहुत से कट्टर मुल्लाओं को यह बात पसन्द नहीं आई परन्तु अकबर अपने मत पर दृढ़ रहा। अकबर ने इस प्रकार की चित्रकला को बहुत प्रोत्साहन दिया। वह प्रति सप्ताह चित्रों की प्रदर्शनी करवाया करता था। योग्य चित्रकारों को पर्याप्त पुरस्कार देता था। उसने कई चित्रशालायें स्थापित की थीं और लगभग एक सौ चित्रकारों को अच्छे ऊँचे पद देकर सम्मानित किया था। वह चित्रकारों को आवश्यक रंग, कागज, पट और सुन्दर तूलिकायें आदि मंगवा कर दिया करता था। अच्छे चित्रों को स्वयं खरीद कर या अपने उमरावों से खरीदवा कर चित्रकारों का पोषण और सन्मान बढ़ाता था। उसके समय के "रज्मनामा", "अकबरनामा" और "बाबरनामा" अभी मिलते हैं। रज्मनामा जयपुर के पोथीखाने में, अकबरनामा ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में और बाबरनामा विक्टोरिया म्यूजियम में सुरक्षित हैं। ये तीनों ग्रन्थ चित्रित हैं। इनके चित्र अकबर के समय की सर्वोत्तम कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त मन्सूर और जगन्नाथ के बनाये हुए पशु-पक्षी अपनी विविध चेष्टाओं से, अंग-भंगियों से, और शरीर के स्वाभाविक तथा

यथोचित अनुपात से दर्शकों को रोमांचित किया करते थे।

जहाँगीर को चित्रकला का अच्छा ज्ञान था। इसलिए उसके दरबार में चित्रकारों को आश्रय मिलता रहा। इस कला को प्रोत्साहन देने के लिये वह अच्छे चित्रों को भारी कीमत देकर खरीदा करता था। वह चित्रों के गुण दोष पहिचानता था और उसने अपने महलों में कई चित्रशालायें बनवाई थीं। दीवारों पर सुन्दर चित्र अंकित करवाये थे और कागज पर बने हुए उत्तम चित्रों का भी संग्रह किया था। उसके राज्यकाल में कागज पर लाखों चित्र तैयार हुए जिनमें हजारों चित्र उच्च कोटि के थे। उसने भारत के विविध प्रान्तों से भी चित्र एकत्र किये थे। उसके समय में चित्रकला बहुधा भारतीय बन गई थी और विदेशी प्रभाव नाम मात्र का रह गया था।

शाहजहाँ के समय में चित्रकला को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला बल्कि यह लगभग बन्द ही हो गया। इसलिए शाही दरबार में रहने वाले चित्रकार रोजी की तलाश में इधर-उधर भटकने लगे। इनमें कुछ लोगों को राजा, रईस और नवाबों के यहाँ आश्रय मिला परन्तु अब चित्रकला लड़खड़ाने लगी। औरंगजेब ने तो मानों इसे जमीदोज ही कर दिया। वह चित्रकारी को इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल समझता था। कहा जाता है कि उसने बीजापुर के महलों की और सिकन्दरा की भव्य चित्रकारी पर सफेदी करवा दी थी। जहाँगीर के समय में बने हुए ईसाई चित्रों को उसने बिगड़वा दिया था। तो भी औरंगजेब के समय में चित्रकारी बिल्कुल बन्द नहीं हुई। धनाढ्य लोगों के लिए विविध विषयों के चित्र बनते ही रहे। यहाँ तक कि स्वयं औरंगजेब के भी विविध अवस्थाओं के सैकड़ों चित्र इस समय उत्तर भारत में और विशेषकर राजस्थान में मिलते हैं। मुगलों के पतन काल में भी चित्रकारी कुछ न कुछ चलती ही रही, यहाँ तक कि दिल्ली में भी इस सिसकती हुई अवस्था में जीवित रही। फर्रुखशियर और मोहम्मदशाह के चित्र तो सैकड़ों मिलते हैं, परन्तु शाह आलम और बहादुरशाह के चित्र भी अप्राप्त नहीं हैं और उनके समय के दूसरी तरह के चित्र भी सैकड़ों मिलते हैं।

## संगीत कला

### मुगल और गजल

अफगान सुल्तानों ने भारतीय संगीत कला में कोई हेर फेर नहीं किया। उन लोगों को संगीत से कोई विशेष प्रेम भी नहीं था। जब मुगल आये तो परिवर्तन होने लगा। बाबर स्वयं कवि था और अच्छी गजल लिख सकता था। गजल ख्वानी से उसको विशेष प्रेम था। यह प्रेम वह अपने देश से लाया था। मुगल संगीत में स्वर, राग या रागनियों की व्यवस्था नहीं थी। इसमें गजल का प्राधान्य था। संगीत गजल

के साथ चलता था। गजल संगीत के साथ नहीं चलती थी। यह नया प्रवाह मुगलों ने भारतीय संगीत में जारी किया। लेकिन जब गजल या रेखता भारतीय संगीतज्ञों के हाथ में आया तो उन्होंने इसको और अधिक सुन्दर बना दिया। भारतीय कलाविद् फारसी गजल को भी भारतीय स्वर, राग और रागनियों में गाने लगे। इससे गजल में और मधुरता आ गई और मुगल दरबार में भारतीय संगीत का प्रवेश हो गया। धीरे-धीरे गजल गौण हो गई और संगीत ने प्रधानता प्राप्त कर ली। अकबर के दरबार में गजल की प्रधानता प्रायः जाती रही।

### अकबर का दरबारी संगीत

अकबर स्वयं बड़ा कलाविद् था। वह कविता के मर्म को और संगीत के स्वरूप को स्वभावतः समझता था। इसलिए उसने भारतीय संगीत के सिद्धान्त को समझा और अनुभव किया कि रस की निष्पत्ति स्वर, राग और आवाज की मधुरता से होती है। शब्द में इतनी शक्ति नहीं है जितनी लय में, स्वर में और तान में है। उसके दरबार में तानसेन का बड़ा आदर हुआ। तानसेन हिन्दू था परन्तु दरबारी गवैयों के चक्कर में पड़ कर मुसलमान हो गया था। उसका संगीत विशुद्ध भारतीय शैली का था और तत्कालीन जगत में उसका बहुत ऊँचा स्थान था। समस्त भारतवर्ष में उसकी समानता करने वाला केवल एक कलावन्त और था, वह था बैजू बावरा। बैजू बावरा ने अकबर का आश्रय स्वीकार नहीं किया, परन्तु तानसेन आजीवन मुगल दरबार को अलंकृत करता रहा।

### मुगलों के सम्पर्क का प्रभाव

मुसलमानों के सम्पर्क का भारतीय संगीत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। जिन सिद्धान्तों का और शैलियों का वर्णन राग रत्नाकर और अन्य संगीत ग्रन्थों में दिया हुआ है वे ही सिद्धान्त अकबर के राज्य काल में और उसके पीछे जारी रहे। इतना-सा भेद अवश्य हुआ कि फारसी की गजलें और शाहजहाँ के बाद उर्दू की गजलें भारतीय स्वरों में और रागों में गाई जाने लगीं। परन्तु संगीत के बड़े-बड़े उस्तादों ने इस पद्धति को भी ग्रहण नहीं किया। इसका प्रचार केवल साधारण गवैयों में और गायिकाओं में हुआ। तानसेन ने तराना जारी किया। इस शैली में शब्द की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। यहाँ तक कि स्वरों के भी नाम नहीं लिये जाते। यह इस सिद्धान्त की पराकाष्ठा थी कि संगीत में शब्द या अर्थ का महत्व नहीं है। उसमें संगीत, लय और सामंजस्य की प्रधानता होनी चाहिये। प्राचीन रागों के स्वरों में किंचित् हेर-फेर करके कुछ नये राग रागनियाँ तैयार की गईं। इनमें मुल्तानी, बहार, दरबारी, कांगड़ा, बड़गूजरी और मियां की टोड़ी आदि विशेष उल्लेख के योग्य हैं। वाद्य प्रायः सब भारतीय ही रहे। केवल सारंगी के विषय में सन्देह है और अनुमान होता

है कि यह वीणा का रूपान्तर है। सितार भी वीणा का रूपान्तर है और इसी का क्षुद्र रूप एकतारा और तानपुरा है। परन्तु ये विकास और ह्रास भारत में ही हुये और आवश्यकता और परिस्थिति के वश हुये। इन रूपान्तरों में कोई विदेशी प्रभाव प्रतीत नहीं होता। परन्तु अरबी ताशा शुद्ध विदेशीय है। नाम से प्रतीत होता है कि यह या तो आठवीं नवीं शताब्दी के भारतवर्ष में जारी हुआ या पहले यह ईरान या तुर्किस्तान में पहुँचा और फिर बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी में इसने भारत में प्रवेश किया। परन्तु इसमें न कोई माधुर्य है और न सरसता, और संगीत में इसको कोई स्थान नहीं मिल सकता। इसलिये यह मुगलों के समय में आया हुआ नहीं है। राजस्थान में इस बाजे का उपयोग विवाह आदि अवसरों पर हिन्दू लोग बहुधा किया करते थे और इसके बजाने वाले केवल मुसलमान ही होते थे। अब यह मोहर्रम के अवसर पर काम आता है। नौबत और नक्कारे के विषय में भी कुछ विद्वानों का मत है कि यह बाहर से आया है। इसका शहनाई के साथ विशेष सम्बन्ध है और हिन्दू मन्दिरों में इसका बड़ा प्रचार है। इससे जान पड़ता है कि यह प्राचीन वाद्य है परन्तु साथ ही साथ इसका शुद्ध संस्कृत नाम यदि कोई था तो वह विस्मृत हो गया है और मुगल काल से यह नौबत कहलाने लगा है। यहाँ तक कि हिन्दी भजनों में भी इसको नौबत ही कहते हैं। इसके स्थान को नगारखाना (नक्कारखाना) कहते हैं। और इसके साथ जो केवल ध्वनि संगीत होता है उसका वाद्य शहनाई कहलाता है जो भारतीय शब्द नहीं है। परन्तु ये सब बाजे कोमल और शुद्ध संगीत के अंग नहीं हैं। ये आवश्यकता के अनुसार विकसित हुये हैं और इनका सम्बन्ध केवल बड़े-बड़े राजघरानों से ही था, जनता से नहीं। जनता के यहाँ नौबत और शहनाई केवल विवाह के अवसर पर बजा करती थी और उस समय लाउड स्पीकर का काम देती थी।

---

# अठारहवाँ अध्याय

## मुगलों का पतन और अँग्रेजों का राज्य

### मुगलों का पतन

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का बड़ी शीघ्रता से पतन होने लगा। १७१९ में बादशाह फरुर्खसियर को उसके सैयद मंत्रियों ने जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह और कोटे के महाराव भीमसिंह की सहायता से कैद करके मार डाला। इसके पश्चात् मुगल सम्राटों का प्रताप और अधिक क्षीण होने लगा। कितने ही प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र हो गये। मराठों का बल बढ़ने लगा। यहाँ तक कि सन् १९३८ में पेशवा बाजीराव दिल्ली के पड़ोस तक पहुँच गया और लूटमार करके वापिस आ गया। सन् १७३९ में नादिरशाह ने दिल्ली का कत्लेआम करवाया और समस्त नागरिकों की सम्पत्ति लूट ली। मुगल घराने की प्रमुख महिलाओं को वह अपने साथ ले गया और कुछ से उसने विवाह कर लिये। अटूट सम्पत्ति के साथ शाहजहाँ का बनवाया हुआ बहुमूल्य रत्नजटित मयूरासन भी वह ईरान ले गया। अब मुगल सम्राट केवल नाम के बादशाह रह गये और शक्तिहीन तथा धनहीन अवस्था में सिसक-सिसक कर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। इस नाम शेष साम्राज्य को मानो निःशेष करने के लिये गुलाम कादिर रोहिला ने सन् १७८८ में दिल्ली पर धावा किया और शाही महलों पर कब्जा करके बादशाह शाहआलम की आँखें फोड़ डालीं और शाही हरमखाने की बेगमों को अपने सैनिकों में बाँट दिया तथा जमीन में गड़े हुए परम्परागत कुल-क्रमागत धन को खुदवाकर ले गया।

### मराठों की लूटमार

ज्यों-ज्यों मुगल शक्ति क्षीण होती जाती थी त्यों-त्यों मराठों का बल बढ़ता जाता था। पहले मालवा और गुजराज में और फिर राजपूताने में पहुँच कर उन्होंने लूट-मार शुरू की और दिल्ली के पड़ोस तक को जा लूटा। उधर कलकत्ते से आगरे तक उनका आतंक छा गया और फिर उन्होंने पेशावर तक छापा जा मारा। ये लोग जहाँ जाते थे वहाँ लूटमार करते थे और विपुल धन-राशि लेकर बड़े-बड़े शहरों के सेठ साहूकारों का पिंड छोड़ा करते थे। राजस्थान और बुन्देलखंड इनकी लूटमार से बर्बाद हो गये थे। बड़े-बड़े राजघरानों के पास इन्होंने भोजन और वस्त्र के लिए भी रुपये

नहीं छोड़े थे। पिंडारी लोग मराठों की सेनाओं के अंग थे। जब मराठे लूट करने के लिए हमले करते थे तो आगे पिंडारियों का दल चलता था और पीछे मराठों की सेना। पिंडारी मराठों से भी अधिक नृशंस और नाशक थे। उस समय न कोई व्यवस्था थी और न कोई शासन। सर्वत्र घोर अराजकता थी और समस्त जनता का जीवन संकटाकुल था। त्रस्त लोग त्राहि-त्राहि करते थे और चाहते थे कि मराठों का अन्त हो।

### अंग्रेजों का राज्य विस्तार

साथ ही साथ अंग्रेज लोग युक्ति और शक्ति से अपना राज्य जमाते जाते थे। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में उनके पास केवल बम्बई, सूरत, मद्रास, कलकत्ता और सात आठ अन्य समुद्र तट के पास स्थित छोटे-छोटे नगर थे। परन्तु सन् १७६५ में बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के उत्तम भाग पर उनका आधिपत्य स्थापित होगया। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उन्होंने मराठों को दबा लिया और टीपू सुल्तान को खतम कर दिया। सन् १८०३ में दिल्ली का बादशाह उनके अधीन हो गया और मुगलों की राजधानी पर उनका अधिकार स्थापित हो गया। फिर सन् १८१७-१८ में उन्होंने पिंडारियों को निःशेष कर दिया। राजपूत नरेशों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और पेशवा उनका पेंशनर बन गया। इस प्रकार पंजाब के अतिरिक्त समस्त भारत पर अंग्रेजों का उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आधिपत्य स्थापित हो गया।

### यूरोपियन लोगों से सम्पर्क

यूरोपियन लोगों का रहन सहन और आचार-व्यवहार भारतीयों से बिल्कुल भिन्न था। परन्तु आरम्भ में एक दूसरे से घृणा नहीं थी, बल्कि यूरोपियन लोग किसी अंश में हिन्दुस्तानी रहन-सहन को अपनाने लग गये थे। रंग भेद का विचार भी अधिक नहीं था। हिन्दुस्तान में आने वाले यूरोपियन अपने साथ स्त्रियाँ बहुत कम लाये थे। कम्पनियों के गवर्नर और कौंसिलरों के अतिरिक्त शेष हजारों लोग अकेले आये थे। पुर्तगालियों ने तो अपनी सत्ता को दृढ़ करने के लिये यह नीति जारी की थी कि हिन्दुस्तानी स्त्रियों से विवाह किया जाय। उनका खयाल था कि इनसे उत्पन्न होने वाली सन्तानें पुर्तगाल के प्रति वफादार रहेंगीं। फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की न ऐसी नीति थी और न ऐसा विचार, परन्तु निम्न श्रेणी के लोगों ने आवश्यकतावश हिन्दुस्तानी औरतों से विवाह किये। उस समय उनमें जातीय अभिमान नहीं था। यूरोपियन लोग हिन्दुस्तानी नाच और तमाशे देखा करते थे। वे हुक्का पीने लग गये थे और गवर्नर आदि बड़े अफसरों में हाथियों की लड़ाई देखने का बड़ा शौक था। फिर भी हिन्दुस्तानियों के प्रति इनका व्यवहार स्नेहमय नहीं था। इन लोगों का खयाल था कि मुसलमान व्यसनी और विलासी होते हैं और हिन्दू लोग अन्ध विश्वासी। यह

बात अंशतः सत्य थी। परन्तु यूरोपियन लोग हिन्दुस्तानियों को पूर्णतः समझ नहीं सकते थे। साथ ही हिन्दुस्तानी भी यूरोपीय लोगों को मद्यजीवी समझते थे। मनुक्की ने लिखा है कि अकबर यूरोपियन लोगों के विषय में कहा करता था कि इनका और मद्य का जन्म साथ-साथ हुआ है। ड्वाय लिखता है कि एक बार हिन्दुस्तानी और यूरोपियन पादरी में बातचीत हुई तो हिन्दुस्तानी ने कहा "ईसाई शैतान का मत है। ईसाई लोग पीने में रहते हैं। सदा कुकर्म करते हैं। मारपीट करते हैं या दूसरों को गालियाँ देते हैं।" एक बार श्वार्ट्ज ने एक हिन्दू वेश्या से कहा कि पापी और दुष्ट लोग स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकते तो उसने तत्काल उत्तर दिया, "अरे साहब, तब तो कोई यूरोपियन स्वर्ग में नहीं घुस सकेगा।"

## सांस्कृतिक चेतना

### राजा राम मोहन राय

ईसाइयत के बढ़ते हुये प्रभाव से और अंग्रेजी स्कूल और कालेजों में पढ़ने वाले उच्छृंखल नवयुवकों के व्यवहार से हिन्दू समाज आकुल हो उठा था। विचारवान् लोग अनुभव करते थे कि हिन्दू धर्म अनेक कुरीतियों से लद गया है और समाज की कुप्रथाओं से दबा हुआ है। वे यह भी जानते थे कि रूढ़ियाँ तथा कुरीतियाँ धर्म के तात्विक अंग नहीं हैं। इनको हटा देने पर भी धर्म ज्यों का त्यों बना रह सकता है। ये लोग यह भी समझते थे कि ईसाइयों के प्रचार में अत्युक्ति होते हुये भी सत्य अवश्य है। अंग्रेज, फ्रांसीसी और जर्मन विद्वानों के पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण से यह भी प्रकट हो गया था कि भारतीय संस्कृति का सत्य स्वरूप उज्ज्वल है। यूरोपीय विद्वान् उनका अभिनन्दन करने को तैयार थे परन्तु किसी भारतीय को यह साहस नहीं होता था कि भारतीय जनता के सामने धर्म का शुद्ध स्वरूप उपस्थित करे और हेय प्रथाओं को नष्ट करने के लिये आन्दोलन करे। ऐसी परिस्थिति में यह कार्य राजा राम मोहन राय ने अपने हाथ में लिया।

राजा राम मोहन राय का जन्म २२ मई सन् १७७२ ई० में बंगाल के बर्दवान जिले के राधानगर नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने पटना में अरबी और फारसी की शिक्षा पाई। वहाँ प्रतिमा पूजन के प्रति इनका विश्वास उठ गया। अंग्रेजी भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और ग्रीक भाषा का भी इन्होंने अध्ययन किया था। संस्कृत के भी ये अच्छे ज्ञाता थे। सन् १८२० के लगभग इन्होंने ईसाई धर्म पर एक पुस्तक लिखी जिसमें सिद्ध किया कि ईसा की कथायें कल्पित हैं। राजा राम मोहन राय ने एक निबन्ध में लिखा है कि "यह स्वाभाविक बात है कि विजेता जाति पराजित जाति के धर्म की खिल्ली उड़ाया करती है, स्वयं अपना धर्म चाहे जितना हास्यास्पद हो उधर ध्यान नहीं जाता। जब मुसलमानों ने भारत पर विजय प्राप्त की तो वे हिन्दू धर्म के

शत्रु बन गये। यूनानी और रोमन लोग मूर्तिपूजक थे परन्तु अपनी यहूदी प्रजा के एकेश्वरवाद की खिल्ली उड़ाते थे। इसलिए अब यदि अंग्रेज पादरी लोग भारतीय धर्म की निन्दा करते हैं तो कोई असाधारण बात नहीं है"। भारत की ओर से ईसाई पादरियों को यह सबसे पहला जवाब मिला था। इससे वे खिन्न हुये। उनके प्रचार में कुछ रोक लगी, भारतीय नवयुवकों में विवेक तथा स्वाभिमान की जागृति होने लगी।

### ब्रह्म समाज और अन्य संस्थायें

सन् १८२८ में राजा राम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस संस्था के अनुयायी एक ईश्वर में विश्वास करते थे। जाति-पाँति के विरोधी थे। खान पान में स्वतन्त्र थे। रूढ़ियों को नहीं मानते थे और हिन्दू समाज को नये साँचे में ढालना चाहते थे। ब्रह्म समाज का धर्म अकबर के दीन इलाही से मिलता जुलता था। इसमें उपनिषद् के ब्रह्मवाद, मुसलमानों की वहदत और बाईबिल की नीति धर्म का सम्मिश्रण था। उस समय इसकी आवश्यकता भी थी। हिन्दू धर्म की विशालता और उदारता प्रदर्शित करने से ही इसकी महानता प्रगट हो सकती थी। राजा राम मोहन राय के पश्चात् महर्षि देवेन्द्रनाथ ने और इनके बाद बाबू केशवचन्द्र सेन ने इस संस्था का नेतृत्व किया। इनके समय में ब्रह्म समाज ईसाई धर्म की ओर अत्यधिक झुकने लगा, इसलिए इसकी दो शाखायें हो गई—आदि ब्रह्म समाज और नवब्रह्मसमाज। कुछ अर्से बाद अर्थात् सन् १८४६ में बम्बई में भी ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई। परन्तु वहाँ इसका नाम प्रार्थना समाज रक्खा गया। इसका मुख्य उद्देश्य समाज सुधार था। इस संस्था ने दक्षिण में समाज सुधार का बहुत बड़ा काम किया। सन् १८६३ में लाहौर में भी ब्रह्मसमाज की शाखा खुली, परन्तु वहाँ इसके प्रायः सब अनुयायी आर्य समाजी हो गये। लाहौर में सन् १८८७ में सत्यानन्द अग्निहोत्री ने देवसमाज नामक एक संस्था स्थापित की, जिसका उद्देश्य था समाज सुधार, शिक्षा प्रचार और समाज सेवा। इन सब संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य समाज में जागृति उत्पन्न करना था। सुधारक लोग चाहते थे कि ईसाइयत के धक्के से भारतीय समाज चकनाचूर न हो जाये। साथ ही इनको यह भी विश्वास नहीं था कि ईसाइयत का प्रबल विरोध किया जा सकता है। इनका खयाल था कि हिन्दू धर्म में वास्तव में कमजोरियाँ हैं, इसलिए जोर के साथ इसकी हिमायत नहीं की जा सकती। तो भी ब्रह्मसमाज के नेताओं ने और प्रार्थना समाज तथा देवसमाज के नायकों ने देश के शिक्षित समाज में एक अपूर्व जागृति उत्पन्न की और नये युग का आरम्भ किया। इन्होंने अगले सुधारकों और नेताओं को कार्य का और आन्दोलन का मार्ग बतलाया। अगली संस्थाओं ने इन्हीं के ढंग पर प्रचार किया, जिससे भारत का सर्वोत्थान हुआ। परन्तु अभी जागृति का सन्देश घर-घर नहीं पहुँचा था, यह कुलबुलाहट शिक्षित समाज तक ही सीमित थी और वह भी अधिकांशतः कलकत्ते में या बम्बई,

लाहौर, पूना और मद्रास जैसे वड़े वड़े नगरों में, जहाँ अंग्रेजी भापा का और शिक्षा का प्रचार वढ़ता जाता था। अभी अन्य नगरों में, कस्बों और गाँवों में नये जागरण का सन्देश पहुँचने में देर थी।

### अंग्रेजों की आशा विफल

अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम वनाते समय विधाताओं का यह अनुमान था कि इससे सारे हिन्दू समाज को ईसाई वनाने में आसानी होगी। इनका यह भी खयाल था कि अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग तन से चाहे भारतीय रहें परन्तु मन से अंग्रेज अवश्य वन जायेंगे। उनकी यह आशा पूरी नहीं हुई। हजारों लाखों हिन्दू ईसाई अवश्य हुए। उनका रहन-सहन और आचार व्यवहार भी यूरोपियन ढङ्ग का वन गया। अंग्रेज लोगों ने उनको अपना समकक्ष नहीं माना, परन्तु ये लोग अपने को साहव मानने लग गये और अपने भाइयों को हीन दृष्टि से देखने लगे। परन्तु कुछ ही वर्ष के वाद अंग्रेजी शिक्षा से और अंग्रेजों के सम्पर्क से भारत में अद्भुत जागृति हुई और इसकी ऐसी प्रवल लहर उठी कि हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज दोनों सवल और सशक्त हो गये। इसके साथ ही साथ राष्ट्रीय जागरण का आरम्भ हुआ जिसका पर्यवसान भारत की राजनैतिक स्वाधीनता में हुआ।

### राष्ट्र भाषा का विकास

वर्तमान हिन्दी का विकास अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ से हो गया था। परन्तु गदर के वाद इसमें विशेष स्फुरण हुआ। वावू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसको राष्ट्रीय रंग दिया। उन्होंने सवसे पहले ऐसे नाटक लिखे जिनसे राष्ट्रीय भावना जागृत हुई। हिन्दी गद्य को भी उन्होंने निश्चित रूप दिया। हिन्दी समाचार पत्र का आरंम्भ राजा राम मोहन राय ने किया था और फिर उत्तर प्रदेश में भी एक हिन्दी पत्र जारी हुआ था। किन्तु गदर के वाद कई पत्र पत्रिकायें जारी हो गईं। हिन्दी का प्रचार आर्य समाज के द्वारा भी वहुत हुआ। ऋषि दयानन्द गुजराती थे परंन्तु उन्होंने अपना अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी भापा में लिखा और अन्य ग्रन्थों में भी संस्कृति के साथ हिन्दी का प्रयोग किया। आर्य समाज के प्रचारकों और भजनीकों के द्वारा हिन्दी लोकप्रिय वनी। हिन्दी के पक्ष में इन लोगों ने हजारों व्याख्यान दिये। आर्य समाज के हजारों ट्रैक्ट हिन्दी भापा में ही तैयार किये गए। काशी नागरी प्रचारणी सभा हिन्दी के प्रचार के लिये स्थापित हुई जिसने हिन्दी के कितने ही अमूल्य ग्रन्थों का प्रकाशन किया और उत्तर प्रदेश में हिन्दी को राजभापा वनाने का प्रयास किया। विहार और उत्तर प्रदेश में तथा राजस्थान में शिक्षा का माध्यम हिन्दी को मान लिया गया और पंजाव में आर्य समाज के द्वारा तथा उसकी शिक्षा संस्थाओं के द्वारा पेशावर तक हिन्दी का प्रचार हुआ। महात्मा गांधी हिन्दी को राष्ट्रभापा के उपयुक्त समझते

थे। सर्व प्रथम कांग्रेस में स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दी भाषा का उपयोग किया था। इससे पहले कांग्रेस में भाषण और प्रचार सब अंग्रेजी के द्वारा होता था। अमृतसर की कांग्रेस (१६१६) के बाद महात्मा गांधी प्रायः हिन्दी में सब काम करने लगे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में द्रुतगति से हिन्दी का प्रचार हुआ। प्रायः समस्त उत्तर भारत में अनेक छापेखाने खुल गये और पुस्तकमालायें प्रकाशित हुईं। बंगला और मराठी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कई सद्ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद तैयार हुए, साथ ही अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषाओं का भी हिन्दी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यूरोप के राष्ट्रीय विचार हिन्दी में घुसे और अंग्रेजी की वाक्यरचना, शैली, नाटक, उपन्यास मुक्तक काव्य आदि का हिन्दी पर बहुत प्रभाव पड़ा। वर्तमान हिन्दी संस्कृत पर आश्रित है। इसकी साहित्य धारायें बंगला से आरम्भ हुई हैं और अंग्रेजी से इसका वर्तमान स्वरूप बना है। हमारे देश की अन्य भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी ने भी प्रौढ़ता प्राप्त की परन्तु बंगला के समान इसमें साहित्य सौन्दर्य और काव्य गरिमा नहीं आ सकी। इसकी विशेषता रही इसका राष्ट्रीय स्वरूप। इस समय भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि देश की सर्वव्यापक और सर्वसम्मत भाषा बन जाने पर हिन्दी का स्वरूप और शब्द भण्डार कैसा होगा।

उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू, कनाड़ी और मलयाली भाषायें भी इस युग में पुष्ट, उन्नत और प्रौढ़ बनीं और सबके साहित्य में राष्ट्रीय भावना की विशेषता हुई। इस प्रकार धार्मिक और राष्ट्रीय जागरण के साथ-साथ हमारे देश में साहित्यिक जागरण हुआ और विविध भाषाओं ने निश्चित रूप धारण किया। औरङ्गजेब ने संस्कृत का पठन-पाठन कानूनन बन्द कर दिया था परन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् समस्त देश में संस्कृत के प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी और अनेक प्रान्तों में विश्वविद्यालयों ने संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य कर दिया। परन्तु यह अध्ययन नवीन ढङ्ग का था। न इसमें प्राचीन काल की सी गहनता थी और न व्यापकता परन्तु तामिल के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रान्तीय भाषाओं का आधार संस्कृत को माना जाता है। इसलिए इसकी ओर विचारशील शिक्षा शास्त्रियों का और राष्ट्रवादियों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस समय संस्कृत के प्रचार की बड़ी चर्चा है और कतिपय उच्च श्रेणी के नेता इसको सार्वदेशिक भाषा भी बनाना चाहते हैं परन्तु अभी नहीं कहा जा सकता कि भावी भारत में संस्कृत को क्या स्थान प्राप्त होगा?

## आर्य समाज

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में और वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में आर्य समाज के प्रचार से भारत में अपूर्व जन-जागृति हुई। लोगों में देशाभिमान उत्पन्न

हुआ। अपनी संस्कृति का आदर करने लगे और स्वराज्य का स्वप्न देखने लगे। आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द ने की थी।

### स्वामी दयानन्द (१८२४-१८८३)

इनका जन्म काठियावाड़ प्रान्त के मोरवी राज्य में हुआ था। इनका जन्मनाम मूलशंकर था और पिता का नाम अम्बाशंकर। इन्होंने चौदह वर्ष की अवस्था से पहले ही वेद के कितने ही सूक्त कंठस्थ कर लिए थे और संस्कृत व्याकरण का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। शिवरात्रि को शिव प्रतिमा पर चूहा चढ़ता देखकर इनकी प्रतिमा-पूजन से आस्था हट गई और ये सच्चे शिव की अपने मन में खोज करने लगे। इसके पश्चात् इन्होंने अपनी बहिन और चाचा की मृत्यु के दृश्य देखे। इनसे उनके मन में घोर परिवर्तन हुआ और वे चिंतन करने लगे कि मुक्ति कैसे प्राप्त होती है। साथ ही वे अथक परिश्रम से विद्योपार्जन करने लगे। सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने पूरी यजुर्वेद संहिता तथा शेष तीन वेदों के बड़े बड़े अंश कंठाग्र कर लिये थे और न्याय, साहित्य तथा व्याकरण के पंडित बन चुके थे।

सन् १८४५ में अर्थात् २१ वर्ष की अवस्था में वे चुपके से घर से निकल पड़े और ज्ञान तथा मुक्ति की तलाश में वे पन्द्रह वर्ष तक यत्र-तत्र घूमते रहे। उन्होंने हिमालय, विंध्यागिरि और ताप्ती और नर्मदा के जंगल सच्चे गुरु की खोज में छान डाले। कितने ही दिन केवल जंगली फल खा कर या दूध पीकर बिताये। लम्बे अर्से तक मौन व्रत धारण किया और कई वर्ष तक संस्कृत के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं बोली। उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण किया और चरित्र में परम उज्ज्वलता प्राप्त की। पन्द्रह वर्ष के ऐसे महातप के अन्त में उनको मथुरा में स्वामी विरजानन्द नामक एक नेत्रहीन परम विद्वान् सन्यासी मिले जिनको इन्होंने गुरु बनाया। दो वर्ष तक स्वामी विरजानन्द के पास मथुरा में रहे और फिर दीक्षा प्राप्त करके अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए निकल पड़े।

### धर्म-प्रचार

स्वामी दयानन्द ने नवीन ढंग की शिक्षा कुछ भी प्राप्त नहीं की थी। उनकी शिक्षा और दीक्षा सब भारतीय परम्परा के अनुकूल थी। संस्कृत भाषा के वे प्रकांड पंडित थे। व्याकरण पर उनका अद्भुत अधिकार था। उन्होंने वेदों का सांगोपांग सूक्ष्म अध्ययन किया था। अखंड ब्रह्मचर्य के तेज से उनका मुखारविन्द चमका करता था। उनके विशाल, सुडौल और सुसंगठित स्वस्थ देह में अनिर्वचनीय प्रभाव था। उनके व्यक्तित्व में अद्भुत आकर्षण था। गुरु से विदा होकर स्वामी दयानन्द ने आगरा, ग्वालियर, जयपुर, पुष्कर, अजमेर और हरिद्वार आदि नगरों में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। वे कहते थे कि वेदों में मूर्ति पूजा का विधान कहीं नहीं है। जाति

पांति केवल मिथ्या जाल है। चार वर्ण गुण कर्मानुसार मानने चाहिये। स्त्रियों का स्थान पुरुषों के बराबर होना चाहिये और शिक्षा प्राचीन गुरुकुल प्रणाली के अनुसार होनी चाहिये। स्वामी दयानन्द के पांडित्य, व्यक्तित्व और वक्तृत्व का लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि इनके उपदेशों को सुनने के लिये हजारों की उपस्थिति हुआ करती थी और विरोधी पंडित इनके प्रभाव से तथा जनता के कोलाहल से दब जाया करते थे। स्वामी दयानन्द जहाँ जाते थे वहाँ उनका भव्य स्वागत होता था। नव शिक्षित लोग इनके विचारों से तत्काल सहमत हो जाते थे और इनका अभिनन्दन करते थे।

**आर्य समाज की स्थापना**

काशी से प्रस्थान करके स्वामी दयानन्द ने कई अन्य नगरों में अपने मन्तव्य का प्रचार किया। इलाहाबाद, मिर्जापुर, पटना, मुंगेर, भागलपुर और कई अन्य नगरों में उन्होंने उपदेश दिया। सर्वत्र हजारों लोगों ने मंत्रमुग्ध होकर उनके विद्वतापूर्ण भाषण सुने। उपदेश देते समय वे लोगों को ऐसे प्रतीत होते थे मानों वैदिक काल का कोई ऋषि पुनर्जन्म लेकर वेदों की व्याख्या कर रहा हो, और दलित तथा भ्रान्त भारत को अपने अतीत गौरव का स्मरण दिला रहा हो। भ्रमण करते हुए सन् १८७२ में स्वामी दयानन्द सरस्वती कलकत्ता पधारे। उनसे पहले ही उनके पांडित्य की कीर्ति और सदुपदेश का सौरभ कलकत्ता पहुँच चुका था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ने बड़े आदर पूर्वक महर्षि का स्वागत किया। उनकी धारा प्रवाह संस्कृत सुनकर वे दंग रह गये। मूर्ति पूजा और जाति प्रथा के विषयों में वे स्वामीजी के विचारों से पूर्ण सहमत हुए परन्तु उन्होंने यह बात स्वीकार नहीं की कि वेद सम्पूर्ण सत्य विद्याओं का भंडार हैं, और आत्मायें पुनर्जन्म धारण करती हैं। बाबू केशवचन्द्र सेन से विचार विमर्श करने के बाद स्वामीजी ने हिन्दी बोलना आरम्भ किया। इससे जनता के साथ स्वामी दयानन्द का सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया और उनके सिद्धान्तों का प्रचार और तीव्र वेग से होने लगा।

**आर्य समाज का प्रचार**

स्वामीजी के सिद्धान्तों की लोकप्रियता अब बड़े वेग से बढ़ने लगी। नगर-नगर में आर्य समाज स्थापित होने लगे। दस वर्ष के अन्दर उत्तर भारत के सम्पूर्ण नगरों में और कुछ कस्बों में आर्य समाजें स्थापित हो गई थीं, और आर्य सदस्यों की संख्या धड़ाधड़ बढ़ती जाती थी। आर्य समाज के प्रचारक और आर्य समाज के शिक्षित सदस्य "सत्यार्थ प्रकाश" में प्रतिपादित स्वामीजी के सिद्धान्तों का बड़े उत्साह, उमंग और साहस के साथ प्रचार करते थे। आर्य समाज का सन्देश केवल शिक्षित समाज तक ही नहीं किन्तु अशिक्षित लोगों में भी पहुँचने लग गया था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और देव समाज की बातें तो केवल शिक्षित लोग ही जानते थे और समझते थे,

परन्तु आर्य समाज ने अपने प्रचार का ऐसा लोकप्रिय ढंग ग्रहण किया और इसके उपदेशकों ने, भजनीकों ने और सदस्यों ने प्रचार के ऐसे साधनों का प्रयोग किया कि स्वामी दयानन्द का सन्देश घर-घर पहुंच गया।

**भारतीय जागरण में आर्य समाज का स्थान**

आर्य समाज के प्रचार से ईसाइयत और इस्लाम की बढ़ती हुई बाढ़ एक दम रुक गई। उसमें आर्य समाज ने बड़े कष्ट उठाये परन्तु उत्तर भारत में इसने हिन्दुओं को जागृत और प्रगतिशील बना दिया। आर्य समाज के जन्म के समय हिन्दू कोरा फुसफुसिया जीव था। उसके मेरु-दण्ड की हड्डी थी ही नहीं। चाहे कोई उसे गाली दे, उसकी हंसी उड़ाये, उसके देवताओं की भर्त्सना करे या उस धर्म पर कीचड़ उछाले जिसे वह सदियों से मानता आ रहा है, फिर भी इन सारे अपमानों के सामने वह दांत निपोर कर रह जाता था। लोगों को यह उचित शंका हो सकती थी कि यह आदमी भी है या नहीं, इसे आवेश भी चढ़ता है या नहीं अथवा यह गुस्से में आकर प्रति-पक्षी की ओर घूर भी सकता है या नहीं। किन्तु आर्य समाज के उदय के बाद अविचल उदासीनता की यह मनोवृत्ति विदा हो गई। हिन्दुओं का धर्म एक बार फिर जगमगा उठा है। आज का हिन्दू अपने धर्म की निन्दा सुनकर चुप नहीं रह सकता, जरूरत हुई तो धर्म-रक्षार्थ वह अपने प्राण भी दे सकता है।

## थियोसोफिकल सोसाइटी

**भारत में प्रवेश**

यह संस्था अमेरिका में कायम हुई थी। ब्लेवाटस्की एक रूसी महिला और कर्नल आलकाट एक अमेरिकन सज्जन इसके संस्थापक थे। ये दोनों प्रेत विद्या के अच्छे जानकार थे। फिर इनकी ब्रह्म विद्या की ओर रुचि उत्पन्न हुई। इनके विचार बड़े उदार और निर्मल थे। इनका विश्वास था कि सब धर्मों में सत्य का तत्व है। ये लोग मानते थे कि भारत, ईरान और चीन में धर्म और ज्ञान के ऐसे तत्व हैं जिनका यूरोप और अमेरिका में प्रचार करना चाहिये, जिससे बढ़ता हुआ भौतिकवाद कम हो।

**एनीबेसेंट का आगमन**

इंगलैण्ड में एनीबेसेंट नामक एक विदेशी महिला इस संस्था में दीक्षित हुई और छियालीस वर्ष की अवस्था में सन् १८९३ में वह भारत में आई। कर्नल आल-काट का १९०७ में देहान्त हो गया। उसके पश्चात् थियोसोफिकल सोसाइटी का नेतृत्व एनीबेसेंट ने अपने हाथ में ले लिया। इस महिला की हिन्दू धर्म पर उत्कट श्रद्धा थी। वह इसको सबसे प्राचीन और सब से श्रेष्ठ मानती थी। भारत में आते ही उसने साड़ी पहिनना शुरू कर दिया और अपना खान-पान भी ब्राह्मणों का सा बना लिया। उसने

कई हिन्दू तीर्थों की यात्रा की। काशी उनको बहुत पसन्द थी। यहां उनने सेन्ट्रल हिन्दू कालिज की स्थापना की। गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया और हिन्दू संस्कृति के विविध पक्षों पर ओजस्वी भाषण दिये।

### एनीबेसेंट की प्रतिभा और कार्य

एनीबेसेंट की वक्तृत्व शक्ति बड़ी ओजस्विनी और प्रभावशालिनी थी। उसकी भाषा बड़ी सुन्दर और सरस थी। उसका एक-एक शब्द श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करता था। मद्रास, बम्बई और काशी के उच्च शिक्षित हिन्दुओं में कितने ही थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य बन गये। एनीबेसेंट ने भारत के अनेक नगरों का भ्रमण किया और हिन्दू धर्म के प्रति आस्था तथा संस्कृति के प्रति अभिमान जागृत किया। उसका कहना था कि जिस जाति के पास उपनिषद्, गीता और दर्शन जैसे अमूल्य विचाररत्न हों उसको संसार के सामने सिर क्यों नीचा करना चाहिये। वह हिन्दू संस्कृति और धर्म को सर्वाङ्ग सुन्दर मानती थी। इसके प्रत्येक पक्ष को वह विज्ञान के अनुकूल समझती थी। वह मूर्ति पूजा, वर्ण व्यवस्था, प्रेत विद्या, तंत्र-मंत्र आदि किसी में कोई दोष नहीं समझती थी। इन सबका वह तर्क और न्याय से मंडन करती थी। वह वेद, उपनिषद् और गीता को ही नहीं, स्मृति, पुराण, धर्म-शास्त्र आदि को भी प्रामाणिक मानती थी और इनके द्वारा हिन्दू धर्म के सम्पूर्ण प्रचलित रूपों का समर्थन करती थी। जब वह अद्भुत तर्क और ओजस्विनी भाषा के साथ अपनी अपूर्व वक्तृत्व कला के द्वारा पुनर्जन्म, अवतार, योग, अनुष्ठान, बहु देवतावाद आदि का विवेचन करती थी तो लोग मुग्ध हो जाया करते थे। १९१४ में भाषण देते हुये उसने एक बार कहा था कि निरन्तर चालीस वर्ष के चिन्तन और मनन के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि हिन्दू धर्म से बढ़कर वैज्ञानिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक धर्म संसार में कोई दूसरा नहीं है।

### हिन्दुओं में आत्माभिमान जागृत किया

अँग्रेजी पढ़े हुये विद्वानों और कालेज के विद्यार्थियों पर एनीबेसेंट के प्रचार का बड़ा प्रभाव पड़ा। जब यूरोप के ईसाई प्रचारकों ने देखा कि उन्हीं के देश की निवासिनी एक ईसाई महिला हिन्दू धर्म का पक्ष ले रही है और उसके निन्दकों को मुँह तोड़ उत्तर दे रही है तो उनकी कट्टरता ठंडी होने लगी। नवशिक्षित लोगों ने अब अनुभव किया कि हिन्दू धर्म के अन्दर ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण किसी को लज्जित होना पड़े। सूक्ष्मता से विचार करने पर प्रकट होता है कि हिन्दुत्व के प्रत्येक अंग में अद्भुत रहस्य है। एनीबेसेंट के प्रचार से हिन्दुओं में अपूर्व जागृति हुई, अब वे समझने लगे कि ईसाइयों का प्रचार निर्मूल है। हिन्दू धर्म विज्ञान के प्रतिकूल नहीं है। उनको ईसाइयों से दबने की कोई आवश्यकता नहीं है। आर्य समाज ने जनता

के सामने हिन्दू धर्म का संशोधित रूप उपस्थित किया था। इसका सबसे अधिक जोर था मूर्ति पूजा के खंडन पर। पुराने संस्कारों में पले हुये हिन्दू मूर्ति पूजा अनावश्यक और असंगत समझ कर भी छोड़ना नहीं चाहते थे। एनीबेसेंट ने उनके परम्परागत संस्कारों की पुष्टि की। इसका शिक्षित हिन्दू समाज ने अभिनन्दन किया और डाक्टर एनीबेसेंट का ये लोग बड़ा आदर करने लगे। डाक्टर एनीबेसेंट और उसके साथियों ने हिन्दू धर्म के पक्ष में विपुल साहित्य तैयार किया, जिसको अंग्रेजी पढ़े लोगों ने पढ़ा। उसका किया हुआ गीता का अंग्रेजी अनुवाद बहुत ही प्रचलित हुआ और इसी प्रकार उपनिषदों का अनुवाद और तंत्र-विषयक ग्रन्थों का भी खूब प्रचार हुआ।

**एनीबेसेंट राजनीति में**

डाक्टर एनीबेसेंट ने भारतीय राजनैतिक आन्दोलन को भी बड़ा बल दिया। होमरूल लीग की वह प्रमुख नेत्री थी और एक बार कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित हुई थीं। उसके उग्र राजनैतिक विचारों के कारण सरकार ने उसको नजरबन्द भी किया था। एनीबेसेंट ने सदैव इस बात का प्रयास किया कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हो, समस्त भारतीय अपने को एक कौम समझें और भारत उन्नत देशों का समकक्ष बने। एनीबेसेंट के विचार तो उग्र थे परन्तु वह स्वभाव से नम्र थी और जन-आन्दोलन में शामिल नहीं हो सकती थी। इसके अतिरिक्त वह केवल अंग्रेजी ही बोलती थीं, अतः उसका जनता से सम्पर्क भी नहीं हो सकता था। उसकी आवाज केवल शिक्षित वर्ग तक ही पहुँच सकती थी परन्तु भारत के नव-जागरण में और पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृतियों के मिश्रण में एनीबेसेंट का बहुत बड़ा हाथ था। उसने शिक्षित समाज में धर्माभिमान और स्वाभिमान जागृत किया, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हिन्दू धर्म के समस्त पक्षों का विवेचन किया तथा भारतीय संस्कृति को सुन्दर और स्वस्थ सिद्ध करके ग्राह्य बनाया।

**स्वामी विवेकानंद का वेदान्त प्रचार**

स्वामी विवेकानंद स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। इन्होंने पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु इनकी विचार धारायें भारतीय थीं। इन पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस का बड़ा प्रभाव था। अतः उनसे दीक्षा लेकर इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। ये परम देश भक्त वेदान्ती साधू थे और अंग्रेजी के प्रभावोत्पादक वक्ता थे। इनका व्यक्तित्व बड़ा तेजस्वी था।

स्वामीजी की वेदान्त व्याख्या लोगों के हृदय को तत्काल स्पर्श करती थी। उनकी वर्णन शैली अनोखी थी। वे कहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व है, परन्तु उसके विकास करने की आवश्यकता है। धर्म अनुभूति से प्राप्त होता है। वह जीवन का तत्व है। ज्ञान और आनन्द की खोज करने के लिये मनुष्य को ऊँचा उठना चाहिये।

इन्द्रिय-परायणता मनुष्य को नीचे गिराती है और तत्व की तलाश में बाधक बनती है। स्वामीजी अमेरिका और यूरोप गये तो उनके उपदेश सुनकर वहाँ के लोग दंग रह गये। उनका सूक्ष्म विवेचन सबको मुग्ध कर देता था। अमेरिका और यूरोप की यात्रा के बाद स्वामीजी स्वदेश लौटे और यहाँ कई प्रान्तों में घूम कर लोगों में एक नई चेतना उत्पन्न की। उनका सारा समय प्रचार में व्यतीत होता था। वे इतने अधिक परिश्रमी थे कि विश्राम करना जानते ही नहीं थे। अत्यधिक परिश्रम करने के कारण उनका देहान्त केवल उनचास वर्ष की आयु में ही हो गया। इस अल्पकाल में उन्होंने धर्म की पुनः स्थापना के लिये प्रयास किया और भारत में ही नहीं वरन् समस्त संसार को यह संदेश दिया कि विज्ञान और व्यापार के जगत् में भी धर्म की आवश्यकता है। केवल बुद्धिवाद के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को दिव्य नहीं बना सकता। उस समय के हिन्दुओं पर यूरोप का बहुत प्रभाव था। अपने धर्म और संस्कृति के प्रति उनमें ग्लानि होती जाती थी, परन्तु जब उन्होंने देखा कि स्वामी विवेकानन्द के प्रचार से यूरोप के लोग भी हिन्दू धर्म की प्रशंसा कर रहे हैं तो उनका मोह और प्रमाद विच्छिन्न हुआ। स्वामीजी ने अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा भारत में आत्म गौरव की भावना जागृत की और अपनी संस्कृति, इतिहास, आध्यात्मिकता की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया।

**स्वामीजी की देन**

स्वामी विवेकानन्द के प्रचार से सारे संसार में भारत का मस्तक ऊँचा हो गया। पश्चिमी लोग इसके गौरव और ज्ञान को स्वीकार करने लगे। इसका भारतीयों पर भी उत्तम प्रभाव पड़ा। उन्होंने देखा कि अर्धशिक्षित और दुराग्रही पादरी चाहे उनके धर्म की निन्दा करते हों परन्तु पश्चिमी देश के बड़े-बड़े विद्वान् उसके महत्व को समझते हैं और उसकी विशालता का अनुभव करते हैं। भारत में आर्य समाज, ब्रह्म समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, प्रार्थना समाज, देव समाज आदि संस्थाओं के द्वारा जो नव जागरण का कार्य हो रहा था उसको स्वामी विवेकानन्द ने आगे ही नहीं बढ़ाया बल्कि यूरोप और अमेरिका के लोगों के द्वारा भी उसका अभिनन्दन करवाया। भारतीय ज्ञान का प्रथम सन्देश पाश्चात्य देशों को केवल स्वामी विवेकानन्द से ही मिला।

स्वामी विवेकानन्द कर्मठ संन्यासी थे, धुरन्धर वक्ता थे, वेदान्त के प्रकांड पंडित थे और सच्चरित्र से देदीप्यमान थे। उन्होंने भारत को कर्तव्य परायणता की शिक्षा दी और पाश्चात्य देशों को ज्ञान मार्ग का उपदेश किया। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के मिश्रण में स्वामी विवेकानन्द ने बड़ा योग दिया।

# उन्नीसवाँ अध्याय

## राष्ट्रीय संघर्ष और आन्दोलन (१८५७-१९४७)

सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध सारे देश में विशेषकर उत्तर भारत में घोर असन्तोष उमड़ पड़ा। उत्तर भारत के सैनिक, जमींदार और जनता ने परस्पर सहयोग करके इन लोगों को भारत भूमि से निकाल देने का प्रयत्न किया। रोष के आवेश में जगह-जगह कितने ही अंग्रेज स्त्रियां और बच्चे मारे गये।

इस देश-व्यापी संघर्ष के कई कारण थे। सैनिकों को यह शिकायत थी कि उनका वेतन बहुत अल्प है और ऊँचे पद उनको नहीं मिलते। उनमें और अंग्रेज सिपाहियों में बड़ा भेद माना जाता है। अवध के जमींदारों की जमींदारियाँ छीन ली गई थीं। सिपाहियों को अपने दाँतों से ऐसे कारतूसों को काटना पड़ता था जिनमें गौ और सूअर की चर्बी लगी रहती थी। बड़े-बड़े शासक खानदानों को अपमानपूर्वक नष्ट कर दिया गया था और उनकी घरेलू सम्पत्ति को ऐसे ढंग से बेचा जाता था जिससे उनकी प्रतिष्ठा में कमी आवे। ईसाई मत का प्रचार बड़े जोर से चल रहा था। इस कार्य में सरकार से कभी छिपे-छिपे और कभी प्रकट प्रोत्साहन दिया जाता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने धर्म की निन्दा सुन-सुन कर बड़े व्यथित और क्षुब्ध थे।

इसलिये जनता और सैनिकों का संघर्ष सारे उत्तर भारत में एकाएक उमड़ पड़ा। जहाँ-जहाँ अंग्रेजों की सेनायें थीं वहाँ-वहाँ हिन्दुस्तानी सैनिकों ने आज्ञा मानना बन्द कर दिया। जनता ने इसका साथ दिया, जमींदारों ने सक्रिय सहानुभूति दिखाई। मुगल बादशाह बहादुरशाह ने, अन्तिम पेशवा नाना साहब ने, बिहार के प्रसिद्ध वीर कंवरसेन ने और झाँसी की वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई ने इस संघर्ष का अपने अपने क्षेत्रों में नेतृत्व किया। रोहिलखंड, अवध, दिल्ली प्रान्त और बुन्देलखंड तथा मालवा में कुछ समय के लिए अंग्रेजों का शासन लुप्त हो गया। परन्तु अंग्रेजों की शक्ति विपुल और संगठित थी। इनके शस्त्रास्त्र अधिक प्रबल थे। इनकी नीति बड़ी निपुण थी। इसके अतिरिक्त गुरखों ने, सिक्खों ने और प्रायः हिन्दुस्तानी राजाओं ने और नवाबों ने अंग्रेजों का साथ दिया। इसलिए यह संघर्ष असफल रहा। सर्वत्र इसका दमन हो गया। इसमें अंग्रेजों ने बड़ी नृशंसता और बर्बरता की। बादशाह बहादुरशाह को देश निर्वासित किया। नाना साहब भागकर न जाने कहाँ जंगलों में नष्ट हो गये। झाँसी की रानी ने वीर गति प्राप्त की। कंवरसेन भी आहत होकर काम आये। नाना साहब के प्रसिद्ध सेना-

नायक तांत्या टोपे को एक व्यक्ति ने धोखा देकर गिरफ्तार करवा दिया और अंग्रेजों ने उसको फाँसी देकर मारा। लाखों हिन्दुस्तानी सैनिक क्रूरतापूर्वक या तो गोली से या फाँसी लगा कर मार डाले गये। हजारों निरपराध ग्रामीणों को गाँवों के बीच में फाँसियाँ दी गई। इस प्रकार जब शान्ति हो गई तो महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि हम ईसाई धर्म को सर्वोच्च समझते हैं परन्तु हमको किसी अन्य धर्म से कोई विरोध नहीं है। हम किसी राजा या नवाब के राज्य पर कोई अतिक्रमण करना नहीं चाहते। इसी के साथ भारतीय नरेशों को गोद लेने का अधिकार भी दे दिया गया जो पहले बन्द कर दिया गया था।

इस देश-व्यापी संघर्ष के बाद लगभग बीस वर्ष तक भारत में देशोद्धार के साधनों पर लोग विचार करते रहे। इसी अर्से में हिन्दी ने राष्ट्रीय रूप धारण किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय नाटक लिख कर देश की आर्थिक दुर्दशा का वर्णन किया और अंग्रेजों के अत्याचार की निन्दा की। साथ ही स्वामी दयानन्द ने यत्र-तत्र घूम कर भारत के विलीन वैभव और महत्व का दिग्दर्शन कराया। लोगों में नई स्फूर्ति फैलाई, राष्ट्रीय विचारों को जन्म दिया। फिर सन् १८७५ में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की जो सर्व प्रथम सार्वदेशिक संस्था थी। इसके साथ ही बंगाल, संयुक्त प्रान्त, बम्बई और मद्रास में कई राजनैतिक संस्थायें स्थापित हुई जो उस समय की स्थिति के अनुसार कानून के अन्दर और विनय पूर्वक अपने-अपने अधिकार माँगने लगीं।

**काँग्रेस का जन्म**

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में लार्ड रिपन वाइसराय बनकर भारतवर्ष में आये। उस समय धार्मिक जागृति और देशाभिमान के सर्वव्यापक उदय के कारण भारत में राजनैतिक आकांक्षायें जागृत हो चुकी थीं। ऋषि दयानन्द अंग्रेजी राज्य की निन्दा तो नहीं करते थे किन्तु यह बात उन्होंने अपने उपदेशों में कई बार दोहराई थी कि सुराज्य की अपेक्षा स्वराज्य अधिक श्रेयस्कर है। अंग्रेज सरकार के कई राजनीतिज्ञ यह विचार प्रकट कर चुके थे कि अंग्रेजी शासन का ध्येय भारत को स्वराज्य के योग्य बनाना है। लार्ड रिपन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के चांसलर की हैसियत से भाषण देते हुए विद्यार्थियों को सम्बोधित करके कहा कि "वह समय बहुत जल्द आने वाला है जब भारत का शासन लोकमत के अनुसार चलेगा और कोई सत्ता लोकमत का विरोध नहीं कर सकेगी। इसके प्रभाव को कोई रोक न सकेगा।" अपनी स्वाभाविक उदारता के कारण लार्ड रिपन ने स्वायत्त शासन का आरम्भ करना चाहा। इसी समय एलन आक्टेवियन ह्यूम नामक एक उच्च अंग्रेज राजकर्मचारी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों को एक खुला पत्र लिख कर प्रेरित किया कि एक ऐसी संस्था बनाई जाय जो भारतवर्ष की मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और राजनैतिक पुनर्जागृति के लिये प्रयत्न

करे। तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफरिन ने भी इससे सहमति प्रकट की और इंगलैंड के उदार सज्जनों ने इस प्रस्ताव का अभिनन्दन किया। अतः इंडियन नेशनल कांग्रेस नामक राजनैतिक संस्था संगठित की गई। सन् ८५ में इसका प्रथम अधिवेशन पूना में हुआ। भारत के विभिन्न नगरों से इसमें सत्तर प्रतिनिधि आये। कलकत्ते के प्रसिद्ध ईसाई बैरिस्टर उमेशचन्द्र बनर्जी (१८४४-१९०६) इसके अध्यक्ष हुए। आरम्भ में उच्च राजकर्मचारी भी कांग्रेस के अधिवेशन में उपस्थित हुआ करते थे, और अपने विचार प्रकट करते थे। सन् १८८६ में कांग्रेस सदस्यों को लार्ड डफरिन ने एक गार्डन पार्टी भी दी थी, और इसके अगले वर्ष जब मद्रास कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो वहाँ के गवर्नर कोनेमारा ने भी कांग्रेस सदस्यों का इसी प्रकार सत्कार किया था। सन् १८९० तक सरकार इस बात को स्वीकार करती रही कि कांग्रेस उदार विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। परन्तु ज्यों-ज्यों कांग्रेस अंग्रेजी शासन की टीका-टिप्पणी करने लगी त्यों-त्यों सरकार का रुख बदलने लगा।

### कांग्रेस में उग्र दल का उदय

वाइसराय की कौंसिल में १८६१ में तीन भारतीय लिए गए थे। लेकिन अंग्रेजों के बहुमत के आगे इनकी कुछ चलती नहीं थी। इनका नाम "जो हुक्म वाला" प्रसिद्ध हो गया। इन तीन भारतीयों में जयपुर के सुयोग्य महाराजा रामसिंह भी थे। सन् १८९२ में दूसरा कौंसिल एक्ट बना। जब इसकी चर्चा चलने लगी तो शिक्षित भरतीयों को आशा होने लगी कि जनता का प्रतिनिधित्व पर्याप्त मात्रा में बढ़ाया जावेगा। परन्तु इस विषय में सबको निराशा हुई और सबसे अधिक निराशा कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन (१८९२) में गोपाल कृष्ण गोखले ने प्रकट की। दादाभाई नोरोजी ने अध्यक्ष की हैसियत से कहा कि हमको शान्ति और धैर्य रखना चाहिये और निराशा कभी प्रकट नहीं करना चाहिये। कांग्रेस के साथ सहानुभूति रखने वाले अंग्रेज सज्जनों के भी यही विचार थे। यह स्मरण रखने की बात है कि १९०५ से पहिले चार अंग्रेज कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो चुके थे—डेविड यूल (१८८८), सर विलियम वेडरबर्न (१८८९), एल्फ्रेड वेब (१८९४) और सर हेनरी काटन (१९०४)। इनमें से सर विलियम वेडरबर्न सन् १९१० में इलाहाबाद के अधिवेशन के लिए पुनः अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे।

जब नई कौंसिल बनी तो बंगाल के प्रसिद्ध नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और बम्बई के विद्वान बेरिस्टर फिरोजशाह मेहता इसके सदस्य हुए। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने आई० सी० एस० परीक्षा पास करके १८७८ में बंगाली नामक समाचार पत्र जारी किया था और सन् १८८२ में रिपन कालेज की स्थापना की थी। फिरोजशाह मेहता बम्बई कारपोरेशन के अध्यक्ष थे और उसके बाद धारा सभा के सदस्य रहे। सन् १९०१ में

सरकार ने इनको के० सी० एस० आई० की उपाधि से सम्मानित किया। इन दोनों ने सभाओं में सरकार के कार्यों की तीव्र आलोचना और भारतीयों के अधिकारों की बड़ी हिमायत की। इसी समय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महाराष्ट्र में सरकार की निर्भीक आलोचना के कारण बड़े प्रसिद्ध होते जाते थे। सन् १८९६ में जब प्लेग का प्रकोप और भयंकर दुर्भिक्ष हुआ तो प्लेग की रोकथाम के लिये सरकार ने जिन साधनों से काम लिया, उसकी तिलक ने कठोर आलोचना की। इससे लोगों में सरकार के विरुद्ध घोर असन्तोष फैला और यत्र-तत्र बढ़ा-चढ़ा कर सरकार की निन्दा की जाने लगी। तब १८९८ में लार्ड कर्जन वाइसराय नियुक्त हुए। ये योग्य शासक थे परन्तु भारत की राजनैतिक उमंगों और भावनाओं को कुचलना चाहते थे। सन् १९०२ में लार्ड कर्जन ने एडवर्ड सप्तम की ताजपोशी का देहली दरबार किया। इससे पहले १८९९ और १९०१ में भयंकर दुर्भिक्ष हो चुके थे। इसलिए मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन (१९०३) में लाल मोहन घोष ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि दुर्भिक्ष पीड़ित भारतीय जनता को शानदार तमाशा दिखाया जा रहा है। इसी समय अफ्रीका में घोर युद्ध हुआ और चीन में भी युद्ध छिड़ा, जिसमें लगभग तीस हजार भारतीय सैनिक लड़ने के लिए भेजे गये। १९०३ में लार्ड कर्जन ईरान की खाड़ी देखने के लिये गये जहां उनका अत्यन्त भव्य स्वागत हुआ। भारतीय नेताओं ने जोरदार भाषा में आलोचना की और कहा कि यह गरीब जनता के धन का निर्मम दुरुपयोग है और असहाय देश का आर्थिक शोषण है। १९०४ में जापान ने रूस को हराया जिसका भारत पर यह प्रभाव पड़ा कि एशियाई देश भी योरोपीय देश को हरा सकता है। इस भावना से अधिक उत्साह और आशा के साथ अंग्रेज सरकार का विरोध होने लगा। इसी वर्ष लार्ड कर्जन ने बंग भंग की घोषणा की। इसके विरोध में लगभग पांच सौ सभायें हुई और लोगों ने तीव्र भाषा में विरोध

प्रण किया कि अंग्रेजी सामान नहीं खरीदा जावेगा। इस आन्दोलन का नेतृत्व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने किया था जिसके कारण वे बंगाल के ही नहीं सारे देश के माने हुए नेता बन गये। इसी वर्ष बनारस कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जहाँ गोखले ने अंग्रेजी सामान के बहिष्कार का तरीका अध्यक्ष की हैसियत से स्वीकार कर लिया। पंडित मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव पेश किया था और लाला लाजपतराय ने अनुमोदन करते हुए कहा था कि "अब हमको केवल भीख मांग कर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये और मुंह ताक ताक कर दया की आशा नहीं करना चाहिए। बहिष्कार का परिणाम यह होगा कि यदि उनको अपने देश के व्यापार की चिन्ता है तो हमको आजादी देनी होगी।"

**कांग्रेस के दो दल**

१९०६ में काँग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। बियांसी वर्ष के वयोवृद्ध दादाभाई नोरोजी अध्यक्ष थे। गोखले इंगलेंड से निराश होकर अभी लौटे थे। उन्होंने अध्यक्षीय भाषण पढ़ कर सुनाया था। लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल चाहते थे कि विदेशी माल का ही नहीं विदेशी सरकार का भी बहिष्कार किया जावे और बरां-बर की स्वदेशी सरकार स्थापित कर दी जावे। दादा-भाई नोरोजी की नीति-मत्ता और सहृदयता के कारण काँग्रेस में दंगा तो नहीं हुआ परन्तु यह स्पष्ट हो गया कि गोखले एक तरफ हैं और तिलक दूसरी तरफ। इसी समय बाबू अरविंद घोष भी राजनैतिक आन्दोलन में शामिल हुये। इन्होंने आई०सी०एस० परीक्षा पास की थी परन्तु सरकार ने यह कहकर इनको पद से वंचित कर दिया था कि इन्हें घोड़े पर चढ़ना नहीं आता। फिर ये बड़ौदा रियासत में दो तीन साल तक उच्च पद पर रहे और फिर बंगाल आकर इन्होंने बंग राष्ट्रीय शिक्षा समिति स्थापित की जिसका उद्देश्य था कि सरकारी शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार किया जावे और उनके स्थान पर राष्ट्रीय संस्थायें स्थापित की जावें। इसके पश्चात् अरविन्द बाबू ने वन्दे मातरम् नामक एक समाचार पत्र का सम्पादन किया। इस पत्र ने बंगाल में एक नया युग उत्पन्न कर दिया। वन्दे मातरम् ने मंत्र का कार्य किया। लोगों में रोष और जोश उमड़ पड़े। उसी समय वन्दे मातरम् भारत का राष्ट्रीय गान बन गया। यह गान बंकिमचन्द्र चटर्जी कृत आनन्दमठ नामक उपन्यास के ग्यारहवें अध्याय से लिया गया है। अब बंगाल और महाराष्ट्र दोनों में लोगों का नेतृत्व उग्र-नेताओं के हाथ में आ गया। बंगाल में अरविन्द घोष और विपिनचन्द्र पाल तथा महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक और जौन वेप्टिस्ता अग्रणी थे।

ऐसी परिस्थिति में सूरत में सन् १९०७ में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें १६०० प्रतिनिधि थे। नर्म दल के नेता रास बिहारी घोष का अध्यक्ष पद के लिये प्रस्ताव हुआ। जब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रस्ताव करने के लिए खड़े हुए तो बड़ा शोर हुआ

और गड़बड़ मच गई और सभा स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन रास बिहारी घोष का निर्वाचन हो गया परन्तु ज्यों ही कार्यवाही शुरू हुई बाल गंगाधर तिलक ने एक आपत्ति प्रस्तुत की। अध्यक्ष ने इसको नहीं माना। तब एक रोष पूर्ण भीड़ व्याख्यान मंच की ओर बढ़ी और बड़ी गड़बड़ मच गई। सभा तितर बितर हो गई और पुलिस ने पंडाल पर कब्जा कर लिया। तब नर्मदल वालों ने अपना संगठन करके एक विधान बनाया। इस कांग्रेस के प्रमुख नेता थे गोखले, लाजपतराय, मदन मोहन मालवीय, दीन शाह वाचा, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और मोतीलाल नेहरू।

### सर सैयद अहमद के कार्य

ऐसी परिस्थिति में सर सैयद अहमद ने मुसलमानों के नवोत्थान का कार्य अपने हाथ में लिया। ये उच्च कुलीन मुगल मुसलमान थे। सन् १८३७ में इन्होंने कम्पनी की सेवा स्वीकार की और १८५७ के गदर में अंग्रेजों का साथ दिया। सन् १८६९ में ये इंगलैंड गये और फिर राज सेवा छोड़कर सन् १८७६ से ये मुसलमानों की उन्नति के लिये कार्य करने लगे। इन्होंने अलीगढ़ में मोहमडन एंग्लो ऑरियन्टल कालेज स्थापित किया जिसने १९१० में विस्तृत होकर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का रूप धारण किया। यह संस्था शुरू से ही मुसलमानों की प्रगति का केन्द्र बन गई।

सर सैयद अहमद कांग्रेस के घोर विरोधी थे। सन् १८८७ में जब मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसी समय उन्होंने मुस्लिम शिक्षा सभा का अधिवेशन किया और दूसरे वर्ष कांग्रेस के विरोध में एक सभा स्थापित की। इसी वर्ष इनको के० सी० एस० आई० की उपाधि से सरकार ने सम्मानित किया। सर सैयद अहमद का प्रशंसनीय कार्य अलीगढ़ मुस्लिम कालेज के अतिरिक्त यह था कि उन्होंने राजा राम मोहन राय की भाँति मुसलमानों का ध्यान अंग्रेजी शिक्षा की ओर आकर्षित किया और अंग्रेजी के अनेक सद्ग्रन्थों के अनुवाद द्वारा उर्दू साहित्य को सम्पन्न किया।

### आतंकवाद का उदय

सूरत अधिवेशन के कुछ मास पश्चात् मुजफ्फरपुर में किसी ने बम के द्वारा दो अंग्रेज स्त्रियों की हत्या कर डाली। इसको बहाना बना कर सरकार ने राजनैतिक आन्दोलन का दमन शुरू किया। लोकमान्य तिलक को छः साल की कैद की सजा देकर मांडले भेजा। विपिनचन्द्र पाल को छः मास कारावास हुआ। अरविन्द घोष को एक साल तक हिरासत में रख कर रिहा किया। चिदम्बरन लाई को छः साल की कैद हुई और हसरत मोहानी को एक साल का कारावास मिला। इस आतंक के कारण जो बलवे हुए उनका जोर से दमन किया गया। फिर भी सन् १९०९ में किसी क्रान्तिवादी ने लार्ड मिन्टों पर बम फेंका परन्तु वह बच गया। नासिक में एक कलेक्टर को मार डाला। इंगलैंड में श्यामजी कृष्ण वर्मा के एक विद्यार्थी, मदनलाल धींगड़ा ने

सर डवल्यू कर्जन वायली को एक भरी सभा में गोली से मार दिया।

**भेद नीति का आरम्भ**

काँग्रेस में दो दल हो ही चुके थे। अब भारत में एक दल और उत्पन्न करने के लिये अंग्रेज लोग मुसलमानों की ओर झुके। इस समय मुसलमानों का नेतृत्व नवाव मुहस्सिन उलमुल्क (१८३७–१९०७) के हाथ में था। गदर के बाद से इन्होंने सर सैयद अहमद खाँ के साथ-साथ मुस्लिम नवोत्थान और शिक्षा प्रचार का कार्य किया था। इसी समय यह भी चर्चा चल रही थी कि अंग्रेज सरकार हिन्दुस्तान में कुछ अधिक राजनैतिक सुधार करने वाली है। तव नवाव ने वाइसराय के पास मुसलमानों का एक शिष्टमंडल भेजने का विचार किया। इसका उद्देश्य था सरकार के सामने मुसलमानों की मांगें पेश करना। इस मंडल का नेता हिज हाइनेस आगा खाँ को वनाया गया। आगा खाँ का जन्म सन् १८७५ में हुआ था। १८६८ में इन्होंने यूरोप की प्रथम यात्रा की थी। वम्बई में मुस्लिम शिक्षा सभा के ये अध्यक्ष रह चुके थे और धारा सभा के मेम्बर थे। इस शिष्ट मंडल ने प्रधान माँग यह रक्खी कि मुसलमानों का अलग प्रतिनिधित्व होना चाहिये और यह धारा सभा से लेकर जिला वोर्ड तक हो। मिन्टो ने यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया और उसी दिन हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का वीज वो दिया गया।

**मुस्लिम लीग की स्थापना**

इसके एक वर्ष बाद मुहस्सिन उल-मुल्क की प्रेरणा से आगा खाँ ने अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की। १९०६ में ढाका में, १९०७ में करांची में और १९०८ में अलीगढ़ में इस संस्था के अधिवेशन हुए। इस बात का प्रचार आरम्भ हुआ कि काँग्रेस हिन्दुओं का संगठन है और लीग मुसलमानों का। इसके बाद मिन्टो मार्ले सुधार जारी हुये परन्तु इससे भारतीयों को सन्तोष नहीं हुआ और सन् १९१२ में जव दिल्ली में लार्ड हार्डिज की सवारी निकल रही थी तो किसी ने उनकी ओर वम फेंका। वे वच तो गए परन्तु उनके वड़ी चोटें आई, जिसके कारण वे लम्वे अर्से तक वीमार रहे।

**हिन्दू मुसलमानों का मेल**

सन् १९१६ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार जातीय प्रतिनिधित्व हमेशा के लिये स्वीकार कर लिया गया। सन् १९१३ में एनीबेसेंट राजनैतिक क्षेत्र में आ चुकी थीं और लोकमान्य तिलक छः वर्ष की जेल भुगतकर १९१४ में स्वदेश लौट आये थे। इसी अर्से में फिरोजशाह मेहता और गोपाल कृष्ण गोखले का देहान्त हो चुका था। इन घटनाओं के कारण देश में उग्र राजनीति

बढ़ती जाती थी। सन् १९१४ में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ जिसने भारतीय राजनीति को और अधिक उग्र बना दिया। महायुद्ध के समय तुर्की ने जर्मनी का साथ दिया। इसलिये अंग्रेजों ने तुर्की को छिन्न-भिन्न करने का आयोजन किया और उसके मातहत अरब देशों को अपनी ओर फोड़ना शुरू किया। तुर्की का सुल्तान मुस्लिम जगत का खलीफा अर्थात् धार्मिक नेता माना जाता था, इसलिये हिन्दुस्तान के मुसलमान अँग्रेज सरकार का विरोध करने लगे। इससे ये लोग और भी हिन्दुओं के समीप आ गये और सन् १९२३ तक इन्होंने कांग्रेस का साथ दिया।

### नरम और गरम दल का मेल

सन् १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें दोनों दलों के नेता सम्मिलित हुये। इस समय एनीबेसेंट का बड़ा प्रभाव था और जब लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस में प्रवेश किया तो लोगों में हर्ष का पारावार उमड़ पड़ा था। दोनों दलों के मिल जाने से और मुसलमानों से समझौता हो जाने के कारण सरकार क्षुब्ध हो गई परन्तु युद्ध में सहायता प्राप्त करने के लिये और समय टालने के लिये वह भारतीयों को मीठे-मीठे आश्वासन देती रही। कांग्रेस के उक्त अधिवेशन में तिलक ने स्वराज्य प्राप्ति के विषय में एक प्रस्ताव पेश किया जिसका समस्त सदस्यों ने हृदय से अनुमोदन किया। इसी से मिलता-जुलता प्रस्ताव मुस्लिम लीग ने भी पास किया। इसी समय धारा-सभा के उन्नीस सदस्यों ने नये वाइसराय, लार्ड चेम्पसफोर्ड के सामने एक प्रस्ताव रक्खा। प्रस्ताव यह था कि लोगों की अभिलाषा केवल यह नहीं है कि शासन अच्छा हो, वे यह चाहते हैं कि शासन उनके प्रति उत्तरदायी हो और शासन का स्वरूप उनको स्वीकार हो। भारत यह चाहता है कि अँग्रेज सरकार का दृष्टिकोण इस आकांक्षा के अनुकूल हो। यदि युद्ध के उपरान्त भी भारत की वही स्थिति रही जो अब है तो उसको बड़ी निराशा होगी। इस समय समस्त साम्राज्य पर खतरा है और इसके निवारण के लिये समस्त साम्राज्य तन्मयता से और प्राणपण से चेष्टा कर रहा है। यदि इसका फल सबको बराबर प्राप्त नहीं हुआ तो परिणाम बड़ा अवांछनीय होगा। इस प्रस्ताव के तैयार करने वाले उन्नीस सदस्यों में श्रीनिवास शास्त्री, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रहीमतुल्ला तथा मोहम्मदअली जिन्ना भी थे।

### महात्मा गांधी और सत्याग्रह

वर्तमान भारत के निर्माण में महात्मा गांधी का भी बहुत बड़ा हाथ है। मोहनदास कर्मचन्द गांधी का जन्म सन् १८६९ में काठियावाड़ प्रान्त के पोरबन्दर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता पोरबन्दर के महाराज के दीवान थे। तेरह वर्ष की आयु में गांधीजी का विवाह हुआ। इसके पाँच वर्ष पश्चात् ये इंगलैंड गये। गांधी जी स्वभावतः सत्यशील और चरित्रवान थे। विलायत के विलासमय जीवन में भी ये

जलकमलवत् रहे। वहाँ चार वर्ष शिक्षा प्राप्त करने के बाद बेरिस्टर बने और उसी वर्ष वापिस भारत आ गये। १८९३ में ये दक्षिणी अफ्रीका गये और वहाँ १९१४ तक ठहरे। अफ्रीका में भारत से गये हुए लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए गांधीजी ने बड़ा प्रयास और संघर्ष किया। वहाँ उन्होंने सत्याग्रह का प्रथमबार उपयोग किया जिससे समस्त संसार में इनकी ख्याति हो गई। इनके संघर्ष के फलस्वरूप जनरल स्मट्स ने इनके साथ एक समझौता किया जो कार्यरूप में परिणत नहीं हुआ।

## उनका राजनैतिक नेतृत्व

प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१९१८) के बाद अँग्रेज सरकार ने भारतवर्ष में स्वराज्य का श्रीगणेश करने की घोषणा की। परन्तु इन नाममात्र के राजनैतिक सुधारों से भारत को सन्तोष नहीं हुआ। इसके साथ ही गवर्नमेण्ट ने रौलेट एक्ट नामक एक ऐसा कानून जारी किया जिसके अनुसार केवल सन्देह होने पर किसी भी व्यक्ति को कैद किया जा सकता था। इसके विरुद्ध भारत के प्रायः सभी नेताओं ने अपनी आवाज उठाई। लाला लाजपतराय ने कहा कि इस कानून के खिलाफ न अपील है, न दलील है और न वकील है। परन्तु गवर्नमेण्ट ने कुछ नहीं सुना। तब महात्मा गांधी ने देशव्यापी आन्दोलन का कार्य अपने हाथ में लिया। समस्त देश ने उनका नेतृत्व स्वीकार किया परन्तु जन-आन्दोलन का अत्यन्त उग्र रूप पंजाब में प्रकट हुआ। सरकार ने भी अपना दमन-चक्र चलाया और आन्दोलन पर कई प्रकार की पाबन्दियाँ लग गईं। फिर भी अमृतसर के जलियाँ वाला बाग में सरकार का विरोध करने के लिये एक विराट सभा हुई। घटना स्थल पर डायर नामक एक जनरल सैनिकों को साथ लेकर पहुँचा और उपस्थित जनता पर किसी भी प्रकार की चेतावनी दिये बिना ही उसने गोलियाँ चलवाना शुरू कर दिया जिसके फलस्वरूप ३७९ व्यक्तियों की मृत्यु हुई और १२०० व्यक्ति घायल हुये। भारतवर्ष में उग्र राजनैतिक आन्दोलन का यह प्रथम अध्याय था। उस दिन से ही महात्मा गांधी भारत के सर्वमान्य नेता बन गये और जन-आन्दोलन तीव्र वेग से अधिकाधिक प्रबल होता गया। इसमें कई उतार-चढ़ाव आये परन्तु दूसरे विश्व-युद्ध के पश्चात् सन् १९४७ के १४ अगस्त को अँग्रेजों ने अपनी सम्पूर्ण शासन-सत्ता भारतीयों के सुपुर्द करदी। ३० जनवरी १९४८ को गोडसे नामक एक व्यक्ति ने गांधीजी की हत्या की। उनके देहान्त पर भारत ने ही नहीं समस्त संसार ने शोक मनाया।

## वर्तमान भारत का निर्माण

वर्तमान भारत अनेक अंशों में महात्मा गांधी का बनाया हुआ है। राजनैतिक स्वतन्त्रता का श्रेय सर्वाधिक उन्हीं को है। देशाभिमान की जागृति उन्हीं के प्रयास से हुई है। रहन-सहन की सादगी को उन्होंने जन्म दिया है। यूरोप की चकाचौंध गांधीजी

ने मिटाई है। निर्भीकता और आत्माभिमान गांधीजी का मंत्र है। राजनैतिक आन्दोलन के दौरान में भारतीय स्त्रियों को समानता और स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। पर्दा तोड़ कर उन्होंने पुरुषों के साथ काम किया और हजारों महिलायें जेल में गईं। इन्हीं दिनों जाति-पाँति की भावना कम हुई और शिक्षित लोगों में स्पर्शास्पर्श प्रायः जाता रहा। गांधीजी ने गौ-रक्षा के लिये देशव्यापी आन्दोलन किया। अछूतों के उद्धार के लिए उन्होंने प्रशंसनीय प्रयत्न किया। उनके प्रयास से इनका आर्थिक और बौद्धिक स्तर ऊंचा हुआ और इनको राजनैतिक क्षेत्र में अनेक सुविधायें प्राप्त हुईं। गांधीजी की भगवत् भक्ति का भी शिक्षित समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी रामधुन भारतवर्ष की नई गायत्री बन गई और जिन लोगों ने उनकी प्रार्थना को सुनने के लिए उपस्थित हजारों और लाखों की प्रशान्त भीड़ देखी है उनकी आँखों के सामने से वे दृश्य अब भी ओझल नहीं होते। मोहनदास करमचन्द गांधी को स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने महात्मा कहना शुरू किया था जो सारे विश्व ने स्वीकार किया। गांधीजी परम धार्मिक महात्मा थे और वास्तव में भारत के राष्ट्रपिता थे।

# बीसवाँ अध्याय
## औद्योगिक विकास से पहिले आर्थिक संगठन

अठारहवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति हुई। मनुष्यों का काम मशीनों से होने लगा। तब एक वर्ग मजदूरों का और दूसरा पूंजीपतियों का बन गया। इस क्रान्ति के कारण अनेक समस्यायें खड़ी हो गईं और इनका प्रभाव सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों पर भी पड़ने लगा। परन्तु अठारहवीं शताब्दी से पहिले आर्थिक जीवन सर्वत्र सीधा और सरल था। न उस समय मजदूर और पूंजीपतियों में पारस्परिक संघर्ष था और न मशीनों द्वारा तैयार किये हुये पक्के माल को खपाने का प्रश्न।

कृषि जीवन—

भारतवर्ष अब भी कृषि प्रधान देश है परन्तु अब कल-कारखाने बहुत खुल चुके हैं और देश स्वतंत्र हुआ तब से विज्ञान द्वारा बड़े बड़े उद्योग संगठित किये जा रहे हैं। पहिले हमारा आर्थिक जीवन और ही प्रकार का था। अधिकांश लोग गाँवों में निवास करते थे और उनका प्रधान उद्योग कृषि-कार्य था। किसान को अपने काम के लिये लोहे, लकड़ी और चमड़े के सामान की और मिट्टी के बर्तनों की तथा बांस के टोपलों की आवश्यकता हुआ करती है। अतः गाँवों का आर्थिक तथा औद्योगिक जीवन इस प्रकार संगठित हो गया था कि ये आवश्यकतायें प्रायः गावों में ही पूरी हो जाया करती थीं। सदियों के अनुभव से और आवश्यकताओं के दबाव से प्रायः प्रत्येक गाँव का संगठन इसी प्रकार का बन गया था। कृषि कर्म में सर्वाधिक आवश्यकता लकड़ी के सामान की होती है। खेत को जोतने के लिये हल कुली की, कुए से पानी निकालने के वास्ते ढाणे की, खेतों में क्यारियां बनाने के वास्ते दंताली की, खलियान तैयार करने के वास्ते आंकड़ी और जेलों की तथा गाय बैलों को बांधने के वास्ते खूंटों की जरूरत पड़ती है। इसके अतिरिक्त फसल को खेतों से खलियान में लाने के लिये गाड़ियाँ और कुटी हुई फसल को बरसाने के वास्ते तिपाइयाँ और टोपले काम में लिये जाते हैं। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के वास्ते प्रत्येक गाँव में उसकी आबादी के अनुसार एक या दो बढ़ई (खाती) रहा करते थे। इनके काम के बदले में प्रत्येक किसान फसल के समय नियमानुसार बढ़ई को कुछ अन्न दिया करता था जिसके अनुसार उसका निर्वाह होता था। इसी प्रकार लोहार खेती के वास्ते हल के फल, दांते, चड़स के कुड़तिये, कुल्हाड़ी, खुरपे आदि बनाया करता था और उसका भी पोषण तथा निर्वाह खाती

की भाँति हुआ करता था। चमार रस्से, चड़स आदि बनाते थे। पशुओं का चमड़ा उनको मुफ्त में मिल जाता था, जिससे वे जूते तैयार करके बेचा करते थे। कुम्हार भी इसी प्रकार काम करके पोषण प्राप्त किया करता था। खेती के चलू काम के सिवाय खाती, लोहार आदि गाड़ी, बर्छी, तसला, वगैरा जो दूसरी चीजें बनाते थे, उनको मूल्य लेकर बेचा करते थे। इन लोगों के अतिरिक्त कोली, जुलाहे आदि भी बड़े बड़े गाँवों में बसे हुये थे। ये लोग गांव वालों के लिये कपड़ा बुनते थे। सूत गाँव की स्त्रियाँ कातती थीं एवं कपड़े की आवश्यकता भी प्रायः गाँव में ही पूरी हो जाया करती थी।

व्यापारिक जीवन

चालीस पचास गाँवों में एक कसबा होता ही था। यहाँ आठ दिन में एक बार हाट लगा करता था। नमक, गुड़, तेल, हल्दी, मिठाई, तम्बाखू, मामूली औषध, रंगदार और छपे हुये कपड़े, बच्चों के खिलौने आदि चीजें जो प्रायः गाँवों में नहीं मिला करती थीं वे इन हाटों में बिका करती थीं। इन कसबों में तो दूकानें होती ही थीं परन्तु आस-पास के मामूली दूकानदार भी यहाँ हाट के दिन अपनी चीजें बिक्री के लिये लाया करते थे। लोहे और पीतल के बर्तन, शस्त्र, बढ़िया कपड़े, चाँदी या सोने के जेवर या पीतल और कथीर के जेवर जो इन हाटों में नहीं मिलते थे बड़े कस्बों में खरीदे जाते थे। ये या तो वहीं बनते थे या दूकानदार इनको शहरों से खरीद कर लाया करते थे। कुछ दूकानदार गांवों में भी अपनी चीजें बेचने के लिये घूमा करते थे। उस समय अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी से पहिले बीस-पच्चीस हजार की आबादी का स्थान शहर या नगर माना जाता था। वहाँ प्रायः छींपे, रंगरेज, सकलीगर, खरादी, सुनार आदि अपना काम करते थे और बजाज, सर्राफ, पड़चूनी, अत्तार आदि दूकानदार होते थे। यहाँ जनपद की सब आवश्यकतायें पूरी हो जाती थीं। एवं नगर जनपद के व्यापार कला और दस्तकारी का केन्द्र था। प्रत्येक ग्राम और कस्बा तो सब दृष्टि से स्वाश्रित नहीं था परन्तु जनपद अवश्य स्वाश्रित था। गाँवों से कस्बों तक और कस्बों से राजधानी तक बैल गाड़ियों के लिये मार्ग थे। ये प्रायः कच्चे मार्ग थे जो वर्षा ऋतु में काम नहीं देते थे। वर्षा के दिनों में माल गधों या बैलों पर लाद कर भेजा जाता था। बैलों पर माल ले जाने वाले बनजारे कहलाते थे। एक बनजारे के पास बहुत से बैल हुआ करते थे। कुछ बनजारे तो लक्खी बनजारे कहलाते थे। एक बनजारे के पास लाख बैल तो नहीं होते थे परन्तु कितने ही हजार बैल तो हुआ ही करते थे प्रायः कई बनजारे अपने-अपने बैलों पर माल लादकर साथ-साथ चला करते थे। ऐसा बैलों का काफिला बालद कहलाता था। वर्षा ऋतु के अतिरिक्त दूसरी ऋतुओं में भी बालदों से माल आया जाया करता था। माल को सुरक्षित लाना या लेजाना

बनजारे का कर्त्तव्य था। माल की कीमत हुंडी से चुकाई जाती थी। इसी प्रकार ऊँटों की बालद से भी माल आया जाया करता था। यह तरीका अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक, अर्थात् रेलगाड़ी के जारी होने से पहले तक प्रचलित था। लार्ड वारेन हेस्टिग्ज ने जब मराठों के साथ युद्ध किया था तो उसकी सेना की रसद बनजारे ही ले गये थे।

कुछ कस्बे और नगर किसी-किसी दस्तकारी के लिये प्रसिद्ध थे। कहीं कपड़ों की छपाई और रंगाई का काम अच्छा होता था। कहीं लकड़ी के पलंग, तख्त, सन्दूक, अलमारी आदि अच्छी बनती थीं, कहीं तलवार, कटार, बर्छी, भाले विशेष तौर पर अच्छे बनाये जाते थे। कोई-कोई नगर ढाल, जीन, जूते, पड़तले आदि के लिए प्रसिद्ध थे, कहीं पीतल और लोहे तथा कांसी के बर्तन अच्छे बनते थे। इन चीजों को व्यापारी लोग गाड़ियों में लादकर पहुँचा दिया करते थे। कुछ नगर और कस्बे व्यापार की मंडियाँ अर्थात् केन्द्र थे। ये अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण केन्द्र बन गये थे। आस-पास का माल प्रायः यहाँ एकत्र हो जाता था और यहाँ से बैल-गाड़ियों और बालदों द्वारा दूर-दूर तक चला जाता था। एवं कोई स्थान अन्न की मंडी था, कोई कपड़े का केन्द्र था और कोई अन्य वस्तुओं का। कोई व्यापारी तो सब प्रकार का व्यापार किया करते थे, परन्तु कोई केवल एक ही प्रकार के माल का व्यापार किया करते थे। एक व्यापारी अन्न का व्यापार करता था तो दूसरा कपड़े का और तीसरा बर्तनों का या शस्त्रों का।

एक ही स्थान पर सब चीजें मिल जावें और विशेष दिनों में मिल जावें, इस हेतु निश्चित तिथियों पर वर्ष में एक बार उपयुक्त स्थानों पर मेले हुआ करते थे। यहाँ दूर-दूर के व्यापारी अपना-अपना माल लाया करते थे। इस प्रकार खूब क्रय-विक्रय हुआ करता था। व्यापार की उन्नति और अपने स्थान की प्रसिद्धि के लिए सम्बन्धित अधिकारी व्यापारियों को सब प्रकार की उचित सुविधाएँ दिया करते थे। बैल, घोड़े, ऊँट, भैंसे, गधे आदि पशुओं के विशेष मेले लगा करते थे। किसी मेले में केवल बैल, किसी में केवल घोड़े, ऊँट या भैंसे बिकते थे। किसी मेले में दो तीन प्रकार के पशु भी बेचे जाते थे। इसी प्रकार हाथियों का भी मेला लगा करता था।

**विदेशों से व्यापार**

औद्योगिक क्रान्ति से पहले भी भारत का विदेशी देशों के साथ व्यापार चलता था। इसके दो मार्ग थे—एक जल मार्ग और दूसरा स्थल मार्ग। जल मार्ग भृगुकच्छ (भड़ौंच) या पश्चिमी समुद्र तट के अन्य बन्दरगाहों से ईरान की खाड़ी के बन्दरगाह तक था। उस समय के जहाज छोटे-छोटे हुआ करते थे जो प्रायः समुद्र तट के पास-पास चला करते थे। ईरान की खाड़ी से माल स्थल मार्ग द्वारा रूम सागर के पूर्वी तटस्थ

वन्दरगाहों में पहुँच जाता था और फिर वहाँ से इटली के वन्दरगाहों में जहाजों द्वारा चला जाता था। फिर समस्त यूरोप के बाजारों में यह फैल जाया करता था। कुछ जहाज मस्कट (अरब) से सीधे भारत के पश्चिमी तट तक आ जाते थे। अरब के लोग बड़े अच्छे नाविक थे। ये भारत के किनारे-किनारे हिन्द एशिया, पूर्वी द्वीप समूह और चीन तक जा पहुँचते थे। पश्चिम में ये लोग स्पेन तक चले जाते थे। भारतीय लोग भी जहाज चलाते थे। ये भी पश्चिम में अरब तक और पूर्व में हिन्देशिया, जावा, वाली और कई अन्य स्थानों तक जहाज ले जाया करते थे। शिवाजी के समय तक भारत में अच्छे और निपुण नाविक थे। शिवाजी की नौसेना से तो यूरोपीय लोग भी डरा करते थे। मुगल वादशाहों के पास भी कुछ जहाज थे। इनके द्वारा भारतीय मुसलमान हजयात्रा किया करते थे। कुछ नाम मात्र का व्यापार भी हुआ करता था।

### प्राचीन काल में जहाज

प्राचीन काल में भी भारत में जहाज बनाये जाते थे। यूनानी लेखक एरियन ने लिखा है कि हिन्दुओं में शूद्र लोग जहाज बनाने, चलाने और खेने का काम करते थे। उसने यह भी लिखा है कि लाल सागर के मुहाने पर अरबों और यूनानियों के साथ-साथ हिन्दू भी बसे हुये थे। मालद्वीप, लंका, जावा, सुमात्रा और मलय द्वीप में हिन्दुओं की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं। ये लोग जहाजों के द्वारा बंगाल, उड़ीसा और मद्रास प्रान्त से वहाँ गये थे। जेद सेराकी ने लिखा है कि ईराक के वन्दरगाहों में हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में बसे हुये थे। इनमें अधिकांश लोग व्यापारी थे। उस समय हिन्दू व्यापार करने के लिए हेज्जाज और मिस्र तक जाया करते थे। अरब लोग इनको वातियाना (व्यापारी) कहा करते थे। ईराक, वहरीन, सूडान, मसूम्र, सईद वन्दर और काहिरों में कई सदियों से हिन्दू व्यापारी बसे हुए थे। ये लोग जहाजों द्वारा भारत में आया जाया करते थे।

### भारत-अरब व्यापार

व्यापार की दृष्टि से अरब लोग भारत को अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध देश मानते थे। ये लोग महाराज वलहार की राजधानी को स्वर्ण नगरी कहा करते थे। एक अरब यात्री ने लिखा है कि जावा द्वीप के महाराज की राजधानी में केवल सर्राफों की ही आठ सौ दूकानें थीं। भारत से माल ले जाने वाले अरबी जहाजों को अपने देश के तट पर पहुँचने पर लाखों रुपये का कर देना पड़ता था। एक बार एक ही व्यापारी ने छः लाख रुपये कर के रूप में दिये थे। इससे पता चलता है कि भारत-अरब व्यापार कितना विपुल, प्रचुर और लाभदायक था। व्यापारिक वस्तुओं में कस्तूरी सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु मानी जाती थी। एक बार केवल एक व्यापारी ने

एक लाख तोले कस्तूरी खरीदी थी। एक दूसरे व्यापारी ने साठ हजार रुपये की कस्तूरी बेची थी। अरब भारत व्यापार से चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ तक दक्षिण भारत में अपार सम्पत्ति थी। जब अलाउद्दीन खिलजी के सेनानायक मलिक काफूर ने दक्षिण को जीता तो उसको कारोमंडल के राजकोष से नब्बे हजार मन सोना और पाँच सौ मन मोती मिले थे। अरब का एक मन भारत के दो सेर के बराबर होता था। यह सब सम्पत्ति कस्तूरी, कपूर, अम्बर, अगर, पान, ढाके की मलमल, हाथी दांत, चन्दन, इलायची और त्रिफला, जायफल, भिलावा आदि औषधियों के व्यापार से आई थी। यूरोप के लोग काली मिर्च के बड़े शौकीन थे। यह अरब व्यापारियों के द्वारा यूरोप में पहुँचा करती थी। ढाके की मलमल पश्चिमी एशिया में और मिस्र आदि देशों में ही नहीं यूरोप के कई देशों में प्रचलित थी, यहाँ तक कि इंगलेंड में भी स्त्रियों को इसका बड़ा शौक था। इससे इंगलेंड का बहुत सा रुपया बाहर जाया करता था। यह देखकर उस देश में नियम बनाये गये थे कि स्त्रियाँ इस कपड़े का व्यवहार न करें और व्यापारी इसको नहीं मंगवायें। इससे प्रकट होता है कि मध्य-कालीन संसार में भी आयात और निर्यात के नियम बनाये जाते थे।

### व्यापार विस्तार

व्यापार का स्थल मार्ग खैबर की घाटी में होकर काबुल से केस्पियन सागर के तट तक पहुँचता था। भारत का व्यापारिक माल वहाँ पहुँचने पर समस्त यूरोप में फैल जाया करता था। यह मार्ग प्रायः सुरक्षित नहीं था। जब तुर्क लोगों की शक्ति बढ़ी तो उन्होंने व्यापार अव्यस्थित कर दिया था। यहाँ ही नहीं अरब, मिस्र और लाल सागर में भी उत्पात फैल गया था। इससे पहिले इटली के बन्दरगाह भारत और यूरोप के व्यापार के प्रधान केन्द्र थे। कई शताब्दियों तक इनकी यह समृद्धि बनी रही। फिर तुर्कों की विजय के कारण व्यापार मार्ग बदल गया। जब भृगुकच्छ और लाल सागर का तथा खैबर और केस्पियन सागर का मार्ग बन्द हो गया तो यूरोप के देशों को चिन्ता हुई कि भारत के तट पर किस प्रकार पहुँचा जावे। उस समय पुर्तगाल का शासक बड़ा ही उन्नतिशील था। उसकी आर्थिक और सैनिक सहायता से वासकोडिगामा "केप आफ गुड होप" का चक्कर लगाकर भारत के पश्चिमी तट पर पहुँचा और कोलम्बस अमेरिका के निकट एक टापू में। तब भारत और अमेरिका का सीधा सम्बन्ध यूरोप के महाद्वीप से हो गया और विश्व-वाणिज्य का आरम्भ हो गया। उसके बाद महासागरों पर जहाज चलने लगे और एक महाद्वीप का माल दूसरे महाद्वीप को जाने लगा। इस व्यापार में कई शताब्दियों तक यूरोप सबसे आगे रहा और फिर अमेरिका भी वाणिज्य क्षेत्र में आ गया। इन दोनों ने शेष संसार को अपने पक्के माल से लाद दिया और उस पर खूब लाभ उठाया। एशिया और अफ्रीका

से इनके यहाँ कच्चा माल जाता था जिसका मूल्य केवल नाम मात्र को मिला करता था।

## संघ और श्रेणियाँ

प्राचीन काल में प्रायः प्रत्येक वस्तु के व्यापारी अपना अलग संगठन बना लिया करते थे जिसको संघ या श्रेणी कहा जाता था। श्रेणी बैल या ऊँटों की बालदों या गाड़ियों द्वारा अपना माल विभिन्न स्थानों को भेजा करती थी। मार्ग में इसकी रक्षा का प्रबन्ध करती थी। यह भी देखती थी कि माल अच्छा हो जिससे श्रेणी की साख न बिगड़े। खाती, लोहार, कोली और बर्तन बनाने वालों की श्रेणियाँ लड़कों को काम भी सिखाती थीं। श्रेणियों में लोगों के रुपये जमा रहा करते थे जिन पर ब्याज दिया जाता था। अपने माल की कीमत वसूल होने पर श्रेणी जिन जिन का माल होता था उनको मूल्य बांट दिया करती थी। व्यापारियों के इसी भाँति के संगठन यूरोप में भी होते थे। वहाँ ये "गिल्ड" कहलाते थे। औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व क्या एशिया, क्या यूरोप सर्वत्र व्यापार का संगठन और जनता का आर्थिक जीवन मूलतः लगभग एक जैसा ही था। उस समय सारा ही संसार प्रायः कृषि-प्रधान था। ग्राम संगठन विश्व भर में एकसा था। आर्थिक तथा व्यापारिक जीवन में भी विशेष भेद नहीं था। जलवायु के भेद के कारण रहन-सहन अवश्य जुदा था। जब गहरे सागरों पर जहाज चलने लगे तो व्यापार और अधिक संगठित हो गया। इस संगठन में यूरोप अग्रणी रहा। वहाँ व्यापारियों ने बड़े-बड़े संघ या कम्पनियाँ बना लीं। जो लोग व्यापारी नहीं थे वे भी इन कम्पनियों में अपने रुपये लगाकर उसके अनुसार हिस्सेदार बन गये। इस प्रकार बड़ी-बड़ी पूंजियों के साथ ये कम्पनियाँ एशिया और अफ्रीका के साथ व्यापार करने लगीं। ये कम्पनियाँ अपनी-अपनी कोठियाँ बनाकर भारत, चीन, पूर्वी द्वीप समूह और अन्यतर अपने व्यापार को उन्नत और संगठित करने लगीं, अपने माल की रक्षा स्वयं अपने ही सैनिकों द्वारा करने लगीं और फिर कोठियों के आस-पास की भूमि पर अपना अधिकार जमा कर अपना प्रभाव फैलाने लगीं। कोठियों के पास नगर बस गये। वहाँ फिरंगियों ने अपनी पुलिस, अपनी सेना और अपने ही न्यायालय कायम कर दिये, अपने ही स्कूल और कॉलेज स्थापित कर दिये। इन्हीं की म्यूनिसिपल कमेटियाँ कायम हो गईं एवं धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा कर इन लोगों ने अपने राज्य भी कायम कर लिये। संगठित व्यापार के द्वारा वणिक लोग शासक हो गये।

औद्योगिक क्रान्ति सर्व प्रथम इंगलैंड में हुई और तत्पश्चात् यूरोप महाद्वीप में। इसके बल से विश्व का व्यापार अपने हाथ में लेकर इंगलैंड महा-सत्तावान् देश बन गया। एक समय यह इतना सत्तावान हो गया था कि इसका साम्राज्य विश्व

के प्रत्येक भाग में था। इसी प्रकार यूरोप के अन्य देश भी शक्तिशाली होकर संसार के पथ-प्रदर्शक बन गये। कारण यह था कि ये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मशीनों का उपयोग करने लगे। व्यापार के क्षेत्र में मशीनों से जल्दी-जल्दी माल तैयार करने लगे। युद्ध-क्षेत्र में मशीनों से विजय प्राप्त करने लगे। कृषि-क्षेत्र में अधिक उत्पत्ति होने लगी। शिक्षा के क्षेत्र में छपी हुई सस्ती पुस्तकें मिलने लगीं। इस प्रकार एशिया और अफ्रीका इनके व्यापार संगठन, शक्ति और संस्कृति से दब गया।

---

# इक्कीसवाँ अध्याय

## प्रधान राजनैतिक विचार

### एकराट् तन्त्र

लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक प्रायः समस्त संसार में राजाओं के राज्य थे। आदि काल से यह माना जाता था कि राजा के बिना राज्य का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। राजा प्रायः वंशानुगत होते थे परन्तु कभी-कभी जनता भी उनका निर्वाचन करती थी। सब देशों में अनेक राजा बड़े दयालु, प्रजापालक और बुद्धिमान हुये हैं। भारत में महाराज अशोक बड़े वीर, दयालु, धार्मिक और प्रजावत्सल थे। परन्तु कई राजा अयोग्य और प्रजापीड़क भी हुये हैं। भारत में प्राचीन काल में यह माना जाता था कि राजा देवों के अंशों से बना हुआ है। उसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी का निवास है और क्रोध में मृत्यु का। यूरोप, चीन और जापान में राजा सर्वोपरि माना जाता था और उसका बड़ा आदर होता था। इंगलैंड का बादशाह जेम्स प्रथम तो स्पष्ट कहता था कि राजा ईश्वर ने बनाया है और उसको दैवी अधिकार है। उसको शासन तो न्यायपूर्वक ही करना चाहिये परन्तु वह अपने काम के लिये प्रजा के प्रति उत्तरदायी नहीं है, केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। ये ही विचार उसके उत्तराधिकारियों के थे। यूरोपीय देशों के कई शासकों के भी ऐसे ही विचार थे। इसलिये राजा प्रजा में बड़े संघर्ष हुये थे और अन्त में विजय सर्वत्र प्रजा की हुई थी। भारत के राजा सिद्धान्ततः तो अनियंत्रित थे परन्तु वस्तुतः उन पर कई नियंत्रण थे। वे प्राचीन और ऋषिकृत नियमों के अनुसार शासन करते थे, प्रजा का पालन और रक्षण उनका परम कर्त्तव्य था, वे षडांश से अधिक भूमि कर नहीं लेते थे। अन्य कर भी स्मृतियों के अनुसार लगाये जाते थे। वे अपने मंत्रियों की सम्मति लेकर राजकाज करते थे और प्राचीन रूढ़ियों का उल्लंघन नहीं किया करते थे। परन्तु कितने ही राजा स्वेच्छाचारी और शासन मर्यादाओं को तथा परम्पराओं को भंग करने वाले भी हुये हैं। मुग़ल बादशाहों में अकबर धर्मगुरु बन गया था। लोग उसको जगद्गुरु कहा करते थे। उसने एक नया धर्म भी चलाया था जो दीन इलाही कहलाता था। चीन के मंचू बादशाह भी सर्व-सत्ताधारी और स्वेच्छाचारी थे। एकराट्तन्त्र में गुण थे और दोष भी। अब यह तन्त्र प्रायः नष्ट हो गया है। कहीं-कहीं कुछ नरेश रह गये हैं। इनकी भी सत्ता संकुचित और नियंत्रित हो गई है। केवल सम्मान और स्नेह शेष है। इनमें

सबसे अधिक उल्लेख के योग्य इंगलैंड के नरेश हैं। इस समय वहाँ महारानी एलिजावेथ का राज्य माना जाता है।

### जनतन्त्र

जनतन्त्र भी अति प्राचीन प्रणाली है परन्तु इसका विकास सर्वत्र नहीं हुआ था। ईसा से लगभग ७०० वर्ष पूर्व यूनान में कई जनतन्त्र स्थापित होने लग गये थे। यहाँ पहिले एकराट्तन्त्र था। फिर सामन्ततंत्र हुआ, तत्पश्चात् तानाशाही चली और उसके बाद जनतन्त्र स्थापित होने लगे। भौगोलिक कारणों से यूनान देश विभिन्न नगरों में विभक्त था। प्रत्येक नगर पृथक् राज्य माना जाता था और वहाँ जनतन्त्र प्रणाली थी। प्रत्येक नगर राज्य की जनसंख्या केवल कुछ हजार थी। इन नगर राज्यों में सबसे बड़ा एथन्स राज्य था जिसकी जनसंख्या भी दस हजार से बहुत कम थी। इनमें आधे से कुछ अधिक तो विदेशी माने जाते थे और असली यूनानियों में भी सबको मताधिकार नहीं था। एवं दो तीन हजार लोग मत दे सकते थे। ये लोग अपने प्रतिनिधि निर्वाचित नहीं किया करते थे और न इसकी आवश्यकता थी। जब कोई प्रश्न या समस्या उपस्थित होती थी तो सब मतदाता नागरिक स्थान विशेष पर एकत्र होकर निश्चय कर लिया करते थे। एवं यह जनतन्त्र प्रणाली वर्तमान जनतन्त्र से बहुत भिन्न थी। भारतवर्ष में भी बुद्ध के समय अर्थात् ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व अनेक जनतन्त्र राज्य थे। यह पता नहीं चलता कि इनमें प्रधान का निर्वाचन किस प्रकार और कितने समय के लिये हुआ करता था। परन्तु प्रधान निर्वाचन से ही होता था और वह राजा कहलाता था। ये जनतन्त्र राज्य छोटे-छोटे थे। प्रत्येक राज्य में एक सन्थागार बना हुआ था। इसमें लोग एकत्र होकर शासन के प्रश्नों पर विचार किया करते थे और निश्चय बहुमत द्वारा होता था। यह ज्ञात नहीं है कि प्रतिनिधि किस प्रकार निर्वाचित किये जाते थे। ऐसे छोटे छोटे जनतन्त्र वर्तमान उत्तर प्रदेश के उत्तर में स्थित थे। बुद्ध के पिता एक जनतन्त्र के निर्वाचित राजा थे।

### वर्तमान जनतन्त्र

उपरोक्त भारतीय और यूनानी जनतन्त्र कुछ काल के पश्चात् विलीन हो गये। फिर अठारहवीं शताब्दी में अमेरिका में जनतन्त्र राज्य स्थापित हुआ। इससे पूर्व वहाँ इंगलेंड का राज्य था। परन्तु अमेरिका के लोगों को यह सहन नहीं होता था कि इंगलेंड उन पर भारी कर लगावे। इसलिये वे युद्ध करके स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने जनतन्त्र स्थापित कर लिया। उन्होंने मिलकर अपना विधान बना लिया और उसके अनुसार शासन होने लगा। अमेरिका इतना बड़ा देश है और उस समय भी वहाँ की जनसंख्या इतनी अधिक थी कि यूनान के नगर राज्यों का

सा जनतंत्र वहाँ नहीं चल सकता था। अतः वहाँ जनता ने विधान के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों से अपने प्रतिनिधि चुने और इनके द्वारा जनतन्त्र शासन चलने लगा। इसके पश्चात् फ्रान्स में राज्य क्रान्ति हुई और कुछ काल तक संघर्ष के उतार चढ़ाव होने के बाद वहाँ भी जनतंत्र स्थापित हो गया। गत सौ वर्ष में यह प्रणाली खूब फैली और इस समय यही प्रायः सर्वत्र प्रचलित है।

अमेरिका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहीम लिंकन ने कहा था कि जनतन्त्र जनता का राज्य है, यह जनता द्वारा होता है और जनता के हित में होता है। राष्ट्रपति विलसन ने प्रथम विश्व-युद्ध के समय घोषणा की थी कि इस युद्ध का उद्देश्य यह है कि संसार में जनतंत्र के लिये कोई खतरा न रहे। विश्वयुद्ध की समाप्ति पर लगभग समस्त संसार में जनतंत्र तो समाप्त हो गया परन्तु इससे सन्तोष किसी को नहीं हुआ। पहिले तो जनतंत्र ऊँचा होता गया और कुछ समय तक संसार ने इसका बड़े उत्साह से अभिनन्दन किया परन्तु फिर लोग अनुभव करने लगे कि इसमें संशोधन करने की आवश्यकता है। इस समय सर्वत्र यही मांग है।

वर्तमान जनतन्त्र के तीन मुख्य अंग हैं—प्रतिनिधियों का निर्वाचन, मंत्री परिषद् और बहुमत से निश्चय। इन तीनों में राजनीति दल का हाथ होता है। जनतंत्र में ऐसे कई दल बन जाया करते हैं जो धन, जन और युक्ति से अपने पक्ष में प्रचार करते हैं और जनतन्त्र के तीनों अंगों का निर्माण अपनी इच्छानुसार करके देश में अपने वर्ग का शासन स्थापित कर देते हैं। एवं जनतन्त्र के स्थान पर दलतन्त्र स्थापित हो जाता है।

### तानाशाहीतन्त्र

जनतन्त्र विधि से जब एक व्यक्ति मंत्री परिषद् का अध्यक्ष बन जाता है तो सम्पूर्ण शक्ति शनैः-शनैः उसके हाथ में केन्द्रित होने लगती है और वह मनमानी करने लग जाता है और उसका दल उसके प्रभाव से दब जाता है। कभी-कभी वह सैनिक बल का उपयोग करके सब सत्ता अपने हाथ में लेकर एक प्रकार का एक राट् बन जाता है। भेद केवल इतना ही रहता है कि एक राट् तो वंशानुगत भी होता है परन्तु तानाशाह निरंकुश शक्ति का केवल उस समय तक ही उपयोग कर सकता है जब तक उसको अपने दल का या सैन्य बल का सहारा मिलता रहे। कहीं-कही देश का सेना नायक भी तानाशाह बन जाता है परन्तु उसकी शक्ति भी चिरस्थायी नहीं होती।

### सर्वतन्त्र

तानाशाह सारी शक्ति को अपने हाथ में लेकर शासन, व्यापार, अर्थ आदि सब पर अपनी सत्ता फैला देता है। एवं देश का व्यापार, ब्याज की दर, उद्योग-धन्धे,

आयात, निर्यात, मुद्रा और बैंक आदि सब सरकार के अधीन हो जाते हैं। इतना ही नहीं विवाह, सन्तान संख्या, परिवार संगठन आदि में भी सरकार हस्तक्षेप करने लगती है। प्रेस, व्याख्यान, पुस्तक प्रकाशन आदि पर सरकार का नियंत्रण होने लगता है। ऐसी सरकार को सर्वतन्त्र या Totalitarian सरकार कहा जाता है और इस सिद्धान्त को सर्वतन्त्रवाद या Totalitarianism कहते हैं।

साम्यवाद (Soialism)

उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी में कार्ल मार्क्स (१८१८-८४) नामक एक चिन्तक हुआ जिसने समाज और सरकार के विषय में अभूतपूर्व विचार प्रकट किये। उसका कहना था कि रेल एंजिन और औद्योगिक क्रान्ति के कारण समय बहुत बदल गया है और समाज के दो भाग होते जाते हैं—पूँजीपति और मजदूर। इन दोनों वर्गों में संघर्ष है जो सदा बढ़ता जावेगा और अन्त में मजदूरों की विजय होगी और उन्हीं का राज्य होगा। कार्ल मार्क्स के ये विचार जर्मन शासकों को अच्छे नहीं लगे। इसलिये उसको देश-निर्वासित कर दिया गया। उसका शेष जीवन इंगलेंड में कटा और वहीं उसका देहान्त हुआ। उसका मन्तव्य था कि पूँजीपतियों और मजदूरों के बढ़ते हुये संघर्ष का परिणाम यह होगा कि पूँजी मजदूरों के हाथ में आ जावेगी। फिर मजदूरों की सरकार बनेगी और वह सरकार देश की समस्त सम्पत्ति की मालिक बनेगी। एवं भूमि, खानें, मकान, कारखाने, सब सरकार की सम्पत्ति माने जावेंगे और मजदूरों को सरकार से वेतन मिलेगा। अपने निर्वाह के वास्ते प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना पड़ेगा। ऐसी सरकार में कोई भी व्यक्ति सम्पत्ति का स्वामी नहीं माना जावेगा। सब लोग मेहनत करके खावेंगे। प्रथम विश्व-युद्ध से पहले इन सिद्धान्तों का केवल प्रचार था और मजदूर लोग अपनी स्थिति को सुधारने के वास्ते आन्दोलन तथा उत्पात किया करते थे। जब लेनिन ने रूस में साम्यवादी बोलशेविक सरकार स्थापित की तब प्रथम बार साम्यवादी राजनैतिक तन्त्र साकार रूप में संसार के सामने आया। उसके बाद यह सर्वत्र फैल गया। कुछ रूपान्तर होकर यह स्पेन, जर्मनी, इटली आदि देशों में भी फैल गया।

कम्यूनिज्म (Communism)

साम्यवाद और कम्यूनिज्म में कोई विशेष भेद नहीं हैं। कम्यूनिज्म साम्यवाद का उग्र रूप है। साम्यवाद के अनुसार क्रान्ति धीरे-धीरे विकसित होनी चाहिये। कम्यूनिज्म का सिद्धान्त है कि क्रान्ति शीघ्र होनी चाहिये। इसके लिये उत्पात या विप्लव हो या रक्तपात हो तो कोई बात नहीं है। क्योंकि यदि क्रान्ति धीरे-धीरे हुई तो इसमें समय लगेगा और पूंजीपति अपने स्वार्थों की हानि देखकर इसको नहीं होने देंगे। इस समय रूस, चीन और रूस के समीपस्थ देशों में कम्यूनिज्म है। वहाँ की

सरकारें इसी सिद्धान्त पर चलती हैं। कम्यूनिज्म में किसी नागरिक या व्यक्ति को कोई स्वतन्त्रता नहीं है। उसका कर्तव्य केवल मेहनत द्वारा अपना निर्वाह करना है। समस्त शक्ति सरकार के हाथ में केन्द्रित रहती है और वही सब प्रकार की सम्पत्ति की मालिक मानी जाती है।

### फासीज्म और नाजिज्म (Fascism and Nazism)

प्रथम और द्वितीय युद्ध के सन्धिकाल में इटली में फासिज्म और जर्मनी में नाजिज्म का प्रभुत्व था। इन दोनों प्रणालियों में नाम मात्र का भेद था। दोनों वास्तव में एक ही थे। इनमें साम्यवाद के मुख्य तत्व थे परन्तु अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ये शस्त्र प्रयोग खूब खुलकर किया करते थे। स्वतन्त्रता किसी को नहीं थी। सभायें केवल इसलिये की जाती थीं कि हिटलर और मुसोलिनी का अनुमोदन किया जावे। इनका प्रचार इतना प्रबल था कि कोई स्वतन्त्र रूप में विचार नहीं कर सकता था। दोनों ही जनमत की परवाह नहीं करते थे लेकिन जनमत को अपने पक्ष में रखने के वास्ते अनेक साधनों से काम लिया करते थे। विरोधियों को नष्ट करने में कभी आगा-पीछा नहीं किया करते थे। दोनों ने ही ऐसी पुलिस का संगठन किया था जो गुप्त विरोधियों का भी पता लगा कर उनका उन्मूलन कर दिया करती थी। फासिज्म और नाजिज्म का मूल सिद्धान्त यह था कि मुसोलिनी और हिटलर जो चाहे करे और कोई उनका विरोध न करे। दोनों ने भूमि, व्यवसाय, कारखानों और जनजीवन पर पूरा अधिकार कर रक्खा था।

### व्यक्तितन्त्र

इस सिद्धान्त को मानने वाले कहते हैं कि शासन व्यक्ति के लिये है। व्यक्ति का हित मुख्य होना चाहिये। इसी उद्देश्य से शासन का संचालन होना चाहिये। शासन व्यक्ति के विकास, सुख, व्यवसाय और उन्नति में कोई बाधा न डाले बल्कि उसमें सहायक हो। किसी की स्वतंत्रता में किसी प्रकार की रोक न हो। इस सिद्धान्त के अनुयायी चाहते हैं कि जनतन्त्र का उद्देश्य यही होना चाहिये। तानाशाही, साम्यवाद और कम्यूनिज्म इसके विपरीत हैं। ये चाहते हैं कि राष्ट्र सर्वोपरि है, राष्ट्र के हित के लिये व्यक्तियों का बलिदान होता हो तो कोई हानि नहीं है क्योंकि यदि राष्ट्र ही नहीं होगा तो व्यक्ति का हित साधन कौन करेगा। जनतन्त्रवादी कहता है कि शासन जनता का है और जनता के लिये है इसलिए व्यक्ति के महत्व को मानना चाहिये। परन्तु यह केवल सैद्धान्तिक बात है। जनतन्त्र में तानाशाही पूरी नहीं तो कुछ तो आ ही जाती है। जनतन्त्र में एक दल का राज्य स्थापित हो जाता है। लोगों पर मनमाने कर लाद दिये जाते हैं। शासक दल का हित शासन का मुख्य उद्देश्य हो जाता है। व्यक्ति का महत्व कम हो जाता है और दल का महत्व बढ़ जाता है। जो

लोग दल में सम्मिलित नहीं हैं उनका महत्व नाममात्र का रह जाता है। अतः शुद्ध व्यक्तितन्त्रवाद किसी भी वर्तमान राजतन्त्र में नहीं है और न हो सकता है। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से शुद्ध जनतन्त्र वही है जो व्यक्तितन्त्रवाद को व्यवहारिक रूप में स्वीकार करता हो।

अराजकतन्त्र

यह ऐसा राजनैतिक सम्प्रदाय है जो किसी भी प्रकार के शासन नियंत्रण को नहीं मानता। अराजकों का कहना है कि शासन तो मनुष्य जाति का रोग है। मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुये हैं; उन पर किसी का भी नियंत्रण क्यों होना चाहिये ? जो लोग शासन करते हैं वे मनुष्य जाति के साथ अपराध करते हैं। शासक मानवता का शत्रु है, इसलिये उसको नष्ट कर देना चाहिये। मनुष्य जाति में जो अवांछनीय अपराध-प्रवृत्तियां हैं वे सब शासक या शासकवर्ग के कारण उत्पन्न हुई हैं। यदि बलवान लोग निर्बलों को दबा कर अपना शासन स्थापित नहीं करते तो लोग शान्ति और सुख के साथ रहते और सबका जीवन इतना निर्दोष होता कि किसी प्रकार के कृत्रिम नियंत्रण की आवश्यकता ही नहीं होती।

अराजकतन्त्रवादी इस बात की उपेक्षा करते हैं कि मनुष्य की प्रकृति में ही ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो समाज के लिये घातक हैं। इन प्रवृत्तियों का नियंत्रण समाज के हित के लिये अत्यावश्यक है अन्यथा शान्ति और व्यवस्था की रक्षा नहीं हो सकती। यह कहना कि रक्षा की कोई आवश्यकता ही नहीं है व्यवहार के विपरीत है। अनुभव और विचार के आधार पर राजनैतिक चिन्तकों का यही मत है कि समाज रक्षा नियंत्रण के बिना नहीं हो सकती। नियंत्रण हट जाने पर समाज में भय और क्षोभ उत्पन्न हो जावेगा और किसी का तन या धन सुरक्षित नहीं रहेगा।

---

# बाईसवाँ अध्याय
## धर्म और दर्शन

### धर्म का उदय

अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के बाद मनुष्य सोचने लगता है कि मैं क्या हूँ और इस दृश्यमान जगत् के परे क्या है, इसकी सृष्टि किसने की है, इसका संचालन कौन करता है, जीवन में आकस्मिक घटनायें क्यों होती हैं ? इस प्रकार के चिन्तन में डूबने पर वह आत्मा, परमात्मा और प्रकृति पर विचार करने लगता है और यहीं से धर्म और दर्शन का उदय होता है। यह समस्त संसार पर लागू होता है।

### हिन्दू धर्म, वेद और उपनिषद्

हिन्दू धर्म वेदों पर आश्रित है और वेद संसार में सबसे अधिक प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों में अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवों की स्तुतियाँ हैं और ये सब एक ही ईश्वर के विभिन्न रूप माने गए हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक ईश्वर का विराट् रूप है। वही इसकी सृष्टि, और प्रलय करने वाला है। वेदों में अग्निहोत्र, और राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञों का बड़ा महत्त्व माना गया है। उपनिषदों में वेदों का सार है। ये १०८ माने गए हैं परन्तु मुख्य उपनिषद् बारह हैं। इनमें आत्मा और ब्रह्म पर विचार किया गया है। इनका विवेचन बड़ा सुन्दर और मनोहर है। दाराशिकोह (शाहजहाँ का पुत्र) और यूरोप के संत्र दार्शनिकों ने इनके महत्त्व को स्वीकार किया है। आत्मा और परमात्मा ही हिन्दू धर्म के मूल तत्त्व हैं। उपनिषदों ने यह बतलाया है कि आत्मा परमात्मा के निकट किस प्रकार पहुँचता है और वह किस प्रकार ब्रह्म में लीन हो जाता है। उपनिषदों में कुछ वाक्य ऐसे हैं जिनसे आत्मा और ब्रह्म की एकता प्रकट होती है। परन्तु प्रायः यह बतलाया गया है कि तप, व्रत द्वारा आत्म-शुद्धि हो जाने पर ब्रह्म साक्षात्कार होता है। यह भी कहा गया है कि प्रवचन, श्रवण या मेधा से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। एक समय ऐसा आता है कि ब्रह्म का साक्षात्कार एकाएक हो जाता है। उपनिषदों में विभिन्न ऋषियों के चिन्तन के अनुभव दिये हुये हैं। जिसको जो अनुभव हुआ वह उसने अपने शिष्यों को सुना दिया, इसी को उपनिषद् कहते हैं।

### बौद्ध धर्म

ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में एक राजा के घर में गौतम नामक एक राजकुमार

ने जन्म लिया। ये जन्म से ही विचारशील थे। इन्होंने गृह-त्याग कर सत्य की खोज में वन को प्रस्थान किया और कई वर्ष तक साधुओं की संगति में रहे परन्तु इनको सन्तोष नहीं हुआ। अन्त में गया के पास एक वट वृक्ष के नीचे समाधि लगाकर बैठे हुये उनको सत्य और ज्ञान की प्राप्ति हो गई और वे बुद्ध कहलाये। फिर काशी के पास सारनाथ स्थान पर उन्होंने अपने चिन्तन के अनुभव सुनाये जो बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्त थे। उन्होंने कहा—१. संसार में दुःख है। २. दुःख का कारण तृष्णा है। ३. तृष्णा के अन्त से दुःख का अन्त होता है। ४. तृष्णा का अन्त आर्य अष्टांग मार्ग से होता है। इन चारों उक्तियों का नाम है चत्वारि आर्य सत्यानि। सद्वाक्य, सद्-व्यवसाय, सत्प्रयास, सच्चिन्तन, आदि आर्य अष्टांग मार्ग हैं। चत्वारि आर्य सत्यानि और आर्य अष्टांग मार्ग का आधार उपनिषद् हैं। उपनिषद की सरल, सुबोध और व्यवहार्य शिक्षा को गौतमबुद्ध ने संसार के सामने उपस्थित किया था। वे जन्म से जाति नहीं मानते थे। ब्रह्म या ईश्वर के विषय में चुप रहते थे, त्याग को महत्त्व देते थे और सरल तथा निवृत्त जीवन को मोक्ष का साधन समझते थे।

### महायान

बुद्ध के बाद अनेक विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किया और सत्ता प्राप्त करके वे यहाँ ही बस गये और भारतीय धर्म तथा संस्कृति उन्होंने ग्रहण करली। इनमें कितनों ही ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। साथ ही अपने विचार भी नहीं छोड़े। अतः बौद्ध धर्म का रूपान्तर होने लगा। बौद्धों पर हिन्दू धर्म का भी बड़ा प्रभाव पड़ा। अब हिन्दू धर्म भी बदलता जाता था। वेदों के अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवों का स्थान ब्रह्म, विष्णु और महेश लेते जाते थे। विष्णु लोक या बैकुन्ठ परम सुख और शान्ति का स्थान माना जाता था। ये विचार बौद्ध धर्म में भी घुसने लगे। अतः उत्तर भारत का बौद्ध धर्म महायान धर्म कहलाने लगा। महायानी लोग समझते थे कि उनका यान या वाहन ऐसा है जो उनको सीधा सुखातिव्यूह (बैकुण्ठ) में ले जावेगा। महायान में अनेक देव और देवियों की पूजा होने लगी। इनमें अवलोकितेश्वर, वज्रमणि और अमिताभ मुख्य थे। महायानी लोग यह भी मानने लगे कि कुछ लोग जगत का हित करने के लिए पुनः-पुनः जन्म धारण करते हैं और ये बोधिसत्व कहलाते हैं। देवों और बोधिसत्वों की सुन्दर प्रतिमाएँ बनने लगीं और बुद्ध के साथ-साथ इनकी भी पूजा होने लगी। कालान्तर में महायान में मन्त्र तन्त्र और अनेक प्रकार की पूजाविधियाँ प्रचलित हो गईं और बौद्ध धर्म का असली रूप इनके कोहरे में छिप गया।

### हीनयान

बौद्ध धर्म का दूसरा सम्प्रदाय हीनयान था। यह मूल बौद्ध धर्म के बहुत निकट था और इस पर विदेशियों का या हिन्दुओं का प्रभाव बहुत कम पड़ा था। महाराज

अशोक इसी धर्म को मानते थे और इसी का उन्होंने देश-विदेशों में प्रचार किया था। लंका, ब्रह्मा और हिन्देशिया आदि में हीनयान का ही प्रचार हुआ था। इस सम्प्रदाय का प्रभुत्व दक्षिण भारत में अधिक था। कारण यह था कि वहाँ विदेशियों का प्रभाव नहीं था। इसलिये बौद्ध धर्म का मूल रूप वहाँ प्रायः ज्यों का त्यों बना रहा। तो भी यह उतना निर्मल तो नहीं था जितना गौतम बुद्ध के समय में या उनके देहान्त के एक या दो शताब्दी बाद तक था।

### जैन-धर्म

गौतम के समय में ही महावीर स्वामी ने जैन धर्म का प्रचार किया था। ये भी राजकुमार थे जो सत्य और शान्ति की खोज में गृह-त्याग करके वन में चले गये थे। उग्र तप करके इन्होंने सत्य धर्म की खोज की और फिर जैन धर्म का प्रचार किया। यह धर्म अति प्राचीन माना जाता है परन्तु ऐसा मालूम होता है कि महावीर स्वामी के समय में इसका विशेष प्रचार हुआ। इस धर्म के मूल उपदेश हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। जैन धर्म सबसे अधिक जोर देता है अहिंसा पर। इसका मन्तव्य है कि पुरुष और पशु तो क्या छोटे से छोटे जीव को, यहाँ तक कि अदृश्य जीव को और पौधों को भी नहीं सताना चाहिये। मनुष्य का जीवन त्याग और तपोमय होना चाहिये। शरीर को तप और व्रत के द्वारा क्षीण करना भी धर्म है। सत्य का दर्शन, सत्य का ज्ञान और सत्यमय चरित्र जीवन का लक्ष्य होना चाहिये।

### श्वेताम्बर

जैसे बौद्ध धर्म में दो सम्प्रदाय हो गये उसी प्रकार जैन धर्म में भी श्वेताम्बर और दिगम्बर दो सम्प्रदाय बन गये। श्वेताम्बरी साधु कपड़े पहिनते हैं। ये लोग मानते हैं कि स्त्रियों को भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इनका मन्तव्य है कि चौबीस तीर्थंकरों में एक स्त्री भी थी। इनकी यह भी धारणा है कि महावीर स्वामी के समय के सब ग्रन्थ उपलब्ध हैं और इनमें उनके उपदेश दिये हुये हैं। इनकी पूजा विधि और दिगम्बर लोगों की पूजा विधि में थोड़ा-सा भेद है। श्वेताम्बर साधुओं और पंडितों ने विपुल साहित्य की सृष्टि की है।

### दिगम्बर

इस सम्प्रदाय में अपरिग्रह पर बहुत जोर दिया जाता है। इसके अनुयायी मानते हैं कि महावीर स्वामी से पहिले से ही साधु लोग नग्न रहा करते थे। एक बार उत्तर भारत में दुर्भिक्ष पड़ा और साधु लोग भिक्षा की तलाश में दक्षिण को चले गये। जो साधु उत्तर में ही रह गये उनके रहन-सहन और विचारों में अन्तर आ गया। वे वस्त्र धारण करने लग गये और उनके विचार भी मूलवत् नहीं रहे। ये लोग यह नहीं

मानते कि स्त्रियों को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। यह भी स्वीकार नहीं करते कि चौबीस तीर्थंकरों में एक स्त्री भी थी। दोनों सम्प्रदायों में नाम मात्र का ही भेद है। परन्तु फिर भी एक दूसरे से बहुत दूर हैं।

### बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म

बौद्ध धर्म तो भारत से विलीन हो गया और विदेशों में ही रह गया परन्तु जैन धर्म ज्यों का त्यों बना हुआ है। जैन मन्दिर और जैन साहित्य भारतीय संस्कृति के मूल्यवान अंग हैं। जैन ग्रन्थ भंडार भारतीय ज्ञान के केन्द्र रहे हैं। बौद्धों ने भी नालंदा, तक्षशिला आदि बड़े-बड़े विश्वविद्यालय स्थापित किये थे परन्तु वे विदेशियों के आक्रमणों में नष्ट हो गये। बौद्ध संघ द्वारा शिक्षा का प्रचार हुआ करता था परन्तु आक्रमणों से और राजनैतिक हेर-फेर से वे भी लुप्त हो गये। जैन धर्म इस समय अति सजीव और सजग है और इससे भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। अहिंसा इस समय हिन्दू धर्म का मुख्य अंग है। हिंसा करने वाले भी अहिंसा के महत्व को स्वीकार करते हैं। यह वास्तव में जैन धर्म की देन है।

### वर्तमान हिन्दू धर्म

वर्तमान हिन्दू धर्म वेद और उपनिषदों को स्वीकार करता है परन्तु अनेक देवों की पूजा, अवतारवाद, वैकुण्ठ प्राप्ति, व्रत, उपवास, तीर्थ-स्नान और भगवत करुणा इसके मुख्य अंग हैं। मूर्तिपूजा गत दो हजार वर्ष से इसकी विशेषता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश मुख्य देव हैं परन्तु शिव और विष्णु की पूजा बहुत प्रचलित है। शिव पूजा तो एक समय समस्त भारत में बहुत प्रचलित थी। गाँव-गाँव में शिव प्रतिमा थी और अब भी है। विष्णु के चौबीस अवतार माने जाते हैं जिनमें राम, कृष्ण की पूजा घर-घर होती है। अवतारों की कथायें पुराणों में दी हुई हैं जो बड़ी रोचक हैं। पुराण अठारह हैं और सुन्दर संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं। इनमें भागवत पुराण सब से अधिक प्रसिद्ध है। इनमें कृष्ण चरित्र दिया हुआ है।

ब्रह्म और आत्मा का चिन्तन भी विद्वान् हिन्दुओं में मुख्य माना जाता है। आठवीं शताब्दी में शंकर ने अद्वैतवाद का प्रचार किया था। उनका सिद्धान्त है कि जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है और ब्रह्म के सिवाय किसी अन्य वस्तु का अस्तित्व नहीं है। नानात्व इसलिए दिखाई देता है कि हम माया या अज्ञान के भुलावे में पड़े हुए हैं। शंकर के इस सिद्धान्त को वेदान्त कहते हैं। इसका प्रतिपादन उत्तर मीमांसा के शांकर भाष्य में किया गया है जिसको वेदान्त कहते हैं।

सांख्य में पुरुष और प्रकृति को अलग-अलग माना गया है। पुरुष नेत्रवान है परन्तु पंगु है। उसमें ज्ञान है परन्तु गति नहीं है। प्रकृति के पैर हैं परन्तु वह अन्धी है। वह गतिमान है परन्तु ज्ञान-शून्य है। जब प्रकृति और पुरुष का संयोग होता है

तो सृष्टि होती है। पुरुष का ज्ञान और प्रकृति की गति चिरन्तन और अनन्त है। दोनों पृथक परन्तु मिले हुए हैं। इसके बाद सांख्य पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय तथा पाँच इन्द्रियों के विषय मानता है। इनमें बुद्धि आदि अन्य तत्व मिलाने से सांख्य के चौबीच तत्व बनते हैं।

**इस्लाम**

इस धर्म को मक्का में मोहम्मद साहब ने चलाया था। उनके बाद उनका स्थान अबूबकर, उसमान, अली आदि ने लिया और वे खलीफे (धर्मनेता) कहलाये। दो शताब्दी में इस्लाम पूर्व में भारत के पश्चिमी तट और सिन्ध तक, पश्चिम में स्पेन तक, अफ्रीका के उत्तरी तट पर तथा उत्तर में चीन की सीमा तक फैल गया। इसके बाद भारत में मुसलमानों का राज्य हो गया और चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में समस्त भारत में इस्लाम का डंका बजने लगा।

इस्लाम केवल एक ईश्वर को ही उपास्य और पूज्य मानता है। ईश्वर निराकार, सर्व शक्तिमान, दयावान और सर्व व्यापक माना जाता है। मुसलमानों का विश्वास है कि मोहम्मद साहब को ईश्वर का साक्षात्कार हो गया था और वे ईश्वर की ओर से मानव जाति के लिए पैगाम (सन्देश) लाये थे। इसलिए ही वे पैगम्बर कहलाते थे। अतः मोहम्मद साहब का स्थान अत्यन्त ऊँचा अर्थात् खुदा या ईश्वर से दूसरा है। कोई भी मनुष्य उनका समकक्ष नहीं माना जा सकता। मुसलमानों का मुख्य धर्म ग्रन्थ कुरान है जो अरबी भाषा में लिखा हुआ है। इसका अनुवाद अंग्रेजी और हिन्दी आदि-आदि कई भाषाओं में हो चुका है। इस्लाम में एक मास तक दिन में उपवास (रोजा) रखना, चौबीस घंटे में पांच बार नमाज गुजारना (प्रार्थना करना) और ईश्वर के नाम पर कुर्बानी करना, मसजिद बनवाना, खैरात (दान) देना और सत्य बोलना धार्मिक जीवन के लक्षण माने जाते हैं। जो लोग इस्लाम धर्म को नहीं मानते और मुसलमानों के राज्य में रहते हैं उनसे जजिया (धार्मिक कर) लेने का विधान है परन्तु कर दे देने पर उन लोगों को नागरिकता के सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। यह दूसरी बात है कि कुछ अत्याचारी मुसलमान बादशाहों ने जजिया लेकर भी अमुसलिम लोगों को सताना नहीं छोड़ा था।

इस्लाम में कई सम्प्रदाय हैं परन्तु मुख्य सम्प्रदाय सुन्नी और शिया हैं। दोनों में नाममात्र का सैद्धान्तिक भेद है परन्तु परस्पर कटुता खूब है। दोनों ईश्वर को एक मानते हैं। कुरान दोनों का धर्म-ग्रन्थ है। दोनों नमाज गुजारते हैं और रोजा रखते हैं। परन्तु सुन्नी मजार या कब्रों को नहीं पूजते, ताजिये नहीं निकालते और जिन्द, भूत-प्रेत को नहीं मानते। इन बातों में शियाओं का विश्वास है।

इस्लाम में जाति भेद नहीं है। गरीब और अमीर सब मुसलमान बराबर हैं।

धर्म की दृष्टि से न कोई बड़ा है न छोटा। सब बराबर हैं। सब शामिल खा सकते हैं, साथ-साथ नमाज गुजार सकते हैं और सबमें परस्पर विवाह हो सकते हैं। इस्लाम में एक सम्प्रदाय सूफी कहलाता है। यह हिन्दुओं के वेदान्त से मिलता जुलता है। इसके अनुयायी केवल एक ईश्वर को ही मानते हैं और उसकी प्राप्ति का साधन प्रेम की मस्ती बतलाते हैं। इनके विचार बड़े उदार और ग्राह्य हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि कबीर, नानक और मीरा के विचारों पर सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव था। सूफी साहित्य बड़ा रोचक है। इसका काव्य और कथायें पाठकों और श्रोताओं को मुग्ध कर देते हैं।

### ईसाई मत

इस धर्म की स्थापना ईसा मसीह ने रूम सागर के पूर्व तट पर स्थित पेलेस्टाइन देश में की थी। ईसा बड़े धर्मात्मा और परोपकारी थे। ईसाई मत में इनका स्थान लगभग उतना ही ऊँचा है जितना इस्लाम धर्म में मोहम्मद साहिब का। ईसा के बारह शिष्य थे जिन्होंने उनके बाद इसाई मत का प्रचार किया। ईसाइयों का धार्मिक ग्रन्थ बाइबिल है जो सर्व प्रथम हिब्रू भाषा में लिखा गया था। इस समय यह सरस और सरल अँग्रेजी में बहुत प्रचलित है। इसमें ईसा के और उनके बारह शिष्यों के उपदेश दिये हुये हैं जो बड़े रोचक हैं। भारत में ईसाई धर्म लगभग अठारह सौ वर्ष पूर्व आ गया था। सर्व प्रथम यह केरल देश में आया था। फिर शनैः-शनैः दक्षिण भारत में फैला। तत्पश्चात् पुर्तगाली लोगों ने तलवार के बल से यहाँ इसका मध्यकाल में प्रचार किया और जब अँग्रेजों का राज्य जमा तो उन्होंने भी कई प्रकार से इसको फैलाया।

ईसाई लोग केवल एक निराकार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान ईश्वर को मानते हैं और ईसा को विविध प्रकार से पूज्य समझते हैं। सत्य, त्याग और सद्व्यवहार तथा मनुष्यों के प्रति दया और मैत्रीभाव को अच्छा माना जाता है।

ईसाई धर्म के भी कितने ही सम्प्रदाय हैं जिनमें रोमन, कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट मुख्य हैं। रोमन कैथोलिक मूर्तिपूजक हैं। ये ईसा तथा उनकी माता मेरी की प्रतिमाओं को पूजते हैं और चाँदी आदि की बनी हुई छोटी-छोटी प्रतिमाओं को गले में पहिने रहते हैं। ईसा ने क्रास पर चढ़कर आत्म बलिदान किया था। उस स्मृति में छोटा सा क्रास भी ईसाई अपने गले में लटकाया करते हैं। प्रोटेस्टेंट सुधारवादी हैं। वे धर्म के तत्व में विश्वास करते हैं। मूर्तिपूजा या क्रिया कलाप को हेय या अनावश्यक मानते हैं।

---

# तेईसवाँ अध्याय

## साहित्य के सिद्धान्त

**काव्य शरीर**

साहित्य मानव संस्कृति का प्रधान अंग है। यह राष्ट्र की आत्म कहानी है। साहित्य राष्ट्र के विचार और भावनाओं का दर्पण है। साहित्य का विकास संस्कृति के विकास के साथ ही होने लगता है। यह मनुष्य की प्रकृति है कि वह आनन्द और प्रमोद चाहता है और अपनी उमंग और उल्लास को किसी न किसी रूप में प्रकट करता है। यह प्रकटीकरण नृत्य, संगीत और काव्य के द्वारा होता है। नृत्य के साथ संगीत का अभिन्न सम्बन्ध है। नृत्य की गति और संगीत की तान साथ-साथ चलती है। नर्तकी के पद के साथ ही संगीत का पद चलता है। इसीलिए कविता के एक भाग को पद कहा जाता है। वैसे भजन को भी पद कहते हैं। पद से ही पद्य बना है। काव्य और संगीत में इतना ही भेद है कि संगीत में लय और तान की प्रधानता है और काव्य में पद्य की या पद की। जैसे चौपाई चार पदों की बनती है और प्रत्येक पद में सोलह मात्रायें होती हैं। मात्रा का अर्थ है—नापना। अर्थात् प्रत्येक पद नपा हुआ होता है और नाप की इकाई मात्रा है। दोहा में प्रथम पद तेरह मात्रा का होता है और दूसरा ग्यारह का। मात्रा का नियम समस्त छन्दों पर लागू होता है। नृत्य में पद गिने हुए होते हैं और प्रत्येक पद की मात्रा निश्चित होती है। संगीत में इस को ताल कहते हैं। एवं नृत्य, संगीत और कविता में एक ही नियम हैं। तीनों मात्रा की गिनती से चलते हैं। यह नियम समस्त देशों के नृत्य, संगीत और काव्य पर लागू होता है। भेद केवल व्यवस्था का है। इसलिए हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि सब भाषाओं की कविता में पद और मात्रा का नियम है। यह नियम स्वाभाविक है, कृत्रिम नहीं है और सब भाषाओं में प्रायः समान है। संस्कृत, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में जिसे मात्रा कहते हैं वह ग्रीक में मेत्रोन और अंग्रेजी में मीटर कहलाता है। इसी प्रकार जिसको हम पद कहते हैं उसको अंग्रेजी में फुट कहते हैं। एवं मात्रा, पद और पंक्ति कविता का शरीर है। आजकल छन्द हीन काव्य लिखा जाने लगा है परन्तु यह काव्य शरीर से शून्य है, हाँ इसमें काव्य की आत्मा हो सकती है। अतः छन्द काव्य का प्राथमिक लक्षण है।

काव्य की आत्मा

काव्य में शरीर की अपेक्षा काव्य की आत्मा का अधिक महत्व है। कोमल और कान्त पदावली से कविता कर्ण मधुर बनती है परन्तु वह आत्मा या हृदय को आनन्द नहीं दे सकती। साहित्य की कोटि में गिने जाने के लिये यह आवश्यक है कि कविता की आत्मा अर्थात् उसके भाव गहन और हृदय को स्पर्श करने वाले हों। जब कवि के हृदय में शोक, हर्ष, करुणा या प्रेम आदि भाव प्रचुर और प्रगाढ़ मात्रा में होते हैं और वे उछल कर प्रकट होना चाहते हैं और जब कवि उनको यथोचित पदों में प्रकट कर देता है तो कविता सर्वाङ्ग सुन्दर रूप धारण कर लेती है। भावों को यथावत् रूप में प्रकट करने पर रस उत्पन्न होता है। रस नौ प्रकार का होता है परन्तु प्रधान रस शृङ्गार, वीर और करुण हैं। रस उत्पन्न करने की अनेक विधियाँ हैं जो कवि की सहज कला पर आश्रित हैं। रस ही काव्य की आत्मा है।

आगे चले बहुरि रघुराई। ऋषीमूक पर्वत नियराई।

यह कविता का शरीर मात्र है। इसमें कोई भाव नहीं है परन्तु पद रचना ठीक है। इसको गाया जा सकता है परन्तु इससे रस उत्पन्न नहीं हो सकता। इसी के आगे है:—

तहँ रहे सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥

यह कविता का सुन्दर शरीर है क्योंकि इसमें शब्दों का सौन्दर्य और माधुर्य है, केवल गिनी हुई मात्रायें ही नहीं हैं। अतुल बल सींवा में वीर रस की सोहावनी झलक है।

प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत राजिव लोल।
खेलत मनसिज मीन युग, जनु विधु मंडल डोल॥

इसमें शब्द सौन्दर्य और भाव माधुर्य दोनों हैं। प्रथम पंक्ति में चितइ की आवृत्ति ने पद को सजीव और र की आवृत्ति ने उसको कर्ण मधुर बना दिया है। दूसरी पंक्ति में म की आवृत्ति आनन्ददायक है और भाव उच्चकोटि का है। नायिका की अंगचेष्टा पाठक की कल्पना के सामने आ जाती है और 'मनसिज मीन युग' का 'विधुमंडल' में खेल शृंगार रस की एक क्षण में उत्पत्ति कर देता है।

कवित्त रामायण में तुलसीदास जी सीता का उस समय का वर्णन करते हैं जब वह वनवास के लिये प्रस्थान करती है—

पुरते निकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दिये मग में पग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, मुख सूखि गयो अधराधर द्वै॥

तव पूछति है चलनो कितनो, अरु पर्नकुटी करनो कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता प्रिय की, अँखिया जल डूब रहीं जल ह्वै ॥

यह उच्च कोटि की कविता है। इसकी पद रचना मधुर है जो ढंग से पाठ करने पर तत्काल हृदय में आल्हाद उत्पन्न करती है। कवि ने सन्तप्त सीता का सजीव चित्र खड़ा कर दिया है और बड़ी कुशलता से करुण रस की निष्पत्ति की है। शब्द और ध्वनि माधुर्य की दृष्टि से बीर, धीर, सी, बी, घी झलकी, जलकी, चलनो, कितनो, करनो, तियकी, पियकी कितनी मधुर रचना है। काव्य शास्त्र में इसको अनुप्रास अलंकार कहते हैं। जो कई प्रकार का होता है।

वंक विधना के अंक, निरखि निशंक कहाँ,
राजनते रंक लो कलंक की अछूती को।

इस पद में वंक, अंक, रंक और कलंक में अनुस्वार की आवृत्ति कैसी मनोहर है। पद के भाव में प्रवेश किये बिना ही इसका पाठ मात्र आनन्ददायक है। भाव यह है कि विधाता के विधान से राजा से रंक तक कैसा कलंक फैल गया है। इसी ने किसी को अछूता नहीं छोड़ा। इसमें विधाता पर सब उत्तरदायित्व डाल देने से कैसा नैराश्य आ गया है और करुण रस कैसा उबल पड़ा है।

भूषण शिवाजी महाराज की तलवार का वर्णन करते हुये कहते हैं—

निकसति म्यानते मयूखें प्रलय भानु कैसी
फारे तमतोम से गयन्दन के जाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि
कालिका-सी किलकि कलेऊ देति काल को ॥

इन पंक्तियों में शब्दों का सौन्दर्य और भावों का ओज मानों फट पड़ा है। इसके पाठ मात्र से ऐसा जान पड़ता है मानों उस वीर की तलवार भयंकर वेग से हमारे सामने ही चल रही हो। वीर रस मूर्तिमान होकर सामने खड़ा सा प्रतीत होता है।

उपरोक्त उदाहरण हिन्दी भाषा के हैं परन्तु साहित्य को परखने के ये ही नियम संस्कृत पर भी लागू होते हैं। इतना ही नहीं, फारसी, उर्दू, अँग्रेजी और अन्य भाषाओं पर भी ये ही नियम लगाये जाते हैं। परन्तु जिस प्रकार हिन्दी और संस्कृत साहित्य में शब्द, पद, छन्द, भाव और रस की व्याख्या की गई है, उस प्रकार अन्य भाषाओं में नहीं है। परन्तु समस्त भाषाओं में कविता वही अच्छी मानी जाती है जिसकी भाषा सुन्दर हो, पद रचना निर्दोष हो और जिसके भाव ऊँचे प्रकार के हों। निम्नांकित अँग्रेजी पदों में एक युद्ध का कितना ओज पूर्ण वर्णन है। रणक्षेत्र पहिले शून्य था। मध्य रात्रि को युद्ध का बाजा बजा। वीर सन्नद्ध होकर रणभूमि में आ

गये। तोपें दगने लगीं। प्रातः होते-होते तोपों का धुआँ आकाश में छा गया। जर्मन और फ्रेंच सैनिक रणघोष करते हुये लड़ने लगे। कवि कहता है—

> Where furious Franks and fiery Huns
> shouted under their sulphurous canopy
> On Munich, all thy banners wave
> And charge with all thy chivalry.

इसमें एक ही आवृत्ति से तथा भावों के ओज से अद्भुत चमत्कार आ गया है। कविवर टेनिसन की कविता में कोमल संगीत है और भाव-माधुर्य है। यही बात कई अंग्रेजी कवियों के विषय में कही जा सकती है। उर्दू कविता पर भी यह लागू होती है। सारांश यह है कि काव्य को परखते समय उसके शब्दों, पदों और भावों को परखना चाहिये। इन सबके सामंजस्य से ही रस की निष्पति होती है।

आजकल हिन्दी भाषा में रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि विचार धारायें प्रचलित हैं परन्तु इनका सम्बन्ध विषय चयन से है। विषय तो कोई भी हो परन्तु शब्द, पद और भाव का सौन्दर्य कविता में आवश्यक है। गत शताब्दि में अंग्रेजी का अनुकरण करके बंगाल में अतुकान्त कविता लिखी जाने लगी थी। फिर उसी की नकल हिन्दी में हुई। तत्पश्चात् गद्य काव्य भी शुरू हुआ। परन्तु यह अधिक प्रचलित नहीं हुआ।

प्रत्यक्ष में गद्य पद्य से सरल प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। समस्त संसार में साहित्य के विकास का प्रथम कांड पद्य ही है। गद्य का विकास बाद में होने लगता है। बोल-चाल में तो गद्य ही का उपयोग होता है परन्तु इसको साहित्यिक गद्य नहीं कहा जा सकता। गद्य का विकास कहानी से होता है। सारे संसार के गद्य में कहानियां ही सबसे पुरानी हैं। फिर उपन्यास, निबन्ध, पत्र आदि का प्रादुर्भाव होता है। गत शताब्दी के मध्य तक जटिल और कठिन गद्य पसन्द किया जाता था। गद्य भी विषय और पाठक की दृष्टि से कई प्रकार का होता है—यथा बाल साहित्य, प्रौढ़साहित्य, गल्प साहित्य, साहित्य मीमांसा आदि। इनमें हर एक की शैली भिन्न हुआ करती है। पद्य की अपेक्षा गद्य को परखना अधिक कठिन होता है। इसमें देखना पड़ता है कि प्रवाह, प्रसाद और अभिव्यक्ति की दृष्टि से गद्य कैसा है। इस समय हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्दजी का गद्य उत्तम माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का गद्य गम्भीर और जटिल है। बाबू श्यामसुन्दरदास के गद्य में प्रवाह और सारल्य है। बनारसीदासजी चतुर्वेदी का गद्य भी सरल और सुबोध है।

---

# द्वितीय भाग

## सामान्य शिक्षा

# पहला अध्याय

## ब्रह्मांड में पृथ्वी का स्थान

### सागर का भय

मनुष्य में ज्ञान का उदय होने लगा तभी से उसमें जिज्ञासा हुई कि उसकी परिस्थिति का स्वरूप कैसा है। पहिले उसने अपने आस-पास के जंगल, पर्वत, मैदान और पशु-पक्षियों का ज्ञान प्राप्त किया, फिर वह अधिक विस्तृत प्रदेश के विषय में कुछ जानने लगा और जब समाज और राज्य स्थापित हो गये तो उसको अपने देश का ज्ञान हुआ। कालान्तर में वह दूसरे देशों में पहुँचा और उसको कई देशों का ज्ञान हो गया। पृथ्वी पर बड़े-बड़े राज्य और साम्राज्य स्थापित हो गये। साहसी विजेता एक देश से दूसरे देशों में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपना राज्य जमाया और इस प्रकार कई देश एक नरेश के आधीन हो गये। परन्तु हजारों वर्षों तक मनुष्य समुद्र से डरता रहा। उस युग में बड़ी-बड़ी नदियों को पार करना ही कठिन था। फिर, अथाह समुद्रों का तो कहना ही क्या था। ज्यों-ज्यों मनुष्य का साहस बढ़ा त्यों-त्यों वह समुद्र के किनारे-किनारे नावों द्वारा कुछ दूरी तक जाने लगा। फिर एक देश के समुद्र-तट से दूसरे देश के तट तक पहुँचा। एवं मानव का ज्ञान और साहस बढ़ता गया और साथ ही उसकी जिज्ञासा बढ़ती गई। आकाश की नीलिमा और सूर्य-चन्द्र तथा ग्रह उपग्रहों की छटा देख-देखकर उसके मन में विस्मय होता था। उनका उसने अध्ययन करना शुरू किया और शान्ति तथा धैर्य से निरीक्षण करते-करते उसको ज्योतिष् का अच्छा ज्ञान हो गया। मनुष्य ने सूर्य, चन्द्र और तारों की गति को तो जान लिया परन्तु अभी उसको अपनी पृथ्वी का ही पूरा ज्ञान नहीं था। कारण यह था कि पृथ्वी के बड़े-बड़े महाद्वीपों के मध्य में अथाह और अपार समुद्र थे जिनके स्वरूप को देखकर ही वह भयभीत हो जाया करता था। सागर तट पर नाव चलाना भी बड़े साहस का काम समझा जाता था। सिकन्दर महान भारत में स्थल मार्ग से आया था और स्थल मार्ग से ही वापिस गया था। पंजाब की नदियों को पार करने में ही उसको कम कठिनता नहीं हुई थी। उसका एक सेनानायक सागरतट के मार्ग से नावों

द्वारा अपनी सेना के साथ वापिस ईरान तक गया था परन्तु मार्ग में उसको घोर कष्ट सहने पड़े और जब वह सिकन्दर से जाकर मिला तो बिल्कुल बेहाल हो गया था। यह आज से लगभग तेईस सौ वर्ष पहले की बात है।

## सागर यात्रा

पन्द्रहवीं शताब्दी में लोग गहरे समुद्रों पर नावें ले जाने लगे। कुछ ही वर्षों में उनका साहस इतना बढ़ गया कि छोटे-छोटे किन्तु गहरे समुद्रों को और फिर बड़े-बड़े अथाह समुद्रों को पार करने लगे। तब सागरों की गहराई और दूरी का भय जाता रहा और लोग महासागरों को पार करने का साहस करने लगे। कोलम्बस अमेरिका जा पहुँचा और वास्कोडिगामा भारत के तट पर आ गया। अब मनुष्य जान गया कि पृथ्वी गोल है और जल तथा स्थल को सीधा पार करता रहे तो वह जहाँ से रवाना हो वहीं बिना मुड़े वापिस आ सकता है। आखिरकार मेगेलन नामक महानाविक ने ( १४७०-१५२१ ) पृथ्वी की परिक्रमा करने का साहस किया। सन् १५१६ में वह पोर्चुगाल से रवाना हुआ। वहाँ से वह ब्राजील पहुँचा। वहाँ से प्रस्थान कर उसने उस जलडमरूमध्य को पार किया जो उसके नाम पर अब मेगेलन का जलडमरूमध्य कहलाता है। फिर प्रशान्त महासागर में होकर वह फिलिपाइन्स आया। यहाँ वह एक लड़ाई में मारा गया और उसके पाँच जहाजों में से चार वहीं नष्ट हो गये। परन्तु विक्टोरिया नामक उसका एक जहाज बच गया जो हिन्द महासागर को पार करके वापिस पोर्चुगाल जा पहुँचा। इस प्रकार मेगेलन के जहाज ने प्रथम बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। फिर ज्ञात हो गया कि पृथ्वी का अर्द्ध-व्यास चार हजार मील या ६४०० किलोमीटर का है। अब तो विज्ञान के द्वारा यह भी पता लग गया है कि पृथ्वी का मात्रा ६,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० टन (६ $\times$ १०^२१) या ६,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० या ६ $\times$ १०^२४ किलोग्राम है। इसका औसत घनत्व पानी की अपेक्षा साढ़े पाँच गुना है।

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के बाद लोगों ने चाहा कि कोई प्राकृतिक और तर्कसंगत नाप निश्चित किया जावे। तब उन्होंने ध्रुव से भूमध्य रेखा तक की लम्बाई को एक करोड़ भागों में विभक्त किया और ऐसे एक भाग का नाम मीटर रक्खा। आधुनिक खोज से ज्ञात हो गया है कि मीटर चौथाई रेखांश का ठीक एक करोड़वां भाग नहीं है, परन्तु फिर भी मीटर की लम्बाई ज्यों की त्यों बनी हुई है और यह नाप पेरिस में सुरक्षित है। एक मीटर में एक सौ सेन्टीमीटर होते हैं। एक घन सेन्टीमीटर पानी मात्रा की इकाई मानी जाती है। इस इकाई को ग्राम कहते हैं। एक हजार ग्राम का एक किलोग्राम माना जाता है। पृथ्वी को अपनी कीली पर घूमने में जो औसतन समय लगता है उसको दिन माना जाता है। दिन को घन्टों में, घन्टों को मिनटों में और मिनट को सैकंडों में

विभक्त कर सेकन्ड निकाला जाता है। इस प्रकार लम्बाई, मात्रा और काल की इकाइयाँ बनती हैं। इनको क्रमशः सेन्टीमीटर, ग्राम और सेकन्ड कहा जाता है। इसी को विज्ञान में C. G. S. विधि कहा जाता है। इन नापों को इस प्रकार बदला जाता है :—

१ इंच = २.५४ सेन्टीमीटर
१ मील = १.६१ किलोमीटर
१ पौंड = ४५३.६ ग्राम
१ सेर = ८० तोला = ९३० ग्राम = ०.९३० किलोग्राम

पृथ्वी के विषय में ये प्रश्न खड़े होते हैं—(१) कि कभी-कभी ज्वालामुखी प्रकट होते हैं और खानों में ज्यों-ज्यो हम नीचे उतरते हैं त्यों-त्यों गर्मी बढ़ती जाती है, तो क्या पृथ्वी के अन्दर का भाग बहुत गर्म है ? (२) क्या पृथ्वी सदैव ऐसी ही थी जैसी अब है ? (३) क्या इस पर सदा से ऐसे ही मनुष्य और पशु बसे हुये थे जैसे इस समय दिखाई देते हैं ? (४) क्या भूतकाल में मौसम में परिवर्तन हुये हैं ? (५) पृथ्वी की सृष्टि कैसे हुई और उसके बाद का इसका क्या इतिहास है ?

उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देने के लिये पहले तो हमको इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि इस ब्रह्मांड में पृथ्वी का क्या स्थान है। प्रत्यक्ष में तो ऐसा जान पड़ता है कि सूर्य और ग्रह सब पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। अतः पहिले यह समझा जाता था कि पृथ्वी ब्रह्मांड के मध्य में स्थित है। जब लोग आकाश की ओर देखते थे तो उनको कौतूहल हुआ करता था कि सूर्य, चन्द्र और ग्रह निश्चित रीति से भ्रमण करते हैं और कुछ तारे प्रत्यक्ष में अव्यवस्थित ढंग से इधर उधर भ्रमण करते रहते हैं। उन लोगों ने पृथ्वी को केन्द्र मान कर यह निश्चित किया कि सूर्यादि वृत्त मार्गों में भ्रमण करते हैं। इन पदार्थों के भ्रमण के हेतु एक वृत्त के बाद दूसरा वृत्त और उसके बाद तीसरा वृत्त, एवं अनेक वृत्त हैं। टोलोमी के समय में ज्योतिषी लोग समझते थे कि इन वृत्तों के बाहर दूसरे वृत हैं जिन पर ग्रहों की गति होती है। इन धारणाओं की पुष्टि अरिस्टोटल (३८४–३२२ई० पू०) और टोलोमी (द्वितीय शताब्दी) जैसे विद्वानों ने की थी। फिर ईसाई विद्वानों ने भी इस मत को स्वीकार किया। कई शताब्दियों तक संसार इस मत को मानता रहा। फिर १५४० ई० में कोपरनिकस नामक एक पादरी विद्वान ने कहा कि यह धारणा गलत है। उसने कहा ब्रह्मांड के मध्य में सूर्य की स्थिति है, पृथ्वी की नहीं। पृथ्वी और ग्रह सब सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं। उसका मत उस समय धर्म के प्रतिकूल माना गया था परन्तु इसके अनुसार पृथ्वी का स्थान ब्रह्मांड के मध्य से हट गया। अब पृथ्वी स्वयं नक्षत्र मानी जाने लगी। फिर टाकोब्राहे (Tycho Brahe) नामक एक यूरोपियन ज्योतिषी ने और उसके पश्चात् जोहनीज

केपलर (Johannes Kepler) ने ग्रहों की गतियों का सूक्ष्म निरीक्षण किया, और इनकी व्यवस्था को समझा। उन्होंने ग्रहों की गति में तीन नियमों का पता लगाया। इनमें से एक नियम यह है कि सब ग्रहों की गति दीर्घवृत्तीय (Elliptical) है और इन सब का मध्य-विन्दु सूर्य है।

इस प्रकार सूर्य ज्योतिष-जगत् का पिता है। ग्रह इसके पुत्र हैं और उपग्रह इसके पौत्र हैं। सूर्य अत्यन्त गर्म है। इसके ऊपर का तापमान ६०००°C है
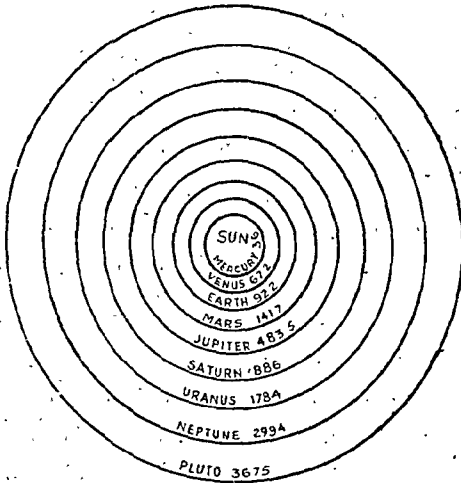
चित्र १

और इसके अन्दर के तापमान के विषय में अनुमान किया गया है कि वह २०,०००,०००°C होना चाहिये। सूर्य के वाह्य भाग पर जो गर्मी है उसमें भी कोई पदार्थ ठोस या तरल अवस्था में नहीं ठहर सकता। इतनी गर्मी में वह तत्काल भाप बन जावेगा। सूर्य का आकार वर्तुल (गोल) है। इसका व्यास ८६६००० मील है जो पृथ्वी के व्यास से १०९ गुना वड़ा है। सूर्य के परिमाण के विषय में अनुमान किया गया है कि इसका वजन पृथ्वी के वजन से ३२९,३९० गुना है। सूर्य पृथ्वी से ९३,०००,००० मील दूर हैं। इसके चारों ओर विभिन्न ग्रहों का क्या स्थान है यह चित्र संख्या १ में दिखाया गया है और तालिका संख्या १ में सबका सापेक्षिक फासला, व्यास, घनत्व आदि वतलाया गया है। जिस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है उसी प्रकार अन्य ग्रहों की परिक्रमा उपग्रह करते हैं लेकिन किसी-किसी ग्रह की परिक्रमा कोई उपग्रह नहीं करता।

## तालिका १

ग्रह विवरण

| | दूरी (सूर्य से) million mi. from Sun सूर्य से मि.मी. | परिक्रमण काल | व्यास Diameter (miles) | मात्रा Mass Earth=1 पृथ्वी=१ | उपग्रह संख्या No. of moons |
|---|---|---|---|---|---|
| सूर्य Sun | .... | .... | 865 380 | 329 390 | .... |
| चन्द्र Moon | .... | | 2160 | 0·012 | |
| बुध Mercury | 36·0 | 88·0 ds | 3009 | 0·34 | 0 |
| शुक्र Venus | 67·2 | 224·7 ds | 7575 | 0·82 | 0 |
| पृथ्वी Earth | 93·0 | 365·26 ds | 7927 | 1·00 | 1 |
| मंगल Mars | 141·5 | 1·881 ys | 4216 | 0·11 | 2 |
| वृहस्पति Jupiter | 483·3 | 11·86 ys | 88 698 | 314·5 | 11 |
| शनि Saturn | 886·1 | 29·5 ys | 75 060 | 94·1 | 9 |
| अरुण Uranus | 1783 | 84 ys | 30 878 | 14·4 | 5 |
| वरुण Neptune | 2793 | 164·8 ys | 27 700 | 16 7 | 2 |
| कुबेर Pluto | 3675 | 248·4 | 3 600 | .... | 0 |

दूरदर्शक यन्त्र (Telescope) से हमारे ब्रह्माण्ड विषयक ज्ञान में बहुत वृद्धि हुई है। इसके द्वारा सूर्य, चन्द्र, ग्रह और उपग्रहों का सुन्दर विवरण दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ इसी से शनिश्चर की मुद्रिका दिखाई देती है। परन्तु ग्रहों के अतिरिक्त जो असंख्य तारे हमें आकाश में दिखाई देते हैं उनका कुछ भी विवरण इससे प्रकट नहीं होता। इनमें से कुछ औरों से अधिक प्रकाशमान दिखते हैं, किसी का प्रकाश लाल है, किसी का नीला, परन्तु सबकी स्थिति एकसी है। इसीलिए इनको स्थिर तारे कहा जाता है। हमारी कल्पना है कि इनके विविध समुदाय कुछ पशु या पदार्थ से प्रतीत होते हैं। कोई समूह रीछ जैसा, कोई सिंह जैसा, कोई वृश्चक या तुला

जैसा भासित होता है। किन्हीं समूहों को हम पौराणिक पुरुषों जैसा समझते हैं। जैसे सप्तऋषि और ध्रुव। ऐसा कहा जाता है कि इस वृहत् समुदाय में १००,०००,००० तारे हैं और इसका आकार बहिर्वक्र (Convex) लैन्स जैसा है। प्रत्येक तारे की सूर्य से तुलना की जा सकती है और ये सब इतने दूर हैं कि बड़े से बड़े दूरदर्शक यन्त्र से भी इनके आकार-प्रकार का विवरण दृष्टिगत नहीं होता। हमको इसका ज्ञान है कि प्रकाश की गति एक सेकण्ड में ३०,०००,०००,००० या ३ × १०¹⁰ सेन्टीमीटर होती है। सूर्य पृथ्वी से नौ करोड़ और तीस लाख मील दूर है। वहाँ से प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में आठ मिनट लगते हैं। परन्तु जो तारा पृथ्वी के निकट से निकट स्थित है वहाँ से पृथ्वी तक आने में उसके प्रकाश को साढ़े चार प्रकाशवर्ष लगते हैं। एक वर्ष में जितनी दूर प्रकाश पहुँचता है उसको प्रकाशवर्ष कहते हैं। यह दूरी लगभग ६,०००,०००,०००,००० ($६ \times १२^{१२}$) मील होती है फिर इससे कितनी ही अधिक दूरियों पर कितने ही तारे हैं। इनकी दूरी अरब और खरब प्रकाशवर्ष मानी गई है। जिस तारा-समूह को हम आकाश गंगा कहते हैं वह लैन्स के आकार का है और उसकी AB लम्बाई १००,००० प्रकाशवर्ष मानी गई है। उसी की CD लम्बाई १०,००० प्रकाशवर्ष है। सूर्य और सूर्य-परिवार S पर हैं और केन्द्र विन्दु O से ३०,००० प्रकाश वर्ष दूर हैं।
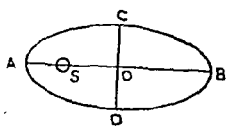
चित्र २

दूरदर्शक यन्त्र से जब आकाश में अत्यन्त दूर देखा जाता है तो अगणित तारों के समूह का एक प्रकाश पुंज सा दिखाई देता है। तारों का आकार पृथक्-पृथक् और स्पष्ट नहीं मालूम होता। सब धिलमिल दिखाई देते हैं। ज्योतिषियों में एक मत यह भी है कि इस प्रकार के अस्पष्ट तारासंकुल प्रकाश-समूह में से ही सूर्य, चन्द्र और विविध ग्रह बने होंगे। सूर्य परिवार एक नहीं अनेक होंगे। इन समूहों में कोई वर्त्तुलाकार है, कोई लम्बा वर्त्तुल है और कोई एक छोर पर मोटा और दूसरे छोर की ओर पतला होता जाता है। इनमें प्रत्येक समूह आकाश गंगा के बराबर या उससे अधिक बड़ा है। प्रत्येक समूह में १००,०००,०००,००० ($१०^{११}$) तारे हैं जिनमें प्रत्येक सूर्य के समान बड़ा प्रतीत होता है। वास्तव में हमारी आकाश गंगा भी ऐसा तारासंकुल प्रकाशपुंज है जिसमें नये तारों की सृष्टि होती रहती है। ऐसे समूह आकाश में हजारों हैं। प्रत्येक समूह अलग ब्रह्माण्ड जान पड़ता है और एक ब्रह्माण्ड दूसरे से १५,०००,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। जितना ब्रह्माण्ड हमको दिखाई दे सकता है उसके विभिन्न समूहों की तुलना हम ऐसे अनेक फुटबालों से कर सकते हैं जिनमें प्रत्येक का व्यास एक फुट हो
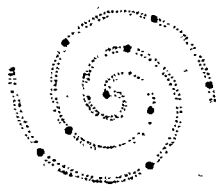
चित्र ३

और एक दूसरे से १५० फुट दूर हों। इनमें जो समूह दूरतम हैं वे १,०००,०००,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर हैं। ब्रह्माण्ड के इस विपुल विस्तार को समझने पर हम जान सकते हैं कि पृथ्वी की स्थिति इसमें क्या है।

हम देख चुके हैं कि सूर्य अति विशाल और उष्ण पिंड है। आकाश गंगा में ऐसे तारे हैं जो सूर्य की अपेक्षा आकार में अधिक बड़े हैं परन्तु उनका वजन इतना नहीं है। ऐसे भी तारे हैं जिनका व्यास अगणित करोड़ों मील लम्बा है। इनमें एक को इस प्रकार रक्खा जावे कि इसका मध्य-बिन्दु सूर्य के मध्य बिन्दु पर हो तो वह वरुण (Neptune) नक्षत्र तक पहुँच जावेगा। इनको विशाल तारे कहा जाता है। इनके ऊपरी भाग का तापमान सूर्य की अपेक्षा बहुत कम है। कई का तापमान तो ३०००°C ही है। इसलिये ये दीखने में लाल मालूम होते हैं। और इनको रक्त-राक्षस कहा जाता है। ये अति विशाल हैं। अतः चमकीले हैं। रसल और हट्‌जस्प्रंग ने इसका अध्ययन किया है। इन विद्वानों का कथन है कि रक्त-राक्षसों से छोटे तारों की ओर बढ़ने पर प्रकाश तो लगभग एकसा रहता है परन्तु तापमान बढ़ता जाता है। चतुर्थ चित्र में इसको बतलाया गया है। इसमें प्रकाश की रेखा OB है और तापमान की OT। PQ रेखा पर प्रकाश समान है परन्तु तापमान ३०००°C से ४०,०००°C तक बढ़ जाता है। इनके बाद ऐसे तारे हैं जिनका आकार छोटा है और जिनका तापमान भी कम है। इनको QR पर दिखाया गया है। इस चित्र में तारासमूह का प्रत्येक तारा दिखाया गया है और सब तारों की स्थिति PQR पर है। यदि हम OA तापमान से चलें तो इस ताप के तारे हमको H और G बिन्दु पर मिलेंगे। H बिन्दु उन तारों की स्थिति बतलाता है जिनका प्रकाश और तापमान कम है और G बिन्दु उन तारों को प्रकट करता है जिनका आकार तो विशाल है परन्तु तापमान कम है। इनमें दो श्रेणी के तारे हैं—लाल बोने और विशाल तारे। इसी प्रकार हम OB पर ऊँचे तापमान की तरफ जावें तो E और F बिन्दुओं पर तारे हैं। E पर इस ताप के बोने तारे हैं और F पर विशाल तारे। ऊँचा तापमान लाल रंग में नहीं होता। वह पीले जैसे रंग में होता है। फिर इन समूहों में पीतवर्ण छोटे और विशाल तारे दिखाई देते हैं। इस प्रकार हम ऊँचे तापमान की तरफ चलते जाते हैं और हम देखते जाते हैं कि प्रकाश पंक्ति कम होती जाती है। जब हम Q बिन्दु पर पहुँचते हैं तो यह विलीन हो जाता है।
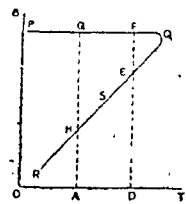
चित्र ४

समस्त तारागण को देखने पर प्रत्येक तारे का जीवन वृत्तान्त भी प्रकट हो जाता है। हम यह मान सकते हैं कि PQR टेढ़ी रेखा प्रत्येक विशेष तारे के जीवन विविध अध्यायों को प्रकट करती है। इसका स्पष्टीकरण कोई कठिन नहीं है।

पहिले तारा विशाल रूप में प्रकट होता है। उस अवस्था में उसका ताप कम होता है। यह अवस्था P पर दिखाई गई है। यह गरमी उगलता है और इस प्रकार बहुत-सी उर्जा का संकोचन करता है और उसको मुक्त भी करता है। इससे वह पुनः गरम होता है। जब तापमान बढ़ता है तो तारा अधिक चमकने लगता है परन्तु उसका आकार छोटा होने के कारण वह मन्दतर दीखने लगता है। ये दोनों प्रभाव एक दूसरे को काटते हैं और तारे में प्रकाश बना ही रहता है। यह क्रम चलता ही रहता है। तब Q की सीढ़ी आ जाती है। यहां पहुँचने पर संकोच उतनी उर्जा को मुक्त नहीं कर सकता जिसकी ऊँचा तापमान बनाये रखने के वास्ते आवश्यकता है। इसके बाद इसका आकार घटता रहता है और साथ ही यह ठण्डा भी हो जाता है। इस सीढ़ी को QR कहते हैं और इसी को तारों का औसत क्रम (main sequence) कहा जाता है। जब तक तारा ठण्डा हो जाता है तो वह फिर दिखाई नहीं देता। औसत पर्यवसान में सूर्य एक विचित्र तारा है। इसकी स्थिति बिन्दु से प्रकट होती है। एवं यह युवावस्था को पार कर चुका है और प्रौढ़ अवस्था में पहुँच गया है।

यह ब्रह्मांड का जाज्वल्यमान चित्र है। इसमें कैसा अपार स्थान है और कितना निरवधि काल है। इस चित्र में पृथ्वी सूर्य परिवार की एक अत्यल्प सदस्य प्रतीत होती है और यह हमारे तारा समूह में एक कोने में धँसी हुई है। हमारा तारा समूह (आकाश गंगा) भी अनेक ऐसे समूहों में एक है। ऐसे अनन्त समूह बड़ी-बड़ी दूरियों पर स्थित हैं। यह क्रिया-कलाप लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व शुरू होकर विशाल और व्यवस्थित वर्तमान स्थिति में पहुँचा है और यह अज्ञेय भविष्य में इसी प्रकार प्रवेश करता जावेगा।

---

# दूसरा अध्याय

## पृथ्वी

### पृथ्वी की उत्पत्ति

अब स्पष्ट हो गया होगा कि इस सृष्टि के विकास क्रम में पृथ्वी कभी न कभी उत्पन्न हुई होगी। यह स्वभावतः माना जा सकता है कि इसकी उत्पत्ति सूर्य से हुई होगी। मतभेद केवल इस पर हो सकता है कि उत्पत्ति किस प्रकार हुई। इस विषय पर सर्व-प्रथम लेपलेस ( १७४९-१८२७ ) ने चिन्तन किया था। उसका विश्वास था कि ज्यों-ज्यों सूर्य सिकुड़ता गया त्यों-त्यों उसमें से वैसी मुद्रिकायें निकलती गईं जैसी अभी शनिश्चर के आस-पास हैं। सूर्य तो अपनी कीली पर घूमता रहा और मुद्रिकायें जम-जम कर कालान्तर में ग्रह बन गईं। जीन समझता था कि सौर परिवार तारासमूह में एक असाधारण क्रिया है और इसको समझना आसान बात नहीं है। उसने यह माना कि कोई बड़ा तारा सूर्य के पास होकर निकला होगा इससे सूर्य में विशाल ज्वार-भाटा-सा हुआ और सिगार के आकार का एक विशाल स्तम्भ उसमें से निकला। इसी अर्से में वह तारा दूर चला गया और यह स्तम्भ उस पर नहीं गिर सका। फिर यह स्तम्भ स्वतन्त्र रूपेण सूर्य के आस-पास घूमने लगा, फिर वह ठण्डा हो गया, तरल बन गया और फिर जम कर नल में से शनैः-शनैः निकलने वाले जल-बिन्दुओं के समान हो गया। यह बिन्दु ही नक्षत्र बन गये। स्वभावतः बड़े-बड़े नक्षत्र मध्य में हैं जैसे शनिश्चर और वरुण (जुपीटर) और छोटे-छोटे नक्षत्र अन्त में हैं जैसे बुध (Murcury) और कुबेर (Pluto)। यह बड़ा सुन्दर
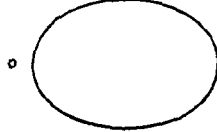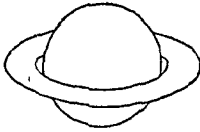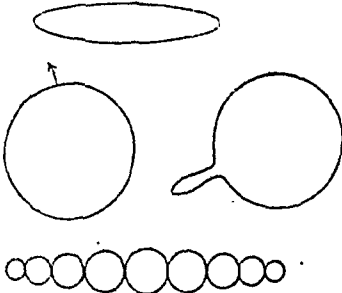
चित्र ५

चित्र ६

चित्र है जिसमें उसके विविध अंग एक दूसरे के साथ-साथ अच्छी तरह सटे हुए जान पड़ते हैं।

तो भी वहुत से वैज्ञानिक इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि यह सिद्धान्तः मान्य नहीं है। वेजसेकर नामक विद्वान ने इस विषय में जो मत प्रकट किया है वह सफल माना जा सकता है। उसने लेपलेस और कान्ट के मत को दुवारा जांचा है। वेजसेकर उस समय से आरम्भ करता है जव सूर्य की रचना शुरू हुई थी। उसका मत है कि उस तारासमूह में जिसमें सूर्य शामिल है जव पदार्थ कुछ जमने लगा तो सूर्य की रचना का आरम्भ हुआ। उस समय सूर्य का मुख्य भाग केवल भाप का बना हुआ था अर्थात् उसमें हाइड्रोजन और हेलियम था। इस समय भी वही अवस्था है। वाहर के भाग में हाइड्रोजन, हेलियम लोहा, और सीलीकन आदि के आक्साइड के कण थे। छोटा कण जव वड़े कण से मिलता था तो उसी के चिपक जाता था और वड़ा कण वन जाता था। परन्तु जव छोटे-छोटे कणों की मुठभेड़ होती थी तो वे परस्पर टूट फूट कर चूर्ण हो जाते थे। इस प्रकार की क्रिया सूर्य के कुछ वाह्य भागों में ही होती थी। पदार्थ एकत्र होकर एक भाग में घनीभूत हो जाता था। इस प्रकार ग्रह की रचना होती थी और वह भाग ही ग्रह की कक्षा वन जाता था। वेंजसेकर के हिसाव से ग्रहों का घनत्व और उनकी दूरियाँ प्रायः ठीक-ठीक वैठ जाती हैं। यह आश्चर्य की वात है। इस क्रिया के होने में एक अरव वर्ष लगे होंगे और यह अव से ३०० करोड़ वर्ष पहले आरम्भ हुई होगी।

**पृथ्वी के धरातल पर क्रियायें**

इससे प्रकट होता है कि पृथ्वी ग्रहों के वीच में उत्पन्न हुई। कालान्तर में ग्रहों के उपग्रह उत्पन्न होने लगे। पृथ्वी का तो एक ही उपग्रह है परन्तु शनिश्चर जैसे ग्रहों के चारों ओर देखें तो उपग्रहों के प्रकाश से चारों ओर जगमगाहट दिखाई देती है। पृथ्वी के तो एक चन्द्रमा है परन्तु शनिश्चर के नौ हैं। अपनी उत्पत्ति के समय पृथ्वी भी सूर्य के समान अत्यन्त गरम होगी। क्योंकि यह सूर्य में से ही निकली थी। फिर यह ठंडी होकर तरल होने लगी होगी। इस क्रिया का आरम्भ इसके ऊपरी भाग से हुआ होगा। वहाँ पर दृढ़ चट्टान वन गई थी। भारी पदार्थ पृथ्वी के गर्भ में घुस गये। वहाँ ये दृढ़ पदार्थ घोर गरमी में मिलकर तरल होने लगे और जव तरल हो गये तो यह क्रिया वन्द हो गई। अन्दर की तीव्र गरमी वाहर नहीं निकल सकती थी क्योंकि वाहर तो दृढ़ चट्टान वन गई थी जो इसकी गति को रोकती थी। पृथ्वी का गर्भ भाग तो अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त तरल था। उससे आगे के भाग इतने गरम नहीं थे। इससे भी ऊपर के भाग का जो वाहर तक पहुँचा हुआ था अन्दर के भाग पर दवाव पड़ता था जिसके कारण यह अन्दर का भाग तरल और ठोस दोनों था।

तरल पदार्थ ठोस नहीं होता परन्तु दवाव पड़ने पर वह दृढ़ हो सकता है। इस अवस्था को तरल नहीं किन्तु किंचित् दृढ़ कहना चाहिये। इस प्रकार हम पृथ्वी को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) तरल गर्भ-भाग, (२) किंचित् दृढ़ मध्य-भाग, (३) दृढ़ बाह्य भाग।

यह प्रयोग करके देख लिया गया है कि ज्यों-ज्यों हम पृथ्वी के अन्दर घुसते हैं त्यों-त्यों तापमान बढ़ता जाता है। यह वृद्धि ३०°C/Km या १६°F/१००० फुट के हिसाब से हुआ करती है। १५००° के तापमान पर पत्थर और चट्टानें पिघल जाया करती हैं। उपरोक्त हिसाब से पृथ्वी के तीस मील अन्दर १५००°C का तापमान है। इसके बाद पिघली हुई किन्तु किंचित् दृढ़ चट्टानें होनी चाहिये। सहसा दवाव पड़ने पर पदार्थ फट जाता है और शनैः-शनैः निरन्तर दवाव पड़ने पर वह कोलटार जैसा दृढ़ तरल बन जाता है। ज्यों-ज्यों हम पृथ्वी में घुसते हैं त्यों-त्यों तापमान हिसाब से बढ़ता जाता है। अतः इसके गर्भ के मध्यविन्दु पर यह तापमान कई हजार डिग्री सेन्टीग्रेड होना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी का गर्भ भाग इस समय भी उतना ही गर्म है जितना पृथ्वी सूर्य से अलग हुई उस समय था।

## पर्वतों का निर्माण

पृथ्वी के उत्तरकाल का इतिहास बतलाता है कि ज्यों-ज्यों यह ठंडी होती गई त्यों-त्यों क्या परिणाम हुये। इस क्रिया से पृथ्वी सिकुड़ती गई और ज्यों-ज्यों सिकुड़ी तो धरातल पर झुर्रियाँ बनने लगीं। ये झुर्रियाँ वैसी ही थी जैसी टमाटर पर जब वह सूखने लगता है तो बन जाया करती हैं। धरातल के इस प्रकार सिकुड़ने से चट्टानों पर बड़ा दवाव पड़ा। इसका परिणाम क्या हुआ यह चित्र संख्या ७ से प्रकट होगा। (१) पहिले तो यह दिखाया गया है कि A B स्थल पर किस प्रकार दवाव पड़ने लगा। (२) दूसरे यह समझाया गया है कि दोनों ओर से जब दवाव पड़ा तो अमुक स्थल किस प्रकार ऊँचा उठने लगा। (३) तदुपरान्त वह टूटता-फूटता हुआ ऊपर आया और (४) वह अन्तिम स्वरूप धारण कर के पर्वत बन गया जो P और Q द्वारा प्रकट किया गया है। इनके मध्य में घाटी बन गई। इस प्रकार हमारे समझ में आ जाता है कि चट्टानों के सिकुड़ने और एकत्र होने से पर्वतों का निर्माण कैसे हो जाता है।
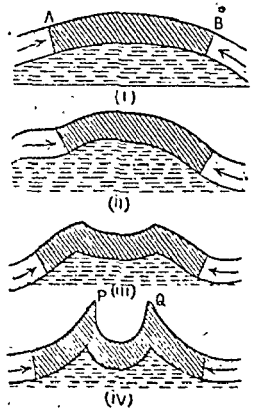
चित्र ७

**संतुलन, भूपर्पटीका (Isostasy)**

हमारे लिये यह स्वाभाविक बात है कि हम पदार्थों को जैसे वे दिखाई देते हैं वैसे ही मान लें। अतः हमारे पूर्वज यह समझते थे कि पर्वत पृथ्वी से भिन्न हैं।
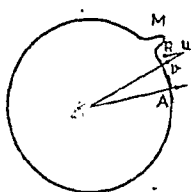
चित्र ८

ये मानों अलग चट्टानें हैं जो पृथ्वी पर रक्खी हुई हैं। यह विज्ञान का सिद्धांत है कि दो पदार्थ परस्पर एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। चित्र संख्या ८ में दिखाया गया है कि यदि किसी पदार्थ को रस्सी से बाँध कर झुलाया जावे तो वह पृथ्वी की ओर सीधा झूलता है। इसके ठीक नीचे के विन्दु के साथ रस्सी की सीधी रेखा बन जाती है। कारण यह है कि उस पदार्थ को पृथ्वी अपने मध्य विन्दु की ओर आकर्षित करती है। परन्तु यदि इस लटकती हुई रेखा को किसी पर्वत के समीप ले जावें तो उसको वह भी अपनी ओर आकर्षित करेगा। अतः यह पृथ्वी के धरातल की ओर सीधी न रह कर कुछ पर्वत की ओर झुकनी चाहिये। अर्थात् चित्र में दिखाई हुई इसकी स्थिति U V न रहकर U R हो जानी चाहिये। पर्वत जितना बड़ा होगा उतना ही अधिक उसका आकर्षण होगा और उसी कदर इस रेखा का झुकाव पर्वत की ओर होगा। लगभग एक सौ वर्ष पूर्व भारत का त्रिकोणमिति की दृष्टि से निरीक्षण किया गया, तब इसका प्रयोग किया गया था। क्योंकि यह समझा गया था कि उत्तुंग हिमालय इस प्रयोग के वास्ते आदर्श पर्वत है। अतः इस प्रकार के प्रयोग हिमालय से कन्या कुमारी तक किये गये थे। इन दोनों स्थानों पर इस प्रयोग का प्रभाव देखा गया था। कई प्रयोगों को ध्यानपूर्वक देखा गया तो यह प्रकट हुआ कि नतीजा ध्यान देने योग्य नहीं है। इससे यह रोचक प्रश्न उपस्थित होता है कि विशाल हिमालय पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित क्यों नहीं करता। जे० एच० प्रेट, आर्कडीकन कलकत्ता ने १८५५ में और सर जार्ज एरी, इंगलैंड के शाही-ज्योतिषी ने इसका उत्तर दिया है। उस समय प्रथम बार यह निश्चित हुआ कि पृथ्वी के ठोस बाह्य भाग का आन्तरिक द्रव से क्या सम्बन्ध है। पर्वतों को मैदान के ऊपर पड़े हुये फालतू भूभाग
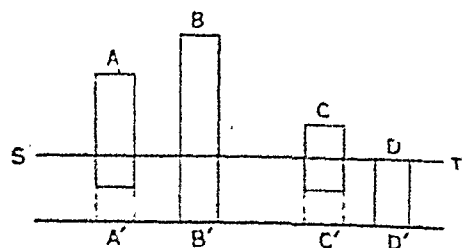
चित्र ९

नहीं समझा जाना चाहिये। ये तो चट्टानें हैं जो इनसे भी भारी द्रव पदार्थ पर तैर रही हैं। इसी भाँति पानी पर बड़े हिमखंड तैरा करते हैं। विभिन्न सामग्री से बने हुये एक प्रकार के भाग जो द्रव की अपेक्षा हलके हैं उस पर तैर रहे हैं। कोई द्रव में

अधिक घुसा हुआ है और कोई कम। देखो AA′, BB′, C′,D′, चित्र संख्या ६ में। एक भाग द्रव में सबसे अधिक धंसा हुआ है इसका तल B है और इसकी निम्नतम सतह ST है, तो इसके ऊपर के किसी भी भाग की मात्रा वही होगी जैसे AA, BB, CC, और DD′। इसी प्रकार द्रव पदार्थ के ऊपर शिलाखंड तैर रहे हैं। उनके जो भाग धरातल के ऊपर हैं वे पर्वत बन गये हैं। पर्वतों के जो भाग भूतल के अन्दर हैं वे पर्वतों के मूल हैं। अतः जब हम किसी आकर्पण रेखा पर इन पर्वतों के आकर्पण का हिसाब लगावें तो हमको वाह्य भाग को ही नहीं आन्तरिक भाग को भी ध्यान में रखना चाहिये। इन भागों की मात्रा समान है, अतः इनका खिचाव विभिन्न नहीं हो सकता। यही वात हम DD′ भाग के विपय में भी कह सकते हैं जिसका सम्बन्ध धरातल से है। अतः पर्वत के पास भी आकर्पण रेखा पर उतना ही खिचाव होगा जितना मैदान में अर्थात् पर्वत का आकर्पण शून्य के वरावर होगा। इसी को संतुलन का सिद्धान्त कहा जा सकता है। जब खिचाव शून्य है तो हम कह सकते है कि संतुलन समता पूरी है। ऐसी अवस्थायें भी हो सकती हैं कि ऐसा न हो।

### भूकम्प

कालान्तर में जब पृथ्वी और अधिक ठंडी होने लगी तो वायुमंडल की भाप जमने लगी और पृथ्वी पर प्रथम वर्षा हुई। इससे भूतल पर ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई जिसमें प्राणियों का विकास हो सके। इसका वर्णन आगे चलकर किया जावेगा। वर्षा और वायु का सर्व-प्रथम प्रभाव हुआ कि पर्वतों के शिखर पर जो चीजें थीं वे पानी से वह-वह कर सागर में आने लगीं। इस प्रकार नदियाँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार पर्वतशृंग हलके होने लगे और सागरतल अधिक भारी होने लगा। यह चित्र संख्या १० में दिखाया गया है। पर्वत AA′ के द्वारा और सागर तल BB के द्वारा दरशाया गया है। इस क्रिया से पर्वत ऊँचे होगे लगे और सागरतल नीचे धंसने लगा। इससे मध्य-स्थित चट्टानों पर वड़ा जोर पड़ने लगा। जहाँ यह दवाव अधिक हो गया वहाँ चट्टानों में भयंकर दरार होने लगी। इससे ऐसा क्षोभ हुआ जिसको दूर-दूर तक अनुभव किया गया। पर्वत और सागर की संयुक्त क्रिया से भूकम्प हुआ करता है और फिर ये दोनों शान्त हो जाते हैं और संतुलन समता पुनः स्थापित हो जाती है। भूकम्प प्रायः इसी प्रकार हुआ करते हैं।
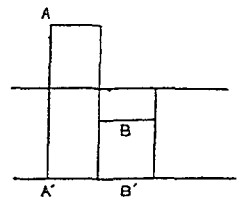
चित्र १०

नवनिर्मित पर्वतों को सम अवस्था प्राप्त करने में समय लगता है और इस प्रकार के क्षोभ उनके कारण ही उत्पन्न हुआ करते हैं। उन्हीं से पृथ्वी के भूकम्प

कटिबंध बनते हैं। पर्वतों में हिमालय युवा माने जाते हैं। अभी उनके जीवन में साम्यावस्था नहीं आई है। इस युवावस्था के कारण और इस कारण भी कि हिमालय के नीचे पर्वत संघत्ति का महाभार है हिमालय तल भूकम्प प्रदेश बना हुआ है। इसी से आसाम (१८९७), कांगड़ा (१९०५), बिहार (१९३४), क्वेटा (१९३५) और आसाम (१९५०) के भूकम्प हुए हैं। तुलना करके देखने पर ज्ञात होता है कि अरावली जैसे वृद्ध पर्वतों ने साम्यावस्था प्राप्त कर ली है।

ज्वालामुखी

कभी ऐसा होता है कि भूगर्भ का द्रव ऊपर की ओर दवाव डालता है जिससे भूतल में दरार हो जाती है। इसमें होकर यह द्रव ऊपर उछलता है और फव्वारे की भाँति भूतल के बाहर आने लगता है। एवं पृथ्वी पिघले हुये और अत्यन्त उष्ण द्रव को भयंकर रूप से उगलने लगती है। इस वमन क्रिया से ही दक्षिण भारत की उपत्यिका बनी है। वेसुवियस और एटना प्रसिद्ध ज्वालामुखी हैं। दीर्घकाल तक शान्त रहने के बाद ये पुनः-पुनः फट पड़ते हैं और उग्र-उष्ण द्रव को उगलने लगते हैं। किसी समय वेसुवियस के ऊपर पोम्पाई नामक प्रसिद्ध नगर वसा हुआ था परन्तु अकस्मात् यह ज्वालामुखी फट पड़ा और इसके उष्ण द्रव में दब कर वह समृद्ध नगर विलीन हो गया। सन् १८८३ में इसी प्रकार करकोटोआ नामक ज्वालामुखी बन गया था और भयंकर अग्नि वमन करने लगा था। यह पर्वत जावा और सुमात्रा के मध्य में सुंडा नामक टापू में स्थित है। सहसा यह ज्वालामुखी बन गया और तीन दिन तक इसमें से भीषण विस्फोट हुये जिनके कारण पृथ्वी एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक कम्पायमान हो गई। भूकम्प की उर्मियाँ पृथ्वी के चारों ओर सात बार मालूम पड़ीं। बन्दरगाहों में स्थित जहाज इनके धक्के से दूर-दूर फिक गये। कोई-कोई तो नगरों के अन्दर जा पड़े। इनमें से एक इंगलैंड के पास मिला। वायुमण्डल में धूलि के बादल छा गये और महीनों तक छाये रहे। इनसे सूर्यास्त अत्यन्त चमकीला हो जाता था। बम्बई में यह क्रिया देखी गयी थी। पर्वत और टापू अपने स्थान से उड़ गये थे और समुद्र में जहाँ कुछ नहीं था वहाँ नये टापू बन गये थे। इस बात के अच्छे प्रमाण हैं कि पृथ्वी के इतिहास में इसके बाह्य भाग पर इस प्रकार के कितने ही क्षोभ और विस्फोट हो चुके हे जिनसे पर्वतों का निर्माण हुआ है। ऐसे क्षोभयुग के बाद फिर दूसरा युग आता है जिसमें वर्षा और वायु के द्वारा पर्वतों पर प्रहार होने लगता है और वे पुनः टूट फूट कर और घिस कर भूतल के समान हो जाते हैं। पृथ्वी के इतिहास में इसको क्रान्तियुग कहा जाता है। आज से लगभग तीस करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर ऐसी क्रान्ति हुई थी। इसको केलेडोनियन क्रान्ति कहा जाता है। इसने पर्वतमालाओं को पृथ्वी के विभिन्न भागों में फेंक दिया था। आज से पन्द्रह करोड़

वर्ष पूर्व पुनः इस प्रकार की क्रान्ति हुई थी जो एपेलेचियन क्रान्ति के नाम से प्रसिद्ध है। इससे भी भूतल अति प्रक्षुब्ध हो गया था। अब उन पर्वतों में से कोई विद्यमान नहीं है। सबसे पीछे की क्रान्ति का नाम केनोजोइक है। इसने हिमालय, एंडीज और आल्प्स पर्वतों को उछाल दिया गया था। इस क्रान्ति काल में अनेक ज्वालामुखी प्रकट हुये थे। इन्हीं से दक्षिण भारत की उपत्यिका का निर्माण हुआ था। यह उस समय पिघला हुआ अत्युष्ण द्रव था जो शनैः-शनैः ठंडा होकर १०,००० फुट गहरी तह बन गया। अभी पृथ्वी का पर्वत निर्माण युग समाप्त नहीं हुआ है। हिमालय इञ्च-इञ्च ऊँचे उठते जाते हैं।

स्वभावतः पृथ्वी पर इस प्रकार के जलवायु के प्रक्षोभ होने ही चाहिये। इनका वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

### महाद्वीप व्यवस्था

पृथ्वी के वाह्य स्वरूप से हम परिचित हैं। जल और स्थल के विभाग का, पर्वत मालाओं का और उत्तर तथा दक्षिण के हिम-प्रदेशों आदि का हमको ज्ञान है। परन्तु यह रोचक प्रश्न है कि क्या पृथ्वी का वाह्य स्वरूप सदैव से इसी प्रकार का था ? इस विषय का पर्याप्त प्रमाण है कि पृथ्वी के प्रारंभिक युग में ही इसका एक महा-खंड इस महाखंड को इस समय प्रशान्त महासागर कहते हैं। इससे पृथक् होकर चन्द्रमा बन गया था। इस सागर का यह नाम प्रसिद्ध और साहसी नाविक मेगलेन ने रक्खा था। लगभग चालीस वर्ष पूर्व वेगनेर को पता चला कि संसार के कई भागों में एक से प्राणी और एकसी वनस्पति है। उसने बतलाया कि भारत, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में इस प्रकार की समानतायें दृष्टिगोचर होती हैं और इसी प्रकार की समानतायें पश्चिमी यूरोप और पूर्वी-अमेरिका में दिखाई देती हैं। इन समानताओं का एक कारण तो यह बतलाया जा सकता है कि इन भू खंडों के मध्य में किसी युग में स्थल होगा जो किन्हीं कारणों से विलीन हो गया और ये पृथक्-पृथक् हो गये। इस प्रकार का काल्पनिक स्थल एक तो उत्तर यूरोप और अमेरिका को जोड़ता होगा और दूसरा भारत तथा उसके निकट के प्रदेशों को। पहिले स्थल का नाम एटलांटिक रक्खा गया है और दूसरे का गोंडवानालेंड। वेगनेर का एक दूसरा मत है जो संसार के मानचित्र पर आश्रित है। इसको समझने के वास्ते धरातल का मानचित्र नहीं बल्कि पृथ्वी का गोल चित्र देखना चाहिये। यदि हम एफ्रिका से चलें और अमेरिका की ओर बढ़ें तो हम देखते हैं कि उत्तर-पश्चिम को निकला हुआ एफ्रिका का भूभाग संयुक्त अमेरिका के दक्षिण-पश्चिम भूभाग और ब्राजिल के समीपस्थ भाग में अच्छी तरह बैठ सकता है। उत्तरी अमेरिका के उत्तर-पूर्व समुद्र तट की रेखा उत्तर-पूर्व की ओर जाती हुई यूरोप के उत्तर-पश्चिम समुद्र तट की रेखा से जा मिलती है। सोमालीलेंड अदन की

खाड़ी में रक्खा जा सकता है और लाल समुद्र ब्राजिल गीनी की खाड़ी में अच्छा जंचता है। भारत अरब से मिल सकता है और दक्षिण के महागर्त में आस्ट्रेलिया को ढकेला जा सकता है। संक्षेप में समस्त वर्तमान प्रदेश एक दूसरे के साथ सटाये जा सकते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि आरम्भ में समस्त स्थल एक था। फिर कभी उसमें दरार हो गई और
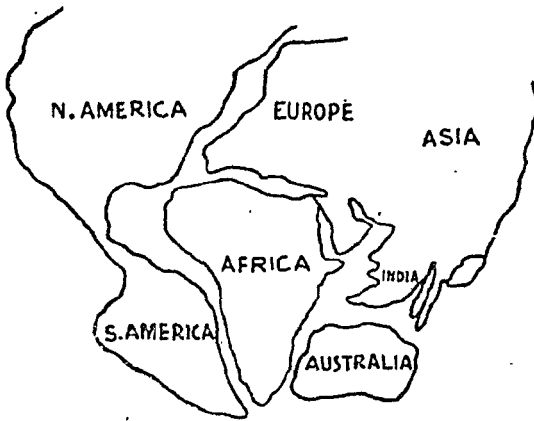
चित्र ११

इसके विभिन्न खंड पृथक्-पृथक् होकर वर्तमान स्थिति में आ गये। हम देख चुके हैं कि पृथ्वी का स्थल खंड द्रव सागर पर तैर रहा है। यही महाद्वीपों के इधर-उधर होने का कारण है। परन्तु यह निर्णय निर्विवाद नहीं है।

**पृथ्वी का अन्तर्गर्भ**

पृथ्वी के गर्भ का केवल उस समय पता लगता है जब कोई ज्वालामुखी आग उगलने लगता है। परन्तु पृथ्वी के भीतर ही भीतर भी भूकम्प हो सकता है। उसका प्रभाव हमको धरातल पर मालूम पड़ता है। इससे मनुष्य जाति की हानि और क्षति होती है; वह तो पृथक् विषय है। यहाँ हमें यह अध्ययन करना चाहिये कि यह अन्तःप्रक्षोभ क्या है और इसके क्या लक्षण हैं।

यह देखा गया है कि किसी रेल के किसी स्थिर डिब्बे को धकेला जावे तो वह अपने समीपस्थ डिब्बे को धकेलने लगता है और उसको धकेल कर स्वयं ठहर जाता है। दूसरा डिब्बा तीसरे को धकेलता है। इसी प्रकार यह क्रम चलता जाता है। यदि डिब्बे को रेल पर न धकेल कर जोर से बाहर की ओर खींचा जावे तो इससे डिब्बा पटरी से नीचे गिर जायगा। इसी प्रकार के प्रभाव किसी ठोस छड़ पर देखे जा सकते हैं। इसके एक छोर पर जोर की चोट मारी जावे तो उस स्थान पर छड़ सिकुड़ जाती है और यह संकोच दूसरे छोर तक पहुँचता है। छड़ के

चित्र १२

एक छोर की चोटें, धक्के आदि का प्रभाव इसके दूसरे छोर पर भी जाता है। यदि

हमको छड़ की लम्बाई का पता हो और हम यह भी जानते हों कि चोट का प्रभाव एक छोर से दूसरे छोर पर कितने समय में पहुँचता है तो हम इस क्षोभ की गति मात्रा भी मालूम कर सकते हैं। इस प्रकार के धक्के और खिंचाव के सिलसिले को विज्ञान में लंब तरंग कहा जाता है और ये पदार्थ की तीनों अवस्थाओं में अर्थात् ठोस, द्रव और गैस में उत्पन्न की जा सकती हैं। लम्बतरंगों का साधारण उदाहरण है ध्वनि। इसका वाहन पवन अर्थात् गैस है। जब ध्वनि की गति होती है तो पवन में दबाव, तनाव और विरलता का सिलसिला बन जाता है। ध्वनि गले से, ढोल से या हारमोनियम की रीड आदि से उत्पन्न होती है या वाद्य के तार से। ध्वनि जल आदि द्रव में भी चलती है और सुनाई देती है। इसकी गति ठोस में भी होती है।

यदि कोई लम्बी रस्सी निश्चित समय तक ठहर-ठहर कर ऊपर और नीचे खींची जावे तो उससे तरंगें उत्पन्न होती हैं जो निश्चित गति के साथ रस्सी से नीचे की ओर जाती हैं। AB, CD या EF तरंग की लम्बाई द्योतित करते हैं। जितनी बार एक सेकंड में रस्सी का छोर या उसका कोई अन्य बिन्दु ऊपर जाता है या नीचे आता है उसको तरंगावृत्ति कहते हैं। गति, आवृत्ति और तरंग लम्बता का सम्बन्ध $v = f \times d$ से बतलाया जाता है।
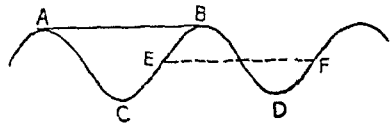
चित्र १३.

यदि किसी ठोस का कोई क्षेत्र AB ऊपर और नीचे सरकाया जावे तो इस प्रकार की गति सारे ठोस में व्याप्त हो जावेगी और ठोस के बाह्य भाग के प्रत्येक कण में यह ऊपर और नीचे की गति मालूम होगी। ऐसी तरंगे और रस्सी पर की तरंगे आड़ी (Transverse) तरंगे कहलाती हैं। इनका ठोस के द्वारा ही स्थानान्तर होता है क्योंकि इनका वाहन दृढ़ होना चाहिये। फिर भी द्रव या गैस को काटा नहीं जा सकता क्योंकि उनमें दृढ़ता नहीं है। वे आडी (Transverse) तरंगों को वहन नहीं कर सकते परन्तु ठोसों की भांति उनको दबाया या बढ़ाया जा सकता है और वे लम्ब तरंगों को वहन कर सकते हैं।
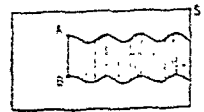
चित्र १४

जब कांच की गरम तश्तरी पर ठंडे पानी की बूंद गिराई जाती है तो जहाँ वह गिराई जाती है वहाँ ठंडक हो जाती है और उससे कांच में संकोचन होने लगता है। इससे कांच में खिंचाव होकर तड़क हो जाती है और चट सी ध्वनि होती है जो सुनाई भी देती है। कांच में आडे और प्रलंब ( Transverse and Longitudinal ) दोनों प्रकार के क्षोभ उत्पन्न हो

जाते हैं जो सर्वत्र फैल जाते हैं। यदि तरंगों के सामने कोई विघ्न आता है तो वे वापिस मुड़ जाती हैं। यदि दूसरे माध्यम की सीमा उनके सामने आ जाती है तो वे उसमें प्रवेश करती हैं, तब उनका मार्ग तथा गति बदल जाती है।
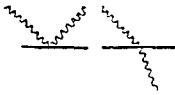
चित्र १५
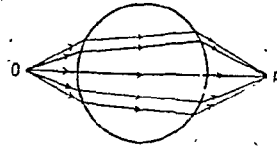
चित्र १६

यदि एक वस्तु के O विन्दु से तरंगें चलें और जो विघ्न उनके सामने आवे वह दूसरी पार-दर्शक वस्तु का बना हुआ हो और गोल हो तो तरंगें उस मार्ग को ग्रहण करेंगी जो चित्र में दिखाया गया है, और P विन्दु पर सब आकर एकत्र हो जावेंगी। यह लैंन्स की क्रिया है। यहाँ लैंन्स एक गोला है।

जब पृथ्वी में एक दरार हो जाती है तो यही दशा होती है। यह दरार किसी ऐसे दबाव या खिंचाव से होती है जिनसे भूकम्प उत्पन्न होते हैं। इससे आडी और प्रलंब (Transverse and Longitudinal) दोनों प्रकार की तरंगों की सृष्टि होती है। यदि भूकम्प की उत्पत्ति विन्दु O है तो R विन्दु के समीप खड़ा हुआ व्यक्ति दोनों प्रकार की तरंगें अनुभव करेगा। पहले एक प्रकार की तरंगें आवेंगी और फिर दूसरी प्रकार की। क्योंकि दोनों की गति (Velocity) अलग अलग हैं। पहले प्रलंब (Longitudinal) तरंग आवेगी। इसको प्रारंभिक तरंग या P तरंग भी कहते हैं।
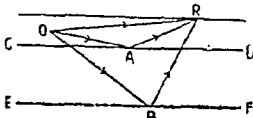
चित्र १७

इसके थोड़ी देर बाद आड़ी (Transverse) तरंग आवेगी। इसको द्वितीयतरंग या S तरंग भी कहते हैं। यह बात तो भली भांति समझ में आती है। परन्तु इन तरंगों के बाद दूसरी तरंगों की जोड़ी आती है। यदि पृथ्वी विभिन्न सामग्री से बनी हुई चट्टानों के दलों से रची हुई है तो तरंगों के मार्ग O विन्दु से R विन्दु तक OR, OAR, OBR, आदि होंगे क्योंकि विभिन्न दलों की CD, EF आदि सीमाओं से वे मुड़ जावेंगी। तरंगों की गति और उनकी यात्रा के समय के ज्ञान से हम मालूम कर सकेंगे कि दलों की मोटाई क्या है और वे किस सामग्री से बनी हुई हैं। तरंगें विभिन्न स्थानों पर अर्थात् A, B आदि पर कितने समय पर पहुँचती हैं इससे हम उनकी गति निकाल सकते हैं। दूरी OX से और यात्रा का समय
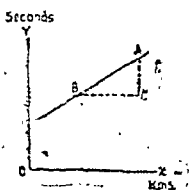
चित्र १८

OY से बतलाया गया है। दूरी अर्थात् BC में समय का अर्थात् AC का भाग देने से गति निकल सकती है। इस भाँति हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि पृथ्वी चट्टानों के तीन दलों से ढंकी हुई है। सब से ऊपर का दल Sedimentary Rock उससे नीचे का Granite Rock और तीसरा Basalt Rock कहलाता है। दूसरे दल का घनत्व २.६५ होता है और मोटाई ३० किलोग्राम। तीसरे दल का घनत्व २.८५ किलोग्राम होगा। इन तीनों प्रकार के दलों में प्राथमिक तरंगों की गति ५.६, ६.७ और ७.८ होती है। Km/sec होती है और द्वितीय तरंगों की गति ३.४, ३.६ और ४.३ Kms/sec होती है। Basaltic चट्टानें अर्ध-द्रव्य पर तैरा करती हैं।

यह सर्व विदित है कि ज्यों-ज्यों हम कुएं में या किसी खान में घुसते जाते हैं त्यों-त्यों गर्मी बढ़ती जाती है और यह ताप वृद्धि लगभग ३०° C/ Km, या १६° F/ १००० होती है। इस गति से आगे बढ़ते-बढ़ते १००°C या २१२°F का तापमान जिस पर पानी उबलने लगता है ७२०० फुट की गहराई पर मिलेगा। इससे भी आगे हम बढ़ते जाएं तो ५० किलोमीटर की गहराई पर १२००°C या २२००°F का तापमान हो जायगा। इस तापमान पर चट्टानें पिघल जाती हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि हम ५० किलोमीटर की गहराई में द्रवित चट्टानों के प्रवेश में पहुँच गये हैं। भूकम्प की तरंगों के आधार पर हमने जो उपरोक्त तरीका निकाला है उसकी इससे पुष्टि होती है।

५० किलोमीटर की. गहराई पर हम अनुमान करते हैं कि वेसान्टिक चट्टानें अर्ध-द्रवित अवस्था में होंगी जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। परन्तु इससे भी अधिक पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश किया जाये तो वहां क्या अवस्था होगी ? क्या पृथ्वी के अन्तर भाग में वैसी ही भयंकर अवस्था है जिसकी नर्क के सम्बन्ध में लोगों ने कल्पना की है। लेकिन हम पृथ्वी का साधारण सा चित्र बनावें और यह मानें कि पृथ्वी के अत्यन्त उष्ण आन्तरिक गर्भ भाग का अर्ध-व्यास OR है। और उसके वाह्य दल AB का अर्ध-व्यास OQ है। अब यदि C विन्दु पर भूकम्प हुआ तो उसकी तरंगे आन्तरिक भाग में यात्रा करेंगी। यह चित्र में दर्शाया गया है और D विन्दु पर आकर सब मिल जायेंगी। वाहर भूतल पर तरंगे AB क्षेत्र में मालूम पड़ेंगी। जो तरंगे वाहर के दल में हो कर चलेंगी वे EHF क्षेत्र में फैल जायेंगी इस प्रकार AE,BF एक खाली गोल क्षेत्र बन जायेगा। जिसकी स्थिति C के दूसरी ओर होगी जहां पर तरंगे नहीं पहुँचेंगी। यह ध्यान देने योग्य वात है कि यह प्रभाव उन भूकम्पों में देखा गया है जो इतने प्रवल होते हैं कि उनकी तरंगें धरातल पर सर्वत्र
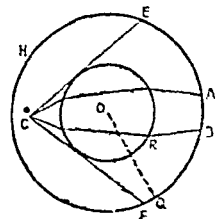
चित्र १६

जान पड़ती हैं और इससे भी अधिक विशेष बात यह है कि AB प्रदेश में केवल प्रलंब (Longitudinal) तरंगें होती हैं और आड़ी (Transverse) तरंगों का लेशमात्र भी नहीं होता। ठोसों में ये दोनों प्रकार की तरंगे होती हैं। किन्तु द्रवों में केवल प्रलंब (Longitudinal) तरंगें ही मिलती हैं। इससे यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वी का आन्तरिक मध्य द्रव है। इसका अर्ध-व्यास पृथ्वी के अर्ध व्यास से ०.६ गुणा है अर्थात् २५०० मील या ३८०० किलोग्राम है। इस अन्तर भाग का तापमान ५०००°C हो सकता है। इतना ही तापमान पृथ्वी का उस समय था जब वह सूर्य से पृथक हुई। धरातल की चट्टानों का घनत्व पानी से २.६ गुणा है और पृथ्वी का औसत घनत्व ५.५ है। इससे प्रकट होता है कि ज्यों-ज्यों गहराई में घुसते हैं त्यों-त्यों घनत्व बढ़ता जाता है और जब पृथ्वी के अन्दर मध्य बिन्दु पर पहुँचें तो यह घनत्व लगभग ६ हो जाता है। यह घनत्व लोहे का है या उन पदार्थों का है जिनमें लोहा होता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि अन्दर के मध्य भाग का अर्ध-व्यास २४०० मील है और वह लोहे का या ऐसे पदार्थों का जिनमें लोहा है बना हुआ है और द्रवित अवस्था में है।

पृथ्वी ने अन्तर्गर्भ की सीमा से वहाँ तक जहाँ से पृथ्वी का धरातल ५० किलोमीटर रह जाता है कुछ ठोस और कुछ द्रव पदार्थ का चोला है जिसके ऊपर ठोस बेसाल्ट और ठोस ग्रेमाइट का ५० किलोमीटर मोटा दल है। बिलकुल बाहर का ठंडा और ठोस छोड़ा केवल कुछ ही किलोमीटर गहरा है। इसी में खनिज पदार्थ हैं। सबसे ऊपर की मिट्टी तो केवल कुछ ही फुट गहरी है। इसमें बीज के अंकुर निकलते हैं, पौधे पनपते हैं, खेत लहलहाते हैं और बाग लगते हैं। इसकी रक्षा के लिए हमको खूब ध्यान देना चाहिये। जल और वायु से, पशुओं को चाहे जहाँ चराने से और बहुत गहरा-हल चसाने से मिट्टी कट जाती और बह जाती है और पीछे रेतीला मैदान रह जाता है।

---

# तीसरा अध्याय

## गति, वल, ऊर्जा और शक्ति

हमारी पृथ्वी प्रवल वेग से सूर्य की परिक्रमा कर रही है। इसके और सूर्य के बीच नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी है। सूर्य को केन्द्र और पृथ्वी की कक्षा को वृत्त मानें तो यह दूरी उसका अर्द्धव्यास है। पृथ्वी की गति प्रति सेकंड १८.५ मील है। यह अपनी उत्तर-दक्षिण ध्रुव कीली पर एक दिन में एक वार घूम जाती है। इसका जो भी विन्दु विषुवत रेखा पर होता है वह १०४० मील प्रति घन्टे की गति से पूरा चक्र लगा लेता है। भूतल एक जैसा नहीं है। कहीं ऊँचे और विषम पर्वत हैं, कहीं गहन सागर हैं और सर्वत्र प्राणी और पौधे हैं। पशु और मनुष्य इस पर आराम से विचरण कर रहे हैं। क्या यह विचित्र वात नहीं है कि पृथ्वी तल पर आसानी से हिलते चलते हुये पदार्थ भूतल से गिर कर अलग नहीं हो जाते और इसी से चिपके रहते हैं। एक मनुष्य पृथ्वी के एक ओर और दूसरा मनुष्य ठीक उसके सामने पृथ्वी के दूसरी ओर खड़ा हुआ है या बैठा हुआ है। उनको कौनसी शक्ति थामे हुये है, यह विचारने की बात है। पृथ्वी समस्त पदार्थो को अपनी ओर खींचती रहती है। यह प्रकृति का बड़ा महत्वपूर्ण सिद्धांत है। आज से वहुत पहिले विज्ञानकों ने इस वात का पता लगा लिया था कि छोटे और वड़े सव प्रकार के पदार्थो को पृथ्वी अपनी ओर इस प्रकार खींचती है कि वे वरावर की ऊँचाई से समान समय में नीचे की ओर गिरते हैं। किसी ऊँचाई से किसी पदार्थ को छोड़िये वह पृथ्वी पर लम्व वनाता हुआ ऐसी गति के साथ गिरेगा जो निरन्तर वढ़ती जायेगी। यह वृद्धि इस प्रकार की है कि एक सेकेंड में यह वत्तीस फुट या ९८१ सेन्टीमीटर हो जाती है। दूसरे सेकेंड के वाद यह ६४ फुट हो जाती है और तीसरे में ९६ फुट और इसी क्रम से जव तक पदार्थ भूतल पर नहीं पहुँच जाता है यह वढ़ती रहती है अर्थात् यह गति प्रति सेकेंड ३२ फुट वढ़ती है। इसको ३२ फुट /sec या ९८१ सेन्टीमीटर /sec प्रति सेकिन्ड से प्रकट किया जाता है।

**जड़ता और वल**

अव हम विचार करें कि स्थिर पदार्थों में क्यों गति आ जाती है और इसी प्रकार यह भी सोचें कि जो पदार्थ गतिमान हैं उसकी गति में क्यों अन्तर आ जाता है। साधारण वुद्धि तो यह कहती है कि जो पदार्थ स्थिर है वह स्थिर ही रहना चाहिये और जो पदार्थ सीधी रेखा वनाता हुआ समान गति से चल रहा है उसको

उसी प्रकार चलता रहना चाहिये। इसको जड़ सिद्धान्त या Principle of inertia कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि पदार्थ में यथापूर्व रहने की प्रवृत्ति है। यदि यह पहिले से स्थिर है तो सदैव स्थिर रहेगा और यदि पहिले से यह निरन्तर गतिमान है तो गतिमान रहेगा। फिर भी हम यह देखते हैं कि स्थिर पदार्थ चलने लगते हैं। जो पदार्थ पहिले से चल रहे हैं वे या तो अधिक तीव्र गति से चलने लगते हैं या उनकी गति शिथिल हो जाती है। अब देखना है कि इनकी जड़ता क्यों जाती रहती है। स्थिर या गतिमान पदार्थ की स्वाभाविक स्थिति में जो अन्तर आ जाता है उसके क्या कारण हैं। इसके लिये जड़ता पर कोई बाहर से क्रिया होती है। इसलिये जड़ पदार्थ में जब कोई क्रिया आती है तो वह किसी बाह्य प्रभाव का बल है। प्रत्यक्षतः पदार्थ जितना भारी होगा उतना ही अधिक बल उसमें गति उत्पन्न करने के लिये आवश्यक होगा और जितनी गति उसमें उत्पन्न करना है उतने ही बल की भी आवश्यकता होगी। संक्षेप में हम कह सकते है कि यदि मात्रा में कोई गति उत्पन्न करनी है और उस गति का मान है Cm/sec/sec, तो उसके लिये जितने बल की आवश्यकता होगी उसको $F = m \times a$ से प्रकट किया जावेगा। अगर मात्रा जिसमें गति उत्पन्न करना है एक ग्राम है और बल के द्वारा उसको 1. Cm/sec/sec गति देना है तो कहा जाता है कि बल एक डाइन (One dyne) है। यह बल की एक इकाई है।

हम रेलगाड़ी का उदाहरण लें। मान लो कि गाड़ी खड़ी है। इंजिन इसको अपने स्थान से चलाता है और कुछ समय में इसको कुछ गति देता है। तब यह गति ग्रहण करती है। आरम्भ में गाड़ी को खींचने के लिए एंजिन को जोर से खींचना पड़ता है। जब एक-सी गति डिब्बों में आ जाती है तब फिर उसको सम-स्थल मार्ग पर अर्थात् रेल पर दौड़ाने के लिये बल की आवश्यकता नहीं रहती। तो भी एंजिन जोर लगाता रहता है। यह क्यों? इसका कारण यह है कि कई प्रकार की रगड़ के बल को दबाना होता है। प्रथम रेलों की रुकावट, फिर पट्टियों की और धुरियों की रगड़ और तदुपरान्त वायु का प्रतिरोध। यह सिद्धान्त सब प्रकार के वाहनों पर लागू होता है। चाहे वह रेल का एंजिन हो, मोटर गाड़ी हो, बाईसिकल हो या बैलगाड़ी हो। पहियों में और धुरों में जितनी कम रुकावट होगी और मार्ग जितना चिकना होगा उतना ही वाहन को चलाने में कम प्रयास होगा। रेल के बराबर अन्य कोई मार्ग चिकना नहीं होता। विविध प्रकार की रुकावटों को कम करने के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न किये जाते हैं। इसी प्रयोजन के लिये ball bearings or Roller bearings काम में लाये जाते हैं। दूसरी बात यह की जाती है कि रुकावट को कम करने के लिये इन बियरिंग्ज bearings में चिकनाई लगाई जाती है।

गुरुत्वाकर्षण (Gravitation)

१० किलोग्राम की मात्रा पृथ्वी पर ६८१ Cm/sec/sec की गति से गिरती है। इसलिये पृथ्वी इसे अपनी ओर इतने वल से खींच रही है जो १०००० × ६८१ = ६८१०,००० dynes के वरावर है। दूसरा पदार्थ भी जिसकी मात्रा एक ग्राम है उसी गति से भूतल पर गिरता है। इसलिये पृथ्वी इसको १ × ६८१ = ६८१ dynecs वल से खींच रही है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पृथ्वी का खिचाव पदार्थ मात्रा के अनुपात के अनुसार है। इसलिये पृथ्वी दोनों पदार्थों को खींच तो रही है परन्तु हम यह व्यापक नियम वना सकते हैं कि जव दो पदार्थ एक दूसरे को आकर्षित करते हैं तो जो पदार्थ भारी होता है उसमें उसी के अनुसार वल होता है। प्रत्यक्ष में दोनों पदार्थों के वीच की दूरी को ध्यान में रखना चाहिये। हमको इस वात का पता है कि दो पदार्थों के वीच की दूरी जितनी अधिक होगी उतना ही उनका आकर्षण कम होगा। यदि दूरी दुगुनी कर दी जाय तो आकर्षण वल चौथाई हो जाता है। यदि दूरी को तीन गुनी कर दिया जाय तो वल नवांश रह जाता है। इसी क्रम से यह घटता जाता है। व्यापक रूप से कह सकते हैं कि दूरी को x गुणा वढ़ाने से वल $x^2$ गुणा घट जाता है।

भौतिक विद्या के एक प्रसिद्ध प्रयोग से यह पता लगा है कि दो मात्राओं में प्रत्येक १ ग्राम की हो और दोनों के वीच में १ सेन्टीमीटर की दूरी हो तो उनके आकर्षण वल की मात्रा ०.०००,०००,०६६ dyne या $६.६ \times १०^{-८}$ dyne होगी। यहाँ से प्रारम्भ करके हम निम्नलिखित रीति से हिसाव लगा सकते हैं:—

A mass of 1 gm. attracts a mass of 1 gm. at 1 cm. with force
$6.6 \times 10^{-8}$ dynes

„ „ „ 10 gm. „ „ „ „ „ „ „ „ „ „
$6.6 \times 10 \times 10^{-8}$ dynes.

„ „ „ 10 gm. „ „ „ „ 100 „ „ „ „
$6.6 \times 10 \times 100 \times 10^{-8}$ dynes.

„ „ „ 100 gm. „ „ „ „ 100 „ 5 cm „ „
$6.6 \times 10 \times 100 \times 10^{-8}/25$
$= .0000026$ dynes.

इसी प्रकार हम किन्हीं दो पदार्थों के आकर्षण का हिसाव लगा सकते हैं। पृथ्वी मात्रा की m ग्राम मान लिया जाये और भूतल पर किसी दूसरे पदार्थ की मात्रा भी m ग्राम मान लिया जाये। इन दोनों के वीच की दूरी पृथ्वी का अर्ध-व्यास अर्थात्

R सेन्टीमीटर मान लिया जाये तो आकर्षण का बल $६.६ \times १०^{-८} \times m \times m/Q^2$ dynes होगा। इतने बल से पृथ्वी पदार्थों को अपने केन्द्र की ओर खींचती है। यदि कोई पदार्थ इस बल के प्रभाव में आ जाता है तो उसकी गति उस लब्धि के बराबर होगी जो बल में गिरने वाले पदार्थ का भाग देने से प्राप्त होती है। अर्थात् वह $६\cdot६ \times १०^{-८} \times m/R^2$ cm/sec/sec के बराबर होगा। गिरने वाले पदार्थ की मात्रा चाहे जितनी हो गति यही होगी। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि समस्त पदार्थ एक ही गति से गिरते हैं। हम जानते हैं कि $R = 6\cdot36 \times 10^8$ cms, और हम अनुभव से यह भी जानते हैं कि गिरने वाले पदार्थ की गति 981 cm/sec/sec होती है। इसलिये दोनों गतियों के सूचक अंकों को बराबर रखने पर $6\cdot6 \times 10^{-8} \times m/(6.36 \times 10^8) = 981$ होता है। इससे हमको पृथ्वी की मात्रा मालूम हो जाती है जो $६ \times १०^{२७}$ ग्राम अर्थात् $६ \times १०^{२१}$ टन है। इससे आकाश स्थित पदार्थों को तोलने के लिये नया नाप स्थिर होता है। यदि हम पृथ्वी की मात्रा को इकाई मान लें तो सूर्य ३२६३६० इकाइयाँ होता है। विभिन्न नक्षत्रों का पुंज तालिका में बताया गया है। हमको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि विभिन्न तारा समूह के तारे उसी मात्रा के हैं जिसका सूर्य बना हुआ है। इनमें से करोड़ों हमें दिखाई देते हैं और शायद करोड़ों ही दृष्टिगत नहीं होते।

जब दो पदार्थ एक दूसरे को आकर्षित करते हैं तो इस आकर्षण का बल उनकी मात्रा के अनुपात से होता है और जब वे एक दूसरे से दूर हटने लगते हैं तो उनके बीच की दूरी के वर्ग के अनुपात से होता है। इसी को पृथ्वी का आकर्षण कहते हैं। इसी नियम के अनुसार पृथ्वी और ग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य और तारों पर यही नियम लागू होता है। छोटे और बड़े सब पदार्थ अर्थात् सूर्य, तारे, ग्रह और छोटे से छोटे कण इस नियम के अधीन हैं। आकर्षणके बल से ही भूतल पर विविध पदार्थ टिके रहते हैं। जिस बल से पृथ्वी किसी पदार्थ को अपने धरा-तल पर खींचती है उसी को साधारण भाषा में भार कहते हैं। इसलिये वास्तव में १ ग्राम मात्रा का भार ९८१ डाइन्स (Dynes) होता है।

## कार्य और ऊर्जा (Work and Energy)

जब हम पृथ्वी पर से कोई वजन उठाते हैं तो हम कुछ काम करते हैं। उसको जितना ऊंचा उठाया जाये उतना ही अधिक कार्य होता है और इसी प्रकार पदार्थ जितना भारी होगा उतना ही अधिक कार्य होगा। इस प्रकार कार्य के विचार में बल और दूरी दोनों का समावेश है। कार्य का इन दोनों के साथ अनुपात है। बल पर विजय पाना और दूर तक पदार्थ को ले जाने को कार्य कहते हैं। इसका सूत्र है $W = F \times D$

एक ग्राम की मात्रा को पृथ्वी अपनी ओर ९८१ डाइन्स (Dynes) के बल से खींचती है। यदि उस पदार्थ को ठीक ऊपर की ओर एक मीटर की दूरी तक खींचा जाये तो कार्य की मात्रा होगी W = F × D = ९८१ × १०० । इसको ९८१०० कार्य की इकाइयाँ कह सकते हैं। यह इकाई क्या है। यह वह कार्य है जो एक डाइन (Dyne) के बल पर विजय पाने के लिये और उसको एक सेन्टीमीटर की दूरी तक हटाने के लिये किया गया है। इसी को ergs कहते हैं। इस प्रकार उपरोक्त उदाहरण में जो काम हुआ है उसकी मात्रा ९८१०० ergs है। इसका उल्टा यह हुआ कि १ ग्राम पुंज का कोई पदार्थ एक मीटर दूरी से आकर्षण के द्वारा गिरता है तो कार्य की मात्रा ९८१००० ergs होती है। यदि m ग्राम पुंज का कोई पदार्थ पृथ्वी से h सेन्टीमीटर की ऊँचाई पर थाम लिया जाता है तो उसमें इस ऊँचाई से गिरने की क्षमता है। गिरते समय पृथ्वी उसको अपनी ओर m × ९८१ के बल से खींचेगी । इसलिए यह पदार्थ h ऊँचाई से गिरने में m × ९८१ × h ergs का काम करेगा। पदार्थ के अन्दर जो काम करने की क्षमता है वह इसलिए है कि वह एक विशेष स्थिति में है। इस लिए कहा जाता है कि उसमें तिरोहित ऊर्जा है। उपरोक्त उदाहरण में इस थमे हुए पदार्थ में ९८१ × m × h ergs तिरोहित ऊर्जा potential energy है।

पतन की दूरी जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक गति से पदार्थ भूमि पर गिरेगा। गिरने वाले पदार्थ की गति ९८१ cm/sec/sec के हिसाब से बढ़ती है। ज्यों-ज्यों गिरने वाले पदार्थ की दूरी कम होती जाती है त्यों-त्यों उसकी तिरोहित ऊर्जा घटती जाती है लेकिन इसकी गति बढ़ती जाती है। इसकी पतन क्रिया जल्दी-जल्दी होने लगती है। अब यह नवीन प्रकार की ऊर्जा प्राप्त करता है। इसी को गति ऊर्जा या Kinetic enegy कहते हैं। यह ऊर्जा ज्यों-ज्यों बढ़ती है त्यों-त्यों तिरोहित ऊर्जा घटती जाती है या यों कहा जा सकता है कि तिरोहित ऊर्जा गति ऊर्जा का रूप धारण करती जाती है। m ग्राम मात्रा के पदार्थ की गति ऊर्जा अगर वह V cm/sec की गति से चल रहा हो तो $\frac{1}{2}mv^2$ ergs होती है। हम एक उदाहरण लें। १०० ग्राम मात्रा का एक गेंद १ किलोमीटर की ऊँचाई पर पृथ्वी के ऊपर थमा हुआ है। इस अवस्था में उसकी तिरोहित ऊर्जा १०० × ९८१ × १००००० = ९,८१०,०००,००० ergs है। एक सेकेंड के पश्चात् इसकी गति ९८१ cm/sec होती है और इसकी गति ऊर्जा $\frac{1}{2}$ × १०० × ९८१ × ९८१ = ४.८१३ × १०$^{७}$ ergs हो जाती है। यह ४९०.५ सेन्टीमीटर नीचे उतर आया है। इसलिये इसकी तिरोहित ऊर्जा १०० × ९८१/४९०.५ = ४.८१३ × १०$^{७}$ ergs कम हो गई है। यह गति ऊर्जा में जो वृद्धि हुई है उसके बराबर है। यह इस बात का उदाहरण है कि तिरोहित ऊर्जा को शक्ति ऊर्जा में किस प्रकार बदला जा सकता है। जब पदार्थ भूमि तल से टकराता

है तो इसकी सम्पूर्ण तिरोहित ऊर्जा गति ऊर्जा में बदल जाती है। इसकी तिरोहित ऊर्जा १०० × ६८१ × १००००० ergs है। यदि भूतल को स्पर्श करते समय इसकी गति V cm/sec है तो इसकी गति ऊर्जा ½ × १०० × V² = १०० × ६८१ × १०००००। इससे हम हिसाब लगा सकते हैं कि भूतल पर पहुँचने पर पदार्थ की गति ११०१० cm/sec होगी।

इससे पाठकों की समझ में आ जायेगा कि ऊर्जा सीधी रीति से या उल्टी रीति से काम में बदल जाती है। उससे तिरोहित ऊर्जा और गति ऊर्जा का उदाहरण भी मिलता है। गिरता हुआ पदार्थ अपनी तिरोहित ऊर्जा को गति ऊर्जा में बदल देता है और यदि उसको ठीक ऊपर की ओर फेंका जाये तो उसकी गति ऊर्जा कम हो जाती है और उतनी ही मात्रा में उसकी तिरोहित ऊर्जा की वृद्धि हो जाती है।

### ऊर्जा, उसके विभिन्न रूप और उसका संचय

अब हमको ऊर्जा के अन्य परिचित स्वरूपों का अध्ययन करना चाहिये। यदि हम किसी पदार्थ को गरम करते हैं तो उसका तापमान बढ़ने लगता है। हिमवत् शीतल जल का तापमान ०°C या ३२°F होता है। समुद्र की सतह पर उबलते हुये जल का तापमान १००°C या २१२°F होता है। १ ग्राम जल का १°C तापमान बढ़ाने के लिये जितनी गरमी की आवश्यकता होती है उसको केलोरी (Calorie) कहते हैं। इस प्रकार १ किलोग्राम जल को ५०°C तक गरम करने के वास्ते १००० × ५० = ५०,००० केलोरीज की आवश्यकता होगी।

गरमी का स्वभाव क्या है? यह दो पदार्थों को परस्पर संघर्षण से, कोयला, तेल आदि जलाने से और विजली के लेम्प में करेंट ले जाने से उत्पन्न की जा सकती है। पहले यह विश्वास था कि गरमी स्वभावतः द्रव है और सब पदार्थों में इसका विकास है। यह उनको दवाने आदि क्रियाओं से निकाली जा सकती है। इस द्रव को क्लोरिक कहा जाता था। काउन्ट रम्फोर्ड और हम्फ्रे डेवी ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि दो पदार्थों को परस्पर जब तक आपस में रगड़ा जाता है तब तक गरमी उत्पन्न होती रहती है। क्या इसका यह अर्थ है कि पदार्थों के अन्दर अमित क्लोरिक हैं। इसकी अपेक्षा यह मानना क्या अधिक स्वाभाविक नहीं होगा कि उत्पन्न गरमी का सम्बन्ध संघर्षण क्रिया से है। इस तर्क का अनुसरण करते हुये जोल ने प्रयोग से सिद्ध किया कि कार्य को गरमी में बदला जा सकता है। इस प्रकार गरमी को ऊर्जा के विभिन्न स्वरूपों में स्थान मिल गया। जोल ने नाप किया जिससे प्रकट हुआ कि एक केलोरी गरमी उत्पन्न करने के लिये ४२०००,००० ergs कार्य आवश्यक है।

इससे विपरीत विधि का अर्थात् गरमी को कार्य में बदलने का हमारे लिये विशेष महत्व है। क्योंकि यह एंजिन का सिद्धान्त है। भाप के इंजिन का आविष्कार उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ तो इसने समाज की काया पलट दी। औद्योगिक क्रान्ति से पश्चिमीय यूरोप का राजनैतिक महत्व बहुत बढ़ गया। संसार की राजनीति एक प्रकार से इसी के हाथ में आ गई। गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक और प्रेरणा और स्फूर्ति उत्पन्न हुई। अब ऐसे एंजिन का आविष्कार हुआ जिसमें कोयला नहीं किन्तु तेल जलता है। इसको अन्तरग्नि एंजिन (Internal Combustion Engine) कहते हैं। इस आविष्कार से यात्रा विधि के नये क्षेत्र दिखाई देने लगे। इसी से मोटर कार, वायुयान और अन्य वाहन चलने लगे।

जब बिजली के डायनोमों का आविष्कार हुआ तो ऊर्जा के प्रबल स्रोत का पता लगा। किसी धातु के तार में जब बिजली का करेंट चलाया जाता है तो गरमी और प्रकाश पैदा होते हैं। इससे हमको बिजली का लैम्प मिला। विद्युत् ऊर्जा गरमी और प्रकाश का रूप धारण कर लेती है।

हम कुछ जल लेकर उसमें एसिड के कुछ बूंद डालें और उसमें बिजली का करेंट चलावें तो पानी के तत्व पृथक्-पृथक् हो जावेंगे और हाइड्रोजन तथा आक्सीजन प्रकट हो जावेंगे। यदि यह करेंट सिल्वर नाइट्रेट में चलाया जावेगा तो चांदी अलग हो जावेगी और दूसरी धातु पर चिपक जावेगी। यही बिजली साजी या (electroplating) का तरीका है। यही Nickel plating, chromiun plating तथा Silver and gold plating की विधि हैं। इसी विधि से नमक के घोल में से क्लोरीन को अलग किया जा सकता है और अन्य रसायनिक पदार्थ भी अपने नमक और कच्ची धातुओं में से निकाले जा सकते हैं। इन विधियों से रसायनिक उद्योग में बड़ी क्रान्ति आ गई है। इनमें विद्युत ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में बदल दी जाती है।
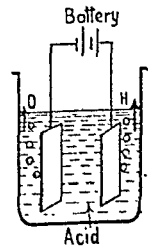
चित्र २०

इसकी विपरीत विधि यह है कि रसायनिक ऊर्जा विद्युत् ऊर्जा में बदल दी जाती है। इसके उदाहरण हैं बिजली के सेल्स जो टार्च लेम्पों में या विद्युत की बेटरियों में काम में लिये जाते हैं। इन बेटरियों का उपयोग मोटर गाड़ियों में होता है।

इसके बाद हम भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के महत्वपूर्ण व्यापक सिद्धान्त पर पहुँचते हैं। वह यह है कि ऊर्जा का विनाश नहीं होता, उसका केवल रूपान्तर हो सकता है। इसका रूपान्तर चाहे जितना हो उसका परिमाण सदैव उतना ही रहता है। जब ऊर्जा का रूपान्तर होता है तो जितनी
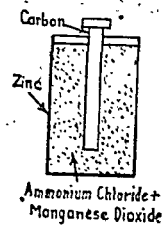
चित्र २१

पहिले रूप में क्षति होती है दूसरे रूप में ठीक उतना ही लाभ हो जाता है। प्रकृति में जो ऊर्जा की मात्रा है वह ज्यों की त्यों बनी रहती है। इसी को ऊर्जा संचय का सिद्धान्त (Principle of Conservation of Energys) कहते हैं।

शक्ति (Power)

यह तो हमारा नित्य प्रति का अनुभव है कि हम ऊर्जा उत्पन्न करते हैं और उसका उपयोग करते हैं। इतना ही नहीं, हम यह भी चाहते हैं कि ऊर्जा की उत्पत्ति और उपयोग जल्दी-जल्दी हो। हमको मन्द दीपक की अपेक्षा तेज दीपक अच्छा लगता है। अन्तर यह है कि तेज दीपक में ऊर्जा अधिक शीघ्रता से खर्च होती है। हम जल्दी गरमी उत्पन्न करने के लिए हीटर पसन्द करते हैं। अर्थात् हम चाहते हैं कि हमको ऊर्जा जल्दी मिल जाय। कुए में से जल निकालने का एंजन वह अच्छा माना जाता है जो जल्दी-जल्दी पानी निकाल सके। अब हम इस विषय पर आते हैं कि कार्य करने की रफ्तार क्या है। इसकी इकाई मानी गई है १०,०००,००० Ergs प्रति सैकंड या एक जोल (Joule)। ऊर्जा की उत्पत्ति या खपत जिस रफ्तार से होती है उसको शक्ति (Power) कहा जाता है। शक्ति की उपरोक्त इकाई को वाट (Watt) कहते हैं। एक किलोवाट एक हजार वाट के बराबर है। शक्ति की दूसरी प्रचलित इकाई हार्स पावर कहलाती है। १ हार्स पावर = ७४६ वाट्स।

अब हम निम्न लिखित समीकरण बना सकते हैं:—

1 Watt = 1 Joule/sec; therefore, 1 Joule = 1 Watt $\times$ 1 Second, or 1 Watt-second. From this, we derive a bigger unit, the kilowatt hour; and 1 Kwt-hr = 1000 watt $\times$ 3600 seconds = 3600000 Watt-seconds = 3,600,000 Joules = 3,600,000,000,000 ergs. As we have seen, 1 calorie = 4.2 Joules; therefore, 1 Kwt-hr = 3,600,000/4.2 = $8.6 \times 10^{5}$ calories.

Kwt-hr ऊर्जा की प्रचलित इकाई है। इसी को बोर्ड आफ ट्रेड इकाई Board of Trade Unit (B. T. U.) कहते हैं। किसी मकान में कितनी बिजली खर्च हुई, इसको नापने के वास्ते इसी इकाई का उपयोग किया जाता है और इसी पर खर्चा लिया जाता है।

बिजली के लेम्प को या अन्य किसी प्रकाश साधन को आंकने के लिये यह देखा जाता है कि ऊर्जा को खर्च करने की उसमें कितनी शक्ति है। लेम्प १० वाट, २५ वाट या १०० वाट का होता है और हीटर १००० वाट का होता है। तो १०० वाट का लेम्प १० घंटे में १ Kwt-hr ऊर्जा खर्च करेगा। इतनी ही ऊर्जा १००० वाट का हीटर एक घंटे में खर्च करेगा। एवं जिस नगर की जन संख्या पाँच लाख होगी वहाँ २०,०००

किलोवाट ऊर्जा खर्च हो सकती है। बिजली उत्पन्न करने वाले स्टेशन पर इंजिन और डायनोमो कितना काम करने वाले होने चाहिये—इसका विचार इसी आधार पर किया जाता है।

### तरंगें (Waves)

हम देख चुके हैं कि रस्सी, ठोस, द्रव या गैस को पुनः-पुनः हिलाने से तरंगें उत्पन्न होती हैं। इनके द्वारा ऊर्जा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकती है। यदि हम रस्सी के छोर को हिलावें तो सारी रस्सी में कम्पन होने लगते हैं। इस प्रकार शान्त जल में हम अपने हाथ को ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की ओर हिलावें तो जल की सतह पर तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं और यदि कोई काष्टखंड दूर पानी पर पड़ा हुआ हो तो ऊपर नीचे फुदकने लगता है। जब भूकम्प होता है तो तरंगे पृथ्वी के गर्भ से ऊपर की ओर बड़े प्रबल वेग से दौड़ती हैं और उनसे जो क्षति होती है उससे हम इनकी घोर प्रबलता का अनुमान लगा सकते हैं। ध्वनि तरंगें ऊर्जा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हैं। इनका माध्यम वायु है परन्तु ये तरंगे इतनी प्रबल नहीं होतीं। परन्तु यदि वायु में तरंगें या विक्षोभ प्रबल हो तो हमको उसकी दुखद अनुभूति होती है। जब कोई बोम्ब फटता है तो वायु में विक्षोभ तरंगे उत्पन्न होती हैं और उनके सम्पर्क बल से बड़े-बड़े भवन धराशायी हो जाते हैं। बबूले के बल से, ज्वार भाटे की तरंगों से और झक्कड़ के जोर से क्षति हो सकती है उससे हम परिचित ही हैं।

### प्रकाश, विकिरण और वर्णपट (Light, Radiation & Spectrum)

प्रकाश का अनुभव मनुष्य को होता ही रहता है। इससे वह खूब परिचित है। हम देखते हैं कि सूर्य, तारों, दीपक, अग्नि, विद्युत् दीपक, बिजली और उषा से प्रकाश आता है। जिन पदार्थों पर वह पड़ता है उनको आलोकित कर देता है, इससे छाया होती है। दर्पण में यह दिखाई देता है और लैन्स तथा प्रिज्म इसको वितरित (Refracted) कर देते हैं। इसी से कैमरा, टेलीस्कोप और माइक्रोस्कोप में स्वरूप बनते हैं। तो इसका स्वभाव क्या है ? यह कणों की धारा है जिनको मोड़ा जा सकता है और जिनको दर्पण में देखा जा सकता है; या यह तरंग धारा है जिसमें ये ही लक्षण प्रकट होते हैं। यदि ऐसा है तो हमको यह नहीं भूलना चाहिये कि तरंगों में कुछ विलक्षण गुण है। उदाहरणार्थ एक तरंग दूसरी तरंग को अपने स्थान में किसी बिन्दु पर नष्ट कर देती है। यदि यही बातें हम प्रकाश पर लागू करें तो दो ओर से आने वाला प्रकाश जब एक स्थान पर मिले तो वहाँ अन्धेरा हो जाना चाहिये। या रुपया जैसे आलोकित वर्तुलाकार पदार्थ में प्रकाशित केन्द्र होना चाहिये। ये परिणाम इतने असंगत हैं कि इन पर गम्भीरता से विचार भी नहीं करना चाहिये। न्यूटन ने

ही इस तरंग सिद्धान्त को नहीं माना था। परन्तु विज्ञान की सच्ची विधि यह है कि प्रत्येक प्रतिज्ञा (Hypothesis) को प्रयोगात्मक परीक्षा के द्वारा जाँचा जावे। न्यूटन ने ऐसा नहीं किया था। जब बड़ी सावधानता से प्रयोग किये गये तो देखा कि एक प्रकाश में दूसरा प्रकाश मिलने पर अन्धेरा हो जाता है और वर्तुलाकार प्रकाशित पदार्थ की छाया में भी केन्द्र खूब प्रकाशित होता है। इससे प्रकाश का तरंग सिद्धान्त स्थापित हो गया। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि प्रकाश तरंगों का वाहन क्या है। प्रकाश हमको सूर्य और तारों से प्राप्त होता है परन्तु इनके और हमारे मध्य में तो बड़ा रिक्त स्थान है। इसलिये प्रकाश रिक्त स्थान में चल सकता है और यह इसका माध्यम है। वर्तमान विज्ञान में यह एक विरोधी बात है। प्रकाश निश्चित गति से चलता है। तरंगों की लम्बाई (Wave length) होती है और उनकी आवृत्ति होती है। कितने ही प्रयोग करके फिजो (Fezeau) और फोकाल्ट (Foucalt) ने रिक्त स्थान में प्रकाश की गति को नापा था। उनको पता लगा था कि यह १८६००० मील प्रति सेकण्ड या ३,०००,०००,००० cm/sec या ($3 \times 10^{0}$ cm/sec) है। यह ऐसी गति है कि इससे अधिक किसी भी पदार्थ की गति नहीं हो सकती। भौतिक विज्ञान के वेत्ताओं ने प्रकाश की गति को सर्वप्रकार से देख लिया है और यह विज्ञान का निश्चय है कि यह एकसी रहती है। तरंग की लम्बाई नापने का प्रश्न भी हल हो चुका है। बहुत अर्से पहले इस बात का पता लग गया था कि तरंग की लम्वाई (Wave Length) प्रकाश के रंग पर अवलम्बित है। यदि श्वेत प्रकाश को किसी लोलक (प्रिज्म) में से पार किया जावे तो वह अपने विभिन्न रंगों में विभक्त हो जाता है। प्रकाश में सात रंग हैं—बेंजनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल। इसको दृश्यमान वर्ण पट्ट (Spectrum) कहते हैं। रक्त प्रकाश की तरंग लंबाई (वेव लेंग्थ) ०.००००७५ सेन्टीमीटर है, पीत प्रकाश की वेव लेंथ ०.००००६ है, हरित प्रकाश की ०.००००५ सेन्टीमीटर और गहरे बेंजनी की ०.००००४ है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि स्पेक्ट्रम इस अवधि से आगे बढ़ता है या नहीं। इसके लिये हमारी आँख से काम नहीं चलेगा, कुछ अन्य साधनों का उपयोग करना पड़ेगा। स्पेक्ट्रम क्षुद्र तरंगों (Short wave length) की ओर अल्ट्रा वायोलेट की अवधि तक रह जाता है। अल्ट्रावायलेट विकरण का सम्पन्न स्रोत सूर्य है और यह कृत्रिम स्रोतों से भी प्राप्त की जाती है। अल्ट्रावायलेट अवधि से खासा परे एक्स रे (X-Ray) है जो खूब गहराई में प्रवेश करती है और इनकी तरंग लम्बाई (Wave Length) केवल ०.०००,०००२ से ०.०००,००००१ सेन्टीमीटर तक होती है। एक्सरे से कुछ परे के प्रकाश विकरण को
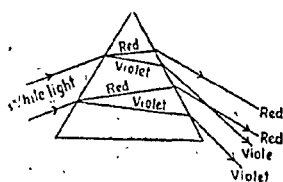
चित्र २२

गामारेज (Gamma Rays) कहते हैं जो तेजोद्गर (Radio Active) वस्तुओं में से निकाली जाती है जिनकी वेव लेंथ केवल ०.००,०००,०००५ सेन्टीमीटर होती है। इसके बड़े बाजू की ओर तरंगों की लम्बाई ०.१ सेन्टीमीटर तक होती है। ये रेडियन्ट ऊर्जा की ताप किरणें हैं और आगे की अवधि पर ऐसी रेडियो तरंगें हैं जिनको मीटर
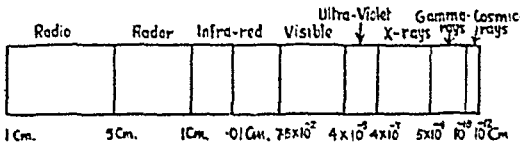
चित्र २३

से नापा जाता है और जो कई किलोमीटर या मीलों तक पहुँचती हैं। इनके मध्य में रोचक तरंगों का एक क्षेत्र है जिनकी लम्बाई सेन्टीमीटर से नापी जाती है और जिसका उपयोग रेडर (Radar) प्रणालियों में होता है। ये अति महान् और अति क्षुद्र तरंगें सब एक ही गति से चलती हैं अर्थात् इन सबकी गति $३ \times १०^{१०}$ cm/sec है परन्तु इनके गुणों और उपयोगों में आश्चर्यकारी भिन्नता है।

इस ब्रह्मांड में प्रकृति का व्यवस्थित विभाग हो रहा है। इसमें तारे और तारा समूह हैं। जो सागर पर जड़ प्रकृति के टापुओं के रूप में तैर रहे हैं। यह सागर प्रकाश तरंगों से ओत-प्रोत है। इनमें गामारेज भी है और रेडियो रेज भी जो इसमें सर्वत्र संचरण करती रहती हैं। यह विकिरण (radiation) पदार्थ से होता है और यह इसी में पुनः विलीन हो जाता है। इसके अतिरिक्त पदार्थ के विनाश से भी प्रकाश ऊर्जा निकलती है। पदार्थ ऊर्जा के रूप में परिणत हो जाता है। यह हम आगे देखेंगे।

# चौथा अध्याय

## पदार्थ रचना, अणु और परमाणु

(Structure of matter, molecules and Atoms)

पदार्थ किसे कहते हैं ? हम पदार्थ के बने हुए हैं और पदार्थ के नाना रूपों से घिरे हुये हैं। इन्हीं में पृथ्वी, जल, वायु, पौधे, वनस्पति, जीव और जड़ सब सम्मिलित हैं। इस विस्मयजनक नानात्व को देखते हुये पदार्थ के ज्ञान में कोई सरलता या व्यवस्था नहीं हो सकती परन्तु विज्ञान ने यह कर दिखाया है और यही विज्ञान का चमत्कार है। पहले तो हमको यह मानना चाहिये कि तीन अवस्थायें—ठोस, द्रव और गैस—केवल सापेक्षिक हैं। कोई भी वस्तु एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित हो सकती है। उदाहरणार्थ, हिम, जल और गैस तीनों एक ही वस्तु की तीन अवस्थायें हैं। वायु का द्रव बन सकता है और चट्टानें पिघलाई जा सकती हैं। उनका तरल गैस भी बन सकता है। मान लो कि हम एक C. C. जल लें और उसको दो आधे C. C. S. में विभक्त कर दें और दोनों भागों में से प्रत्येक को दो अंशों में विभक्त कर दें। इसी प्रकार हम विभाग करते जावें तो क्या यह क्रिया चलती ही रहेगी। इसका उत्तर है—नहीं। इस विधि से हम ऐसी अवस्था में पहुँच जावेंगे जब आगे विभागीकरण असम्भव हो जावेगा क्योंकि विभाग करते करते जो एक भाग होगा यह इतना छोटा हो जावेगा कि उसके फिर खंड नहीं हो सकते। यह पानी का क्षुद्रातिक्षुद्र खंड होगा। इसको जलाणु (molecule of water) कहते हैं। इसी प्रकार किसी भी अन्य वस्तु के अणु हो सकते हैं। क्या जलाणु के और भी छोटे विभाग हो सकते हैं ? यहाँ हमको यह ध्यान में रखना चाहिये कि वस्तुयें प्रायः विघटित होकर अन्य वस्तुयें बन जाती हैं। इसके विपरीत वे पुनः समन्वित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ जल को विघटित करके हाइड्रोजन और आक्सीजन में परिवर्तित किया जा सकता है और इन दोनों को मिलाकर Oxide of Hydrogen या जल बन जाता है। इसी प्रकार साधारण नमक का विभाजन करते-करते मेटल सोडियम और गेस क्लोरीन बन जाता है और इनको मिलाने से पुनः साधारण नमक बन जाता है। इसी प्रकार नाइट्रोजन और आक्सीजन गैसों को मिलाने से Oxides of Nitrogen उत्पन्न होता है, और अब तक पाँच प्रकार के Oxides of Nitrogen ज्ञात हो चुके हैं। इनमें से प्रत्येक के हम खंड-खंड कर डालें तो हमको ज्ञात होगा कि प्रत्येक में नाइट्रोजन और अक्सीजन का क्या अनुपात है।

ध्यान देने के योग्य बात यह है कि पांचों आक्साइडों में नाइट्रोजन का आक्सीजन के का अनुपात भार की दृष्टि से यह है :—७:४, ७:८, ७:१२, ७:१६ और ७:२० । इस अनुपात को हम कैसे समझा सकते हैं, विशेष कर जब Oxides of nitrogen के पांच अणु या molecules को हम ध्यान में रक्खें ? इसको समझने का सरल साधन यह है। हमको यह जानकर आगे बढ़ना चाहिये कि अणु में कई परिमाणु होते हैं। इस उदाहरण में ये परिमाणु आक्सिजन और नाइट्रोजन के हैं और इनका अनुपात ७ के किसी अपवर्त्य का ४ के किसी अपवर्त्य के साथ है अर्थात् $a \times 7 : b \times 7$ है। नाइट्रोजन और आक्सिजन के इन छोटे से छोटे अंश एटम्स या परमाणु कहलाते हैं। जब इनका हम और भी पृथक्करण करते हैं तो a और b का मूल्य क्रमशः २ और ४ निकलता है। पांचों प्रकार के आक्साइड के अणुओं में नाइट्रोजन और आक्सिजन की संख्या यदि २ और १, २ और २, २ और ३, २ और ४ और २ और ५ है तो नाइट्रोजन और आक्सिजन का अनुपात बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार आक्सिजन के भी २ आक्साइड्स हैं, जल और हाईड्रोजन पैरोक्साइड हैं जिनमें हाईड्रोजन और आक्सीजन का अनुपात १:८ और १:१६ है। यहां पर हमको पता लगता है कि हाईड्रोजन और आक्साइड के परमाणु १:१६ के अनुपात में होते हैं अर्थात् पानी में यदि हाईड्रोजन के २ परमाणु होते हैं तो आक्सीजन का १ होता है और हाईड्रोजन के २ परिमाणु तथा आक्सीजन के भी दो परमाणु से हाईड्रोजन पैरोक्साइड बनता है।

अब हम इस महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि अणु कितने ही परमाणुओं (atoms) से बने हुए हैं। विभिन्न वस्तुओं के अणुओं को तोड़ने से हमको विभिन्न प्रकार के एटम्स का पता लग गया है। परमाणुओं को तोड़ कर फिर और छोटे अंश नहीं बनाये जा सकते क्योंकि ये अविभाज्य है। जो वस्तुयें एक ही प्रकार के परमाणुओं से बनी हुई होती हैं उनको एलिमेंटस् या तत्व कहते हैं। एवं उपरोक्त पृथक्करण के अनुसार हाइड्रोजन आक्सीजन और नाइट्रोजन तत्व हैं। आश्चर्य की बात यह है कि वस्तुयें तो अगणित हैं परन्तु तत्वों की संख्या नियत है और यह भी निश्चित है कि परमाणु कितने प्रकार के हैं। वास्तव में प्रकृति में अभी ९२ तत्वों का पता लगा है। एवं केवल ९२ प्रकार के परमाणुओं से प्रकृति ने ब्रह्मांड की रचना की है। इन्हीं से पृथ्वी, नक्षत्र और सूर्य तथा अखिल जगत का निर्माण हुआ है। तत्वों को उनके परमाणुओं की मात्रा के अनुसार व्यवस्था से रक्खा जा सका है और उनकी सापेक्षिक मात्रा भी निकाली जा सकती हैं। हाइड्रोजन का एटम सबसे हल्का और छोटा है। इसकी मात्रा को इकाई मान कर अन्य प्रकार के एटम्स को नापा जा सकता है। इन सब का परिमाण तालिका नं० २ में दिया हुआ है।

## तालिका २

| | Symbol | Atomic No. | Atomic Weight |
|---|---|---|---|
| Actinium | .... Ac | 89 | 227 |
| Aluminium | .... Al | 13 | 26.98 |
| Americium | .... Am | 95 | (235–247) |
| Antimony | .... Sb | 51 | 121·76 |
| Argon | .... A | 18 | 39 944 |
| Arsenic | .... As | 33 | 74.91 |
| Astatine | .... At | 85 | .... |
| Barium | .... Ba | 56 | 127·36 |
| Berkelium | .... Bk | 97 | (243–249) |
| Beryllium | .... Be | 4 | 9·013 |
| Bismuth | .... Bi | 83 | 209·00 |
| Boron | .... B | 5 | 10·82 |
| Bromine | .... Br | 35 | 79·916 |
| Cadmium | .... Cd | 48 | 112·41 |
| Calcium | .... Ca | 20 | 40·08 |
| Californium | .... Cf | 98 | (244–28) |
| Carbon | .... C | 6 | 12·011 |
| Cerium | .... Ce | 8 | 140·13 |
| Caesium | .... Cs | 55 | 132·91 |
| Chlorine | .... Cl | 17 | 35·457 |
| Chromium | .... Cr | 24 | 52·01 |
| Cobalt | .... Co | 27 | 58·94 |
| Columbium | .... Cb | 41 | 92·91 |
| Copper | .... Cu | 29 | 63·54 |
| Curium | .... Cm | 96 | (238–249) |
| Dysprosium | .... Dy | 66 | 162·46 |
| Einsteinium | .... | 99 | (246–256) |
| Erbium | .... Er | 68 | 167·2 |
| Europium | .... Eu | 63 | 152·0 |
| Fluorine | .... F | 9 | 19·00 |
| Francium | .... Fr | 87 | .... |

| | Symbol | Atomic No. | Atomic Weight |
|---|---|---|---|
| Gadolinium, | .... Gd | 64 | 156·9 |
| Gallium | .... Ga | 31 | 69·79 |
| Germanium | .... Ge | 32 | 72·60 |
| Gold | .... Au | 79 | 197·0 |
| Hafnium | .... Hf | 12 | 178·6 |
| Helium | .... He | 2 | 4·003 |
| Holmium | .... Ho | 67 | 164·94 |
| Hydrogen | .... H | 1 | 1·0080 |
| Indium | .... In | 59 | 114·76 |
| Iodine | .... I | 53 | 126·91 |
| Iridium | .... Ir | 77 | 192·2 |
| Iron | .... Fe | 26 | 55·85 |
| Krypton | .... Kr | 36 | 83.80 |
| Lanthanum | .... La | 57 | 188·92 |
| Lead | .... Pb | 82 | 207·21 |
| Lithium | .... Li | 3 | 6·904 |
| Luteoium | .... Lu | 71 | 174·99 |
| Magnesium | .... Mg | 12 | 24·32 |
| Manganese | .... Mn | 25 | 54·94 |
| Mendelevium | .... | 101 | 256 |
| Mercury | .... Hg | 80 | 200·61 |
| Molybdenum | .... Mo | 42 | 95·95 |
| Neodymium | .... Nd | 60 | 144·27 |
| Neon | .... Ne | 10 | 20·183 |
| Neptunium | .... Np | 93 | 239 |
| Nickel | .... Ni | 28 | 58·69 |
| Niobium | .... Nb | 41 | 92·91 |
| Nitrogen | .... N | 7 | 14·008 |
| Nobelium, | | 102 | 2 |
| Osmium | .... Os | 76 | 190·2 |
| Oxygen | .... O | 8 | 16·000 |
| Palladium | .... Pd | 46 | 106·7 |

| | Symbol | Atomic No. | Atomic Weight |
|---|---|---|---|
| Phosphorus | .... P | 15 | 30·975 |
| Platinum | .... Pt | 78 | 195·23 |
| Plutonium | .... Pu | 94 | 239 |
| Polonium | .... Po | 84 | 210 |
| Potassium | .... K | 19 | 39·100 |
| Praseodymium | .... Pr | 59 | 140·92 |
| Protoactinium | .... Pa | 91 | 231 |
| Radium | .... Ra | 88 | 226·05 |
| Radon | .... Rn | 86 | 222 |
| Rhenium | .... Re | 75 | 186·31 |
| Rhodium | .... Rh | 45 | 102·91 |
| Rubidium | .... Rb | 37 | 85·48 |
| Ruthenium | .... Pu | 44 | 101·1 |
| Samarium | .... Sm | 62 | 150·43 |
| Scandium | .... Sc | 21 | 44·96 |
| Selenium | ... Se | 34 | 78·96 |
| Silicon | .... Si | 14 | 28·09 |
| Silver | .... Ag | 47 | 107·880 |
| Sodium | .... Na | 11 | 22·991 |
| Strontium | .... Sr | 38 | 97·63 |
| Sulphur | .... S | 16 | 32·066 |
| Tantalum | .... Ta | 73 | 180·95 |
| Technetium | .... Tc | 43 | ... |
| Tellurium | .... Te | 52 | 127·61 |
| Terbium | ... Tb | 65 | 185·93 |
| Thallium | .... Tl | 81 | 204·39 |
| Thorium | .... Th | 90 | 232·05 |
| Thulium | .... Tm | 69 | 168·94 |
| Tin | .... Sn | 50 | 128·70 |
| Titanium | .... Ti | 22 | 47·90 |
| Tungsten | .... W | 74 | 183·92 |
| Uranium | .... U | 92 | 238·07 |

| | Symbol | Atomic No. | Atomic Weight |
|---|---|---|---|
| Vanadium | .... V | 23 | 50 95 |
| Xenon | .... Xe | 54 | 131 3 |
| Ytterbium | .... Yb | 70 | 137·04 |
| Yttrium | .... Y | 39 | 88·92 |
| Zino | .... Zn | 30 | 65·38 |
| Zirconium | .... Zr | 40 | 91·22 |

अब हम अणु (Molecule) की प्राकृतिक रचना को समझ सकते हैं। अणु और परमाणु कितने बड़े हैं ? वर्तमान नाप तोल इतना ठीक है कि हम अणु और परमाणु के नाप और उनकी मात्रा को जान सकते हैं। हाइड्रोजन एटम को एटम और मोलेक्यूल (अणु और परमाणु) की मात्रा की इकाई माना जाता है, इसलिए इसकी मात्रा ठीक ज्ञात होने पर अन्य अणु और परमाणुओं की मात्रा भी ज्ञात हो सकती हैं। हाइड्रोजन की मात्रा ०.००;०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० ग्राम या $१.६७ \times १०^{-२४}$ ग्राम ज्ञात हुई है। तो जलपरिमाणु की मात्रा होगी $(२+१६) \times १०^{-२४} \times १.६७ = ३.० \times १०^{-२३}$ ग्राम । अपनी स्वाभाविक अवस्था में हाइड्रोजन ऐसे अणुओं का बना हुआ होता है जिनमें प्रत्येक में दो हाइड्रोजन परमाणु होते है। इसलिए उसकी मात्रा $३.३४ \times १०^{-२४}$ ग्राम होता है। यह अणुओं में सबसे छोटा होता है । हाइड्रोजन परमाणुओं में एक दूसरे के बीच का फासला यह है ०.०,०००,०००, ०७५ सेन्टीमीटर या $७.५ \times १०^{-६}$ सेन्टीमीटर। हाइड्रोजन एटम का केन्द्र वर्तुलाकार है और उसका अर्द्धव्यास $१०^{-१३}$ cm सेन्टीमीटर है । इससे हम हाइड्रोजन अणु का चित्र बना सकते हैं। अणु इतने छोटे होते हैं कि यदि हाइड्रोजन अणुओं को पास पास सटाकर जमाया जावे तो एक सेन्टीमीटर की लम्बाई में १३३,०००००० मोलेक्यूल आवेगा। हम इनकी तुलना उन सेन्टीमीटरों की संख्या से कर सकते हैं जो पृथ्वी के चतुरांश वृत की लम्बाई को प्रकट करते हैं। यह वृत्त ध्रुव बिन्दु में होकर खींचा हुआ माना जाता है अर्थात् १०००,०००,००० सेन्टीमीटर। किसी गैस के एक घन सेन्टीमीटर में कमरे के साधारण तापमान और दबाव पर लगभग २७,०००,०००,०००,०००,०००,००० या $२.७ \times १०^{१६}$ अणु होते हैं। इसकी संसार की आबादी से तुलना कीजिये जो दो अरब तीस करोड़ है। यदि इन अणुओं को मनुष्यों की भांति बसाया जावे तो १०,०००,०००,००० से भी अधिक पृथ्वीयों की आवश्यकता होगी। अर्थात् गैस के एक घन सेन्टीमीटर में जितने अणु होते हैं उनको मनुष्यों की भांति बसाने के लिये उपरोक्त संख्यक पृथ्वियों से भी अधिककी आवश्यकता
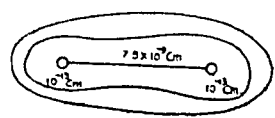
चित्र २४

होगी। आक्सीजन या नाइट्रोजन का प्रत्येक अणु ४०,००० cm/sec की गति से इधर-उधर दौड़ता रहता है और अन्य अणुओं से प्रति सेकेंड सेकेंडों करोड़ वार टकराया करता है।

उपरोक्त वर्णन से प्रकृति का अनन्त विस्तार हमारे सामने आ जाता है। इस अपार प्रपंच में सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ है और महान से महान भी। सूक्ष्म इतने हैं कि अणुवीक्षण यन्त्र (Microscope) में भी दिखाई नही देते। हाइड्रोजन के परमाणु का अर्द्धव्यास $१०^{-८}$ सेन्टीमीटर से भी कम है। उधर इस ब्रह्मांड की ज्ञात सीमा पर ऐसे तारे हैं जिनकी दूरी करोड़ों प्रकाशवर्ष द्वारा नापी जा सकती है। और यह समस्त सृष्टि केवल ९२ तत्वों से रची हुई है।

प्रकृति परमाणु से अणु की रचना करती है। ये अणु Diatomic molecule कहलाते है। हाइड्रोजन और आक्सीजन के अणु भी ऐसे ही होते है। प्रत्येक अणु में दो परमाणु होते है जिनका आकार लम्वा होता है। ज्यों-ज्यों परमाणुओं की संख्या वढती जाती है त्यों-त्यों उनका आकार भी विविध प्रकार का होता जाता है—किसी का कैसा होता है और किसी का कैसा। पानी के अणु के तीन परमाणुओं की व्यवस्था सीधी रेखा में नही किन्तु त्रिकोण होती। अमोनिया नामक साधारण गैस के अणु में चार परमाणु होते है। इनमें एक नाइट्रोजन का होता है और तीन हाइड्रोजन के। इनकी रचना पिरेमिड जैसे और अत्यन्त व्यवस्थित होती है। पिरेमिड का आधार तीन हाइड्रोजन परमाणुओं से वनता है जो समबाहु त्रिकोण होता है। इसकी एक भुजा की लम्बाई $१.६६ \times १०^{-८}$ सेंन्टीमीटर होती हे। इस पर नाइट्रोजन का परमाणु स्थित रहता है और वह हाइड्रोजन के प्रत्येक परमाणु से $१ \times १०^{८}$ सेन्टीमीटर की दूरी पर होता है। इस पिरेमिड के आकार के वहुत अणु होते है।
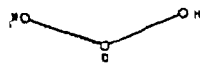
चित्र २५
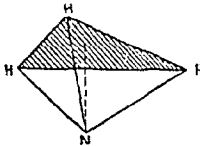
चित्र २६

मिथेन (Methane) या दलदल की गैस के अणु का वर्ग भी रोचक है। इसके प्रत्येक अणु में एक कार्वन का परमाणु और चार हाइड्रोजन के परमाणु होते हैं। इसकी रचना में भी वड़ी व्यवस्था है। मध्य में कार्वन का परमाणु होता है और उसके चारो ओर हाइड्रोजन के चार परमाणु स्थित होते हैं। इन चारो मे प्रत्येक परमाणु मध्य-स्थित परमाणु से $१.१ \times १०^{-८}$ सेन्टीमीटर की दूरी पर रहता है। इस प्रकार समचतुःपार्श्व ठोस वन जाता है।
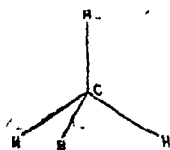
चित्र २७

# पाँचवाँ अध्याय

## मणिभ

वस्तुओं के एक महत्वपूर्ण वर्ग का नाम मणिभ (Crystals) है। साधारण नमक, शक्कर, कई धातुओं और हीरे के मणिभ बनते है। इनकी विशेषता यह है कि इनका आकार निश्चित होता है। उदाहरणार्थ नमक के मणिभ घनकार होते हैं। मणिभ के टुकड़े करने पर भी मणिभ ही बनते है। इनका आकार और छोटा होता जाता है। नमक को पीस दिया जावे तो उसके कितने ही मणिभ बन जाते हैं। ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि मणिभ की रचना अत्यन्त व्यवस्थित होती है। सब से सरल उदाहरण नमक का है। नमक का एक अणु दो परमाणुओं का बना हुआ होता है। इनमें एक परमाणु सोडियम का और एक क्लोरीन का होता है। जब मणिभ बनाया जाता है तो ये व्यवस्था के साथ अपनी स्थिति ग्रहण कर लेते हैं। एक घन पर विचार कीजिये। इसके छः पार्श्व और आठ कोण होते हैं। इन कोणों पर बारीबारी से क्लोराइड परमाणु X और सोडियम परमाणु O को रखते जाओ। पूरे मणिभ की यही सीधी सादी रचना है। मणिभ को सब दिशाओं में फैलाओ — ऊपर, आगे और पीछे। प्रारम्भिक घन की आवृत्ति करते जाओ जिसकी लम्बाई $२\cdot८ \times १०^{-८}$ सेन्टीमीटर है। इससे समस्त मणिभ का चित्र बन जाता है। अब हम समझ सकते हैं कि नमक का बड़ा मणिभ छोटे-छोटे मणिभ में क्यों विभक्त हो जाता है। इसके पार्श्वों के बीच में एक जैसे कोण बनते हैं। मणिभ कई प्रकार के होते हैं – घन, पिरेमिड, समानान्तर, चतुर्भुज आदि। इन सबका समान लक्षण यह है कि सबका स्वरूप व्यवस्थित होता है। और सबके परमाणु व्यवस्था के साथ जमे हुए होते हैं। यह बात ठोस अवस्था पर लागू होती है। तरलावस्था में नमक या शक्कर में मणिभ नहीं होते और गैस की अवस्था में अणुओं का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है।
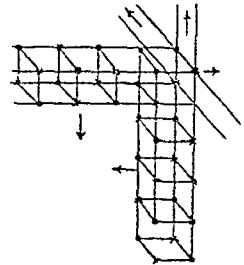
चित्र २८

खनिज मणिभों का बहुत बड़ा समूह है चाहे वे हीरे हों, नीलम हों, लाल हों, पन्ने हों या रेते के क्वार्टज हों या उपयोगी जिप्सम और केल्कसपार हों। मणिभों का

दूसरा महत्वपूर्ण समूह जो प्रत्यक्ष में मणिभ समूह प्रतीत नहीं होता धातुएँ या मिश्रित धातुएँ हैं। तांवे में तो परमाणुओं की व्यवस्थित जालियां बनी हुई हैं। लोहा उसका मिश्रण और फौलाद ठोस अवस्था में मणिभों की रचना है।

रसायनिकों का एक महत्वपूर्ण वर्ग ऐसे कणों का परिवार है जो कार्बन और हाइड्रोजन के परमाणुओं से बना हुआ है। ये परमाणु एक रेखा में व्यवस्था के साथ जमे हुए रहते हैं। ये रसायनिक पेरेफिन (Paraffins) कहलाते हैं और इनमें मिट्टी का तेल, पैट्रोल, ऊंगण तेल (Lubricating oil) वेसलीन और मोमबत्ती सम्मिलित हैं। स्वाभाविक तेल कई वस्तुओं से मिल कर बनता है। इनको छानकर और अलग करके यह साफ किया जाता है। पैंट्रोल ४०°C और ६०°C के बीच में उड़ जाता है और मिट्टी का तेल १५०°C और ३००°C के बीच में उबल कर उड़ जाता है। पैंट्रोल के अणु की रचना निम्न प्रकार है :—
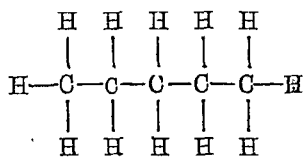
और मिट्टी के तेल का अणु इनसे बड़ा होता है। उदाहरणार्थ :—
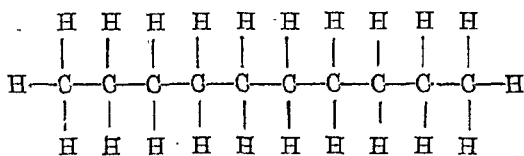
अर्थात् $C_{10}$ । $H_{22}$ ऊंगण तेल, वेसलीन और मोम में बड़े अणु होते हैं लेकिन उनकी रचना उपरोक्त प्रकार की ही होती है। इन बड़े अणुओं को तोड़ कर छोटे अणु बनाये जाते है। इस क्रिया को अंग्रेजी में क्रेकिंग (Cracking) कहते हैं। तेल के कारखानों में इस क्रिया का उपयोग किया जाता है।

पेरेफिन (Paraffins) के अणु जैसी रचना वाले अन्य अनेक अणु होते हैं। मद्य उद्योग और जलने वाले तेलों के उद्योग में मादक द्रव्य (Alcoholes) का विशेष महत्व है। सिरके के रूप में एसेटिक एसिड (Acetic Acid) उपयोगी पदार्थ है। इसमें बहुत सी चीजें घुल जाती हैं।

ग्लिसरीन के साथ तेलों में और चर्वी में चर्वी वाले एसिड मिलते है। उनका प्रतिनिधि एसेटिक एसिड (Acetic Acid) है। तेलों को या चर्बियों को कास्टिक

सोडे के साथ उबालने से और फिर कुछ क्रिया करने पर साबुन बनाया जाता है और ग्लिसरीन से अलग हो जाता है। ये दोनों उपयोगी पदार्थ हैं।

प्रकृति में कार्बन के यौगिकों के कई प्रकार हैं जैसे शक्कर और तत्सम्बन्धी यौगिक। इनमें सबसे सरल ग्लूकोज है जिसके अणु में १६ कार्बन परमाणु, १२ हाइड्रोजन परमाणु और ६ आक्सीजन परमाणु रहते हैं। इस अणु में हाइड्रोजन और आक्सीजन के अणु का अनुपात २:१ होता है। ऐसा ही अनुपात जल में होता है। इसलिये इसको हाइड्रेट आफ कार्बन या कार्बोहाइड्रेट कहते हैं। शक्कर में कई प्रकार हैं। इनमें गन्ने की शक्कर से सब परिचित हैं। इसका निर्माण $C_{12} H_{22} O_{11}$ है। ये सब कार्बोहाइड्रेट हैं। ऊँची शक्कर के अणु काफी बड़े होते हैं। ऐसे एक अणु में लगभग १०० परमाणु होते हैं। शक्कर से मीठे कार्बोहाइड्रेट बनते हैं।

ऐसे कार्बोहाइड्रेट्स भी हैं जो मीठे नहीं होते। इनका एक उदाहरण है स्टार्च (Starch)। यह पौधे से बना हुआ विशेष पदार्थ है जो चावल, गेहूँ, मक्का और अरारोट के दानों में तथा जड़ों की गांठों में मिलता है। स्टार्च के अणु तुलनात्मक दृष्टि से बड़े होते हैं और ये $C_6 H_{10} O_5$ के दोहराने से बनते हैं। घुलने वाले स्टार्च के एक अणु में ४२०० परमाणु से कम नहीं होते। अर्थात् $C_{1200} H_{2000} O_{1000}$। कुछ ऐसे स्टार्च भी हैं जिनके अणु इनसे भी बड़े होते हैं।

सेल्यूलोज (Cellulose) एक दूसरा कार्बोहाइड्रेट है जो मीठा नहीं होता। यह पौधों के तन्तुओं में और उनके क्षुद्र कूपों की दीवारों में पाया जाता है। इसका परिचित स्वरूप रुई का रेशा है जो कागज, तोप की रुई, और सुल्यूलोयड (Celluloid) आदि कई चीजें बनाने में काम आता है। यह भी एक बड़ा अणु है जिसकी मूल रचना स्टार्च की सी होती है।

वस्तुओं का एक मुख्य वर्ग पशु और पौधों में मिलता है। इसको प्रोटीन (Proteins) कहते हैं। इनके अणु में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन और गन्धक के परमाणु होते हैं। इनमें सबसे सरल एमिनो एसिड (Amino Acids) है। इसका एक उदाहरण है ग्लीसरीन जिसके एक अणु में दो कार्बन के परमाणु, पाँच हाइड्रोजन के परमाणु, दो आक्सीजन के परमाणु और एक नाइट्रोजन का परमाणु होता है। लेकिन प्रोटीन के उच्च श्रेणी के अणु बड़े उलझनदार होते हैं और एक अणु में हजारों परमाणु पाये जाते हैं।

कोयला महत्त्वपूर्ण वस्तु माना जाता है। यह जलाने के काम में तो आता ही है परन्तु इससे कई उपयोगी पदार्थ बनते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन काल में करोड़ों वर्ष पूर्व जंगलों से और वनस्पतियों से बना था। प्रत्येक काल में भूतल पर बड़े हेर फेर हुए थे। जिनसे वनस्पतियां पृथ्वी में गड़ गई थीं। वहां पर कुछ ऐसी रसायनिक क्रियायें हुई

जिनसे इनके अंश अलग अलग हो गये। इन पर ऊपर की चट्टानों का भारी दवा पड़ा और पृथ्वी के अन्दर के तापमान का प्रभाव हुआ जिससे यह कोयले के रूप में परिणत हो गई। कोयले को जलाया जाता है। इससे जो गैस वनती है उसको जमाया जाता है। यह क्रिया जारी रहती है। ऐसा करते करते कोयला भस्म हो जाता है और कोलटार रह जाता है। फिर कोलटार को विभिन्न तापमानों में जलाया जाता है और इसी प्रकार की क्रिया से वेन्जेन (Benzene), कारवोलिक एसिड (Carbolic Acid), नेफ्थेलीन (Naphthalene) और एन्थ्रेसीन (Anthracene) वनते हैं। इनमें से वेन्जेन मूल वस्तु है। इसकी रचना दूसरे अणुओं से भिन्न है। इसका अणु सूत्र तो $C_6H_6$ है परन्तु अणु के अन्दर परमाणु छः समूहों में व्यवस्था पूर्वक विभक्त रहते हैं। हर एक समूह में एक कार्वन और एक हाइड्रोजन परमाणु रहता है। इस प्रकार प्रत्येक अणु समपट्कोण होता है। पेरेफीन के अणु सीधी जंजीर सी वनाते हैं परन्तु वेन्जेन के अणु पट्कोण मुद्रिका जैसे होते हैं। यहीं से ऐसे महत्त्वपूर्ण रसायनिकों का आरम्भ होता है जो औद्योगिक और सैद्धान्तिक दृष्टि से वड़े महत्त्व के हैं। इनमें से एक तोल्यून (Toluene) कहलाता है। यह वड़ा उपयोगी घुलने वाला पदार्थ है। परन्तु इससे भी वड़ा उपयोग इसका यह है कि इसी से आगे चल कर ट्रिनाइट्रोटोल्यून (Trinitro Toluene) वनता है। यह शायद सबसे अधिक फटने वाला रसायनिक है। वेन्जेन के वहुत निकट फिनोल (Phenol) है। यह प्रसिद्ध कार्वोलिक एसिड है जो कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। इसी से बहुत मिलते जुलते एनीलाइन(Aniline) और एलीजेरीन (Alizarin) हैं। इन्हीं से आरम्भ करके समन्वयात्मक रंग (Synthetic dyes) वनाये जाते हैं। इसके प्रताप से ही यूरोप और अमरीका में रंग वनाने के विशाल कारखाने खुल गये हैं जिनके कारण प्राकृतिक रंगों का व्यवसाय नष्ट हो गया है। भारतवर्ष में पहिले नील की खेती होती थी। नील से रंग वनता था जो भारत का वड़ा भारी उद्योग था। यह उद्योग ऐसे कारखानों के कारण ही नष्ट हुआ है। समन्वयात्मक औषधियाँ भी इसी प्रकार के रासायनिकों से ही वनाई जाती हैं। इनमें से परम प्रसिद्ध मलेरिया नाशक औषधियाँ है। उदाहरणार्थ मेपाक्राइन (mepacrine) और पेमाकवीन (Pamaquin) हैं तथा आश्चर्यकारी सल्फा-ड्रग्स (Sulphadrugs) है। इन्हीं में हम एस्प्रीन और सेलीसाइलिक एसिड (Salicylic Acid) को शामिल कर सकते हैं। एल्केलायड्स के वर्ग में तम्बाखू का नेकोटाइन कुवीन, अफीम, मोरफाइन, स्ट्राइकनाइन (Strychnire) और कोकीन हैं।
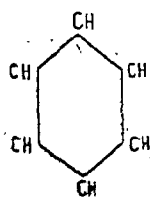
चित्र २६

अब यह वात स्पष्ट हो गई होगी कि कार्वन यौगिकों के रसायन-शास्त्र का हमारे जीवन में और प्रकृति की व्यवस्था में वहुत वड़ा भाग है। रसायन शास्त्र के दो मुख्य भाग हैं—इनओरगेनिक रसायन-शास्त्र (Incrgani chemistry) और ओरगेनिक

रसायन-शास्त्र (Organic chemistry)। इनओरगेनिक रसायन-शास्त्र में ऐसे यौगिकों का विवेचन किया जाता है जो कार्बन से नहीं बनते और ओरगेनिक रसायन-शास्त्र में कार्बन के यौगिकों का वर्णन होता है। इनओरगेनिक रसायन-शास्त्र का विषय है उपयोगी योगिकों का वर्णन जिनकी संख्या बहुत बड़ी है परन्तु ओरगेनिक रसायन-शास्त्र का क्षेत्र. इससे भी विस्तृत है क्योंकि इसमें संसार के सम्पूर्ण प्राणियों का समावेश होता है। प्राणी जगत कार्बन यौगिकों का बना हुआ है। इसका आरम्भ सरल कोष (Cell) से और तन्तुओं से होता है। प्रकृति की व्यवस्था में कार्बन का बहुत बड़ा हाथ है। प्राणी जगत और वनस्पति जगत में इसका प्रभाव फैला हुआ है।

**विद्युत और मेग्नातीस** (Electricity and Magnetism)

प्राचीन काल में विद्वान लोगों को विद्युत क्रिया से बड़ा विनोद होता था। प्राचीन चीनियों को मेग्नातीस का पता लगा और उन्होंने कम्पास बनाया। यदि कांच के शुष्क डन्डे को रेशम से रगड़ा जावे तो डंडा कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी ओर आकर्षित करने लगता है। ऐसा गुण प्राप्त कर लेने पर कहा जाता है कि डंडे में बिजली आ गई। रेशम में भी इसी प्रकार की क्रिया होने लगती है। इसी प्रकार दो कांच के डंडों में बिजली उत्पन्न कर दी जावे और उनको पास-पास लटका दिया जाय तो वे एक दूसरे को दूर हटाते हैं। ऐसी ही क्रिया रेशम के टुकड़ों की होती है। वे भी एक दूसरे को दूर हटाते हैं। परन्तु विद्युत्‌मय कांच विद्युत्‌मय रेशम को अपनी ओर आकर्षित करता है। इस आधार पर हम विद्युत को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। एक धन-विद्युत और दूसरा ऋण-विद्युत। उपरोक्त प्रयोग से प्रकट होता है कि विद्युत के समान प्रवाह एक दूसरे को हटाते हैं और विरोधी प्रवाह एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। दोनों प्रकार की विद्युत को उत्पन्न करने के लिए और उनका संग्रह करने के लिये बड़ी-बड़ी मशीनें बनाई जाती हैं। जब विरोधी प्रवाह एक दूसरे के समीप लाये जाते हैं तो दोनों एक चिनगारी के संचालन से ही एक हो जाते हैं।

यदि हम कांच के एक डंडे को एक सिरे पर रेशम से रगड़ें तो विद्युत प्रवाह उस सिरे पर ही रहता है। डंडे के दूसरे भागों पर नहीं जाता। एवं कांच विद्युत को अपने ऊपर नहीं फैलाता। इसलिये इसको विद्युत का असंचालक (Non-Conductor या Insolator) कहते हैं। परन्तु यदि विद्युन्मय कांच के डंडे को यदि किसी धातु के डंडे से रगड़ा जावे तो विद्युत कांच से धातु में प्रवाहित ही नहीं होती परन्तु यह सर्वत्र फैल जाती है। धातु के लिये कहा जाता है कि यह विद्युत की अच्छी संचालक (Conductor) है।

यदि ऋण प्रवाह और धन-प्रवाह को पास-पास रख दिया जाय और फिर

उनके पास कोई ऐसा पदार्थ लाया जाय जो धन-विद्युन्मय हो और जो स्वतन्त्रता से हिल सकता हो तो वह धन-प्रवाह से ऋण प्रवाह की ओर हिलेगा। जिस प्रकार द्रव ऊँचाई से नीचाई की ओर चलता है उसी प्रकार विद्युत भी धन-प्रवाह से ऋण-प्रवाह की ओर जाता है। धन-विद्युत संग्रह और ऋण-विद्युत संग्रह में विद्युन्मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। इसलिये धन-विद्युत का संग्रह ऋण विद्युत संग्रह की ओर वहता है। विद्युन्मात्रा को विद्युत अधिष्ठान शक्ति (Electrical Potentials) कहते हैं। इस अधिष्ठान शक्ति में जितना अन्तर होगा और संग्रह जितना अधिक होगा उतना ही विद्युत्प्रवाह अधिक होगा, जैसे पानी का संग्रह जितना अधिक होगा और जितनी ऊँचाई पर होगा उतना ही पानी का प्रवाह जोर का होगा। ऐसी विद्युत मशीनें हैं जिनमें धातुओं के दो समीपस्थ गोलों पर धन-विद्युत और ऋण-विद्युत उत्पन्न की जाती है। इन दोनों के बीच में एक चिनगारी चलती है जिसमें होकर विद्युत का प्रवाह होता है। तब दोनों प्रकार के विद्युत मिलकर विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार की क्रिया विशाल मात्रा में हमको बिजली में दिखाई देती है। बादलों में विद्युत संग्रह हो जाता है और वह विद्युत के निम्न अधिष्ठान की ओर अपना मार्ग ढूँढ़ता है। यह निम्न अधिष्ठान यदि बादल में होता है तो हमको नाना प्रकार की सुन्दर बिजलियाँ आकाश में दिखाई देती हैं और यदि यह निम्न अधिष्ठान भूमि पर होता है तो बिजली गिरती है।

हम धातु के दो डंडे लें। एक तांबे का हो सकता है और दूसरा जस्त का। इन दोनों को यदि हम हल्के सल्फरिक एसिड में डुबावें तो पता लगता है कि तांबे के डंडे में अधिक विद्युत शक्ति है और जस्त के डंडे में कम। दोनों डंडों को यदि हम तांबे के तार से मिला दें तो विद्युत तांबे से जस्त की ओर बहती है। थोड़ा सा हेर फेर करने से ऐसा हो सकता है कि विद्युत प्रवाह निरन्तर चलता रहे और तांबे और जस्त में विद्युत की अधिष्ठान शक्ति का अन्तर भी ज्यों का त्यों बना रहे। साथ ही साथ एक रसायनिक प्रतिक्रिया भी चलती रहती है। इसमें रसायनिक ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में परिणत होती रहती है। यह क्रिया हम टार्च के कोषों में या बिजली की बैटरी में देखते हैं जो मोटर गाड़ियों में या रेल गाड़ियों में काम में आती हैं। जब बिजली एक अधिष्ठान से दूसरे अधिष्ठान की ओर बहती है तो ऐसा कार्य होता है जिसको हम ergs आदि इकाइयों से नाप सकते हैं।
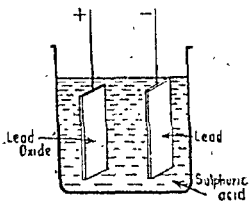
चित्र ३०

मेग्नातीस का गुण सर्व प्रथम मेग्नेटाइट पदार्थ (magnetite) में मिला था। इसको लोड स्टोन भी कहते हैं। इसमें यह गुण है कि यह लोहे के टुकड़ों को अपनी

ओर आर्कर्षित करता है। यदि इसको स्वतन्त्रता से लटका दिया जावे तो यह एक विशेष स्थिति में रहता है। यदि लोहे या फौलाद की शलाका को लोड स्टोन से पुनः पुनः एक ही दिशा में रगड़ा जावे तो इसमें भी वही गुण आ जाता है अर्थात् यह भी मेग्नातीस बन जाता है। मेग्नातीस का टुकड़ा स्वतन्त्र रूप से किसी कीली पर स्वतंत्र रख दिया जावे तो इसका एक नोक उत्तर में और दूसरा दक्षिण में रहेगा। उत्तर की ओर का नोक उत्तर ध्रुव और दक्षिण का नोक दक्षिण ध्रुव कहलाता है। इस प्रकार के दो मेग्नातीस पास-पास रक्खे जावें तो पता लगेगा कि उत्तर ध्रुव एक दूसरे को हटाते हैं परन्तु उत्तर ध्रुव दक्षिणी ध्रुव को आर्कर्षित करता है। मेग्नातीस में दिशा विशेष में स्थित रहने के गुण को आसानी से समझने के लिये हमको यह मानना चाहिये कि सारी पृथ्वी ही एक विशाल मेग्नातीस है जिसका मेग्नातीसी दक्षिणी ध्रुव भौगोलिक उत्तरी ध्रुव के पास है और मेग्नातीस उत्तरी ध्रुव भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव के पास है।
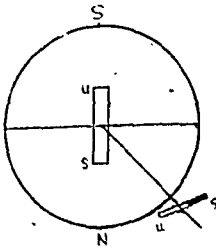
चित्र ३१ चित्र ३२
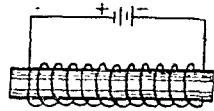
एक तांबे का तार लो। इसको रुई या रेशम से लपेट दो और फिर इस तार को एक लोहे की या फौलाद की शलाख पर लपेट दो। फिर इस तार में विद्युत प्रवाह थोड़ी देर के लिये चलाओ। तो वह लोहे की शलाका चुम्बक बन जावेगी। इसको मोड़ कर घोड़े की नाल के आकार का चुम्बक बनाया जा सकता है।

**मौलिक कण, इलेक्ट्रोन, पोजिट्रोन, प्रोटोन, न्यूटोन**

गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जे० जे० टामसन और दूसरे वैज्ञानिकों ने ऐसी खोजें की जिनसे विज्ञान में नये युग का आरम्भ हो गया। इन्होंने गैसों में विद्युत चलाई। एक काँच की नालिका में से अधिकांश वायु निकाल दिया गया और फिर उसमें विद्युत चलाई। तालिका में धातु के दो टुकड़े, इलेक्ट्राडीस A और B डाले गये जो विद्युत प्रवाह को तालिका के अन्दर और बाहर ले जा सकें। पहिले का नाम एनोड A और दूसरे का नाम केथोड C रक्खा
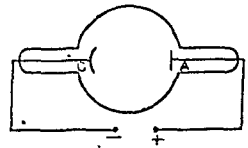
चित्र ३३

गया। टामसन ने देखा कि केथोड—में से कोई ऐसी चीज निकल रही है जो प्रकाश जैसी नहीं है परन्तु ऐसे कण हैं जो अत्यन्त तीव्र गति से चल रहे हैं और जो ऋण-विद्युन्मय हो गये हैं। इनका नाम केथोड किरणें रक्खा। इनका अधिक उपयुक्त नाम है केथोडकण। इस विषय में और वैज्ञानिक खोज हुई तो ज्ञात हुआ कि ये कोई असाधारण कण नहीं है और इनको कई प्रकार से उत्पन्न किया जा सकता है। धातु को तपाने से ये उत्पन्न होते हैं और विद्युत लेम्प के प्रकाशमान तार तन्तुओं से भी ये निकलते रहते हैं। आगे चल कर इन कणों का नाम इलेक्ट्रोन रक्खा गया। इलेक्ट्रोन पर जो विद्युत जाती है वह भौतिक-शास्त्र की मौलिक इकाई है। इसको बड़ी सावधानी के साथ निश्चित किया गया है। इलेक्ट्रोन की मात्रा का भी पता लग चुका है। हम जानते हैं कि हाइड्रोजन के परमाणु का पुंज $१.६७ \times १०^{-२४}$ ग्राम होता है। इलेक्ट्रोन इसके १८५० वें अंश के बराबर है। यह आश्चर्यकारी बात है क्योंकि हाइड्रोजन का परमाणु समस्त परमाणुओं में सबसे छोटा और हल्का है। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या यह कोई नवीन परमाणु या तत्व है या कोई नवीन पदार्थ विशेष का पता चला है। इस प्रश्न का उत्तर आगे चलकर मिला। यह पता लग गया कि यह पदार्थकण नहीं है बल्कि विद्युतकण है। अब तक तो हमको इतना ही ज्ञान था कि कुछ पदार्थ विद्युन्मय हो जाते हैं और कोई विद्युत का वहन करते हैं तथा कोई नहीं करते, परन्तु अब ज्ञात हुआ कि पृथक्-पृथक् विद्युत-शक्ति का अस्तित्व है और ऋण-विद्युत अलग-अलग कणों में विद्यमान है और इसको अपने अस्तित्व के लिये किसी पदार्थ के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। ऐसा पृथकत्व पहिले पदार्थ के विषय में माना जाता था। अब यह विद्युत में भी आ गया। प्रत्येक पदार्थ में अणु और परमाणु होते हैं। एक पदार्थ में एक प्रकार के अणु परमाणु होते हैं और दूसरे में दूसरी प्रकार के। जल निरन्तर एक प्रकार की वस्तु नहीं है। यह अणुओं का बना हुआ है और प्रत्येक अणु में तीन परमाणु होते हैं। अब हमको विद्युतकणों का पता लग गया। विद्युत की रचना में इसके प्रत्येक कण का पृथक कार्य है। ऋण विद्युत निरन्तर चलता हुआ कोई द्रव नहीं है यह तो पृथक्-पृथक् कणों को अर्थात् इलेक्ट्रोनों का बना हुआ है। इलेक्ट्रोन में कितनी विद्युत होती है और उसकी मात्रा कितनी होती है—इसका वर्तमान शताब्दी में पता चला है और विज्ञान के क्षेत्र में यह बहुत बड़ा कार्य हुआ है। यह स्वाभाविक बात थी कि धन-विद्युत के विषय में भी ऐसी खोज की जाती। अतः इसके भी लघुतम कण का अर्थात पोजीट्रोन का पता लग गया है। इसकी मात्रा ठीक इलेक्ट्रोन की मात्रा के बराबर है और इसमें विद्युत भी उतनी ही होती है परन्तु यह धन-विद्युत है ऋण-विद्युत नहीं।

इन छोटे-छोटे कणों का पता लग जाने पर लोग पदार्थ की रचना में गहन प्रवेश करने लगे। प्रश्न यह खड़ा हुआ कि क्या हम परमाणु के अन्दर देख सकते हैं?

हाइड्रोजन का परमाणु सरलतम और अत्यन्त तात्विक है। अतः इसी से इस प्रश्न को हल करने की कुंजी मिल सकती है। जब हाइड्रोजन के परमाणु को नपाया गया या इसमें विद्युत चलाई गई तो इसकी अवस्था उत्तेजित हो गई और इसकी रचना का विवरण प्रकट हुआ। जब हाइड्रोजन गैस को इस भांति उत्तेजित किया जाता है तो यह लाल होकर चमकने लगती है और इस प्रकाश की परीक्षा करने पर प्रश्न का उत्तर मिलता है। नतीजा यह निकला कि हाइड्रोजन के परमाणु में रचना है अर्थात् यह दो कणों का बना हुआ है। इनमें एक भारी है और इसमें धन-विद्युत होती है। दूसरा कण हलका है और उसमें ऋण-विद्युत होती है। वास्तव में यह दूसरा कण इलेक्ट्रोन है। अन्य कण में इतनी ही धन-विद्युत होती है। परन्तु यह इलेक्ट्रोन से १८५० गुणा अधिक भारी है। इसको प्रोटोन कहते हैं। प्रोटोन में धन-विद्युत है और इलेक्ट्रोन में ऋण-विद्युत। दोनों में परस्पर आकर्षण होता है। इसलिये इलेक्ट्रोन प्रोटोन के आस-पास एक कक्षा में घूमता है। इसी प्रकार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। इनकी कक्षा दीर्घवृत्तीय (elliptic) है। पृथ्वी और इलेक्ट्रोन की गति में एक महत्वपूर्ण भेद है। वह यह है कि पृथ्वी की कक्षा निश्चित है। यह उसको कभी नहीं छोड़ती, परन्तु इलेक्ट्रोन एक कक्षा में नहीं रहता। इसकी कई कक्षायें होती हैं। यह एक कक्षा में से फुदक कर दूसरी कक्षा में चला जाता है। इसमें यह सिद्धान्त है कि पदार्थ में से जो विकिरण होता है उनमें उसका निस्सरण और लय दोनों होता रहता है।
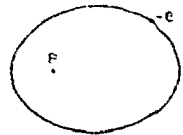
चित्र ३४

इलेक्ट्रोन का पता लगने पर जैसे पोजीट्रोन का पता चल गया, उसी प्रकार प्रोटोन का पता चलने पर दो अन्य कणों के अस्तित्व का पता लगा। इनमें से एक में ही विद्युत होती है दूसरे में नहीं होती। प्रथम कण को एन्टी प्रोटोन कहते हैं और दूसरे को न्यूट्रोन। प्रथम कण प्रकृति में अत्यन्त दुर्लभ है परन्तु दूसरा विद्युतहीन कण बहुत सुलभ है। दूसरा कण उसी पुंज का बना हुआ है जिसका प्रोटोन परन्तु इस पर विद्युत नहीं होती। यह उदासीन है। एवं पांच प्रकार के मौलिक कणों का पता चला है—इलेक्ट्रोन, पोजिट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन और एन्टीप्रोटोन। इले-क्ट्रोन पर जितनी विद्युत होती है उसको हम विद्युत इकाई मान सकते हैं और उसको ० कह सकते हैं और प्रोटोन की मात्रा को हम पदार्थ की इकाई मान सकते हैं। इकाइयों में इन पांच कणों के गुण तालिका संख्या २ में दरसाये गये हैं। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि हाइड्रोजन परमाणु का केन्द्र प्रोटोन है जो इसके समस्त पुंज का वाहन है और इलेक्ट्रोन इसका उपग्रह जैसा है जो निरन्तर इसके चारों ओर घूमा करता रहता है।

## तालिका ३

| Particle | Charge भरण | Mass पुंज |
|---|---|---|
| इलेक्ट्रोन Electron | −1 | 1/1850 |
| घनाणु Positron | +1 | 1/1850 |
| प्राणु Proton | +1 | 1 |
| क्लीवाणु Neutron | 0 | 1 |
| विषाणु Antiproton | −1 | 1 |

### एटम (परमाणु) की रचना

अब हम हेलियम नामक गैस के परमाणु को लें। यह हाइड्रोजन के परमाणु से अधिक भारी है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि उससे इसका भार चौगुना है। इसकी रचना चित्र संख्या ३५ में दिखाई गई है। इसके केन्द्र की दो इलेक्ट्रोन परिक्रमा करते रहते हैं। इलेक्ट्रोन का पुंज नगण्य होता है, इसलिये इस परमाणु के समस्त पुंज को केन्द्र ही वहन करता है। दोनों इलेक्ट्रोन का विद्युत्-बल—२ e होता है, अतः केन्द्र का विद्युत्बल +२ e होना चाहिये क्योंकि इस परमाणु में या इन परमाणुओं की गैस में कोई विद्युत्-बल नहीं होता। केन्द्र का +२ e विद्युत्बल दो प्रोटोन से मिल सकता है। इन्हीं से पुंज की दो इकाइयाँ आवेंगी। फिर दो इकाइयाँ शेष रहती हैं ताकि चार का पुंज बन जावे। यह शेष दो न्यूट्रोन से पूरा हो जाता है। इस प्रकार हेलियम गैस के परमाणु की रचना ज्ञात होती है। इसका केन्द्र दो प्रोटोन और दो न्यूट्रोन का बना हुआ होता है। इसको एलफा अणु भी कभी-कभी कहा जाता है।
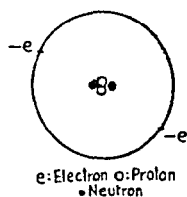
चित्र ३५

इससे दूसरा और अधिक भारी तत्व लीथियम (Lithium) है। अपनी इस विधि को व्यापक बनाकर हम कह सकते हैं कि इसमें तीन इलेक्ट्रोन हैं और एक केन्द्र। लीथियम के परमाणु का भार ७ है। तीन इलेक्ट्रोन के विद्युत-बल को शक्ति-शून्य करने के लिये केन्द्र में तीन प्रोटोन होने चाहिये। तीन प्रोटोनों से पदार्थ की तीन इकाइयाँ मिलेंगी। पदार्थ की शेष चार इकाइयाँ चार न्यूट्रोन से ली जा सकती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लीथियम के परमाणु की रचना में एक केन्द्राधार होता है। इसमें चार न्यूटोन, तीन प्रोटोन, और तीन इलेक्ट्रोन होते हैं जो केन्द्र की परिक्रमा किया करते हैं।
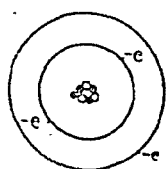
चित्र ३६

हमने देखा कि ज्यों-ज्यों हम हाइड्रोजन से आगे के तत्वों को लेते है त्यों-त्यों परमाणु में एक-एक इलेक्ट्रोन बढ़ता जाता है। इस प्रकार हम तत्व परिवार की संख्या के क्षेत्र में आ पहुँचते है। हाइड्रोजन को प्रथम, हेलियम को द्वितीय और लीथियम को तृतीय तत्व मानते हैं। इस प्रकार हम युरेनियम तक पहुँच जाते हैं जिसका परमाणु सबसे भारी होता है। इसका नम्बर ६२ है।

तो परमाणु की रचना प्रायः ऐसी होगी कि परमाणु की संख्या Z है तो उसके केन्द्र में इतने ही प्रोटोन्स होगे। यदि परमाणु का पुंज A है तो केन्द्र में इसके अतिरिक्त A–Z न्यूट्रोन होंगे। केन्द्र के सब ओर Z इलेक्ट्रोन होते है जो अनेक कक्षाओं में परिक्रमा किया करते है।

हाइड्रोजन के परमाणु का केन्द्राधार अर्थात् प्रोटीन एक कण है जिसका अर्धव्यास लगभग $१०^{-१३}$ सेन्टीमीटर है। केन्द्र और इलेक्ट्रोन के मध्य की दूरी $५ \times १०^{-६}$ सेन्टीमीटर है। यह केन्द्र के अर्द्धव्यास से ५००० गुणी है। एवं परमाणु एक रिक्त व्यवस्था है। इससे अधिक परमाणुओं के आकार भी ऐसे ही है। हमने पहिले एक विशेप गैस का उल्लेख किया है। यहाँ उसका चित्र पूरा हो जाता है। विभिन्न अणुओं के परमाणुओं में प्रत्येक का स्वतन्त्र अस्तित्व है और इनकी निश्चित रचना है।

**समस्थानीय तत्व (Isotopes)**

यदि हम उपरोक्त नियम को प्रायः सब परमाणुओं के वर्णन के लिये लागू करें तो हम बड़ी कठिनाई में पड़ जावेंगे। उदाहरणार्थ यदि हम क्लोरीन के विषय में इस नियम को लागू करें तो हम इस कठिनाई का अनुभव करेंगे।

तालिका नम्बर २ से प्रकट होगा कि क्लोरीन की परमाणु संख्या १७ है और परमाणु भार ३५·५ है। उपरोक्त नियम के अनुसार इसके केन्द्राधार के आस-पास १७ इलेक्ट्रोन होने चाहिये और केन्द्राधार में १७ प्रोटोन होने चाहिये। इस प्रकार ३५·५–१७ = १८·५ न्यूट्रोन के लिये स्थान बचता है। अब प्रश्न होता है कि न्यूट्रोन के ·५ या ½ का क्या किया जावे। क्या हम यह मानें कि प्रोटोन और न्यूट्रोन से भी छोटे कण होते हैं। यदि हम तत्वों की सूची को देखें तो पता चलता है कि 0·5 के अतिरिक्त अन्य अनेक अंश हैं। इस कठिनाई का हल आगे चलकर एक आविष्कार के द्वारा हुआ। इस आविष्कार से ज्ञात हुआ कि क्लोरीन में दो प्रकार के परमाणु होते हैं। एक ३५ पुंज का और दूसरा ३७ पुंज का। यदि इन दोनों को ३:१ के अनुपात से मिला दिया जावे तो औसत ३·५ होगा। ऐसा माना जाता है कि क्लोरीन में दो समस्थानीय तत्व होते हैं—एक ३५ पुंज वाला और दूसरा ३७ पुंज वाला। इसी प्रकार हमको पता चलता है कि अधिकांश तत्व समस्थानीय तत्वों के बने हुये होते

हैं। शीशा और पारद जैसी वस्तुओं में ८ और ६ तक समस्थानीय तत्व पाये जाते हैं। इसीलिये यह तत्व इतनी ही प्रकार के परमाणुओं से बने होते हैं।

हाइड्रोजन में तीन प्रकार के समस्थानीय तत्व पाये जाते हैं। पहिला १ पुंज का दूसरा २ पुंज का और तीसरा ३ पुंज का। इनमें प्रथम तो साधारण हाइड्रोजन का परमाणु है जिसकी रचना का वर्णन पहिले ही किया जा चुका है। शेष दो भारी समस्थानीय तत्वों की रचना चित्र संख्या ३७ में दिखाई गई है। हाइड्रोजन का परमाणु नम्बर १ है। इसलिये इन तीनों में एक-एक इलेक्ट्रोन है। यह केन्द्र के चारों ओर घूमा करता है। दूसरे समस्थानीय तत्व का पुंज २ है। इसलिये इसका केन्द्र १ प्रोटोन और १ न्यूट्रोन का बना हुआ है। इस केन्द्र को ड्यूटीरोन (Deuteron) और इसके परमाणु को ड्यूटीरियम (Deuterium) कहते हैं। इसी को कभी-कभी भारी हाइड्रोजन भी कहा जाता है। जिस पानी में हाइड्रोजन के बजाय ड्यूटीरियम के अणु होते हैं उसको भारी पानी कहते हैं। इसी प्रकार तीसरे समस्थानीय तत्व में एक परमाणु होता है और इस परमाणु में एक इलेक्ट्रोन और एक केन्द्राधार होता है। केन्द्राधार १ प्रोटोन और २ न्यूट्रोन का बना हुआ होता है। इसी से पुंज ३ निकलता है। इस परमाणु को ट्रिट्रियम और केन्द्राधार को ट्रिटोन कहते हैं। हाइड्रोजन के इन तीनों समस्थानीय तत्वों के मिश्रण में यदि हाइड्रोजन स्वाभाविक हो तो १:०'०००२: —१०$^{-६}$ का अनुपात होता है। एवं ट्रिटियम वास्तव में अति दुर्लभ है। परन्तु ड्यूटिरियम इतना दुर्लभ नहीं हैं। महासागर के पानी में हाइड्रोजन इतनी विपुल मात्रा में मिल सकता है कि हाइड्रोजन के अधिक भारी समस्थानीय तत्व भी काफी मात्रा में मिल सकते हैं।

आक्सीजन में ३ समस्थानीय तत्व होते हैं। एक १६ दूसरा १७ और तीसरा १८ पुंज का। इनमें से प्रथम को समस्थानीय तत्वों के पुंजों को ठीक-ठीक नापने का पैमाना माना जाता है। इसलिये इसका पुंज वास्तव में १६.०००,००० माना जाता है। परमाणु और समस्थानीय तत्वों के सापेक्षिक पुंजों का ठीक निर्धारण करने के लिये ऐसी विधियाँ निकाल ली गई हैं जिनसे प्रत्यक्ष में निर्दोष नतीजा निकलता है। नतीजा यह है कि पुंजों को आंकने में हर लगभग पूरी इकाइयों में जाता है। परन्तु यह ठीक पूरी नहीं होती जैसे क्लोरीन के हल्के समस्थानीय तत्व का पुंज ठीक ३५ नहीं किन्तु ३४.६८०० है और हलियन परमाणु का पुंज ठीक ४ नहीं किन्तु ४.००३६ है। इसके परिणाम बहुत बड़े होते हैं।

केन्द्रीय ऊर्जा

वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में एलबर्ट आइन्स्टीन ने अपने प्रसिद्ध सापेक्षिता के मन्तव्य का प्रतिपादन किया। इसमें उसने काल और अवकाश (Space) के सापेक्षिक

कार्यों का अद्भुत चित्र उपस्थित किया। साथ ही संयोगवश वह ऐसे नतीजे पर पहुँचा जो प्रत्यक्ष में विचित्र था। वह नतीजा यह था कि पदार्थ और उर्जा एक दूसरे में परिणत किये जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पदार्थ भी एक प्रकार की उर्जा है और इसको विभिन्न प्रकार की उर्जा की सूची में स्थान मिलना चाहिये। फिर उसने उर्जा और पुंज के समीकरण नियम का प्रतिपादन किया। इसका सूत्र है $E = Mc^2$। यहां पर E उस ऊर्जा को द्योतित करता है जो ergs में नापी गई है और जो M ग्राम पदार्थ से प्राप्त की जा सकती है। इसमें C स्थायी है। यह प्रकाश की गति है जो $३ \times १०^{१०}$ cm/sec के बराबर है। अतः हम एक ग्राम पदार्थ से ऊर्जा की ९००,०००,०००,०००,०००,०००,०००, $(९ \times १०^{२०})$ ergs प्राप्त कर सकते हैं। यह $२.१६ \times १०^{१३}$ केलोरीज या २५.२ 'मिलियन' किलोवाट घण्टों के बराबर है। इससे २५००० किलोवाट का एंजिन १००० घण्टे तक अर्थात् १०५ दिन तक चलाया जा सकता है? प्रत्यक्षतः यह साधारण अनुभव का विषय तो नहीं है परन्तु हम इस पर विचार कर सकते हैं।

हेलियम परमाणु के केन्द्र एल्फा कण पर विचार करो। इसमें दो प्रोटोन और दो न्यूट्रोन होते हैं। और इसका पुंज ४.००३९ होता है। प्रोटोन का पुंज १.००७६ होता है और न्यूट्रोन का १.००९०। अतः दो प्रोटोन और दो न्यूट्रोन का संयुक्त पुंज ४.०३३० हुआ। परन्तु यह एल्फा कण के पुंज के बराबर नहीं है। उसका पुंज ४.००३९ होता है तो ०.०२९ के अन्तर का क्या कारण है? उत्तर स्पष्ट है कि यह अन्तर उस ऊर्जा को द्योतिक करता है जिसके द्वारा हेलियम् केन्द्र के चारों भाग साथ-साथ मिले रहते हैं। यदि एल्फा कण को तोड़ कर उसके चारों अंश पृथक्-पृथक् कर दिये जावें तो ऊर्जा की यह मात्रा इस क्रिया में खर्च होगी। एवं चार ग्राम हेलियम को दो ग्राम प्रोटोन और दो ग्राम न्यूट्रोन में परिणत करने के हेतु ०.०२९ ग्राम के बराबर ऊर्जा खर्च होनी चाहिये। यह मात्रा $२.६१ \times १०^{१९}$ ergs $= ६.२४ \times १०^{११}$ केलोरीज = ७२८००० किलोवाट के बराबर है।
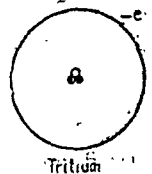
चित्र ३७

इसके विपरीत दलील करने से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि यदि किसी प्रकार हम दो ग्राम प्रोटोन और दो ग्राम न्यूट्रोन को सम्मिलित करके चार ग्राम हेलियम बना दें तो ऊर्जा की उपरोक्त मात्रा मुक्त हो सकेगी और इस ऊर्जा का हम उपयोग कर सकेंगे। ७२८००० किलोवाट घण्टा ऊर्जा से १०० वाट का लेम्प ७२८० घण्टे या दस मास तक जल सकता है। इसके संकेत मिलता है कि ऊर्जा का अनन्त संग्रह हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। परन्तु हमको ज्ञात होना चाहिये कि इसको किस प्रकार प्राप्त करें। यह देखा गया है कि यदि इस प्रकार बनने वाले केन्द्र का पुंज

उसको वनाने वाले कणों के पुंज की अपेक्षा छोटा है जैसा कि एल्फा कणों में होता है तो उसको तोड़ने के वास्ते ऊर्जा खर्च करनी होगी। इसके विपरीत यदि इस प्रकार वनने वाले केन्द्र का पुंज उसको वनाने वाले कणों से वड़ा है तो जव वह टूटेगा तव ऊर्जा मुक्त होगी।

### यूरेनियम का विखंडन

कुछ ऐसे रोचक प्रयोग किये गये है जिससे उपरोक्त हिसावो पर प्रभाव पड़ा है। यह ज्ञात है कि यूरेनियम नामक धातु के परमाणु प्राकृतिक तत्वों में सवसे अधिक भारी है। यूरेनियम का परमाणु नम्बर ९२ है और इस प्रकार इसके परमाणु की रचना जटिल है। इसमे ९२ इलेक्ट्रोन केन्द्र के चारो ओर घूमते रहते है। यूरेनियम के दो समस्थानीय तत्व (Isotopes) है, एक का पुज २३८ और दूसरे का २३५ है है जिनके लिये हम $u^{२३८}_{९२}$ और $u^{२३५}_{९२}$ लिखते है। इनका अनुपात १४०:१ होता है क्योंकि $u^{२३८}_{९२}$ और $u^{२३५}_{९२}$ के मिश्रण में $u^{२३५}_{९२}$ केवल ०.९२ प्रतिशत होता है। $u^{२३५}_{९२}$ के केन्द्र मे ९२ प्रोटोन और १४३ न्यूट्रोन होते है और $u^{२३८}_{९२}$ के केन्द्र में ९२ प्रोटोन और १४६ न्यूट्रोन होते हैं। अन्य भारी पदार्थों की भाँति इस वड़े केन्द्र को अस्थिर किया जा सकता है। इसको अस्थिर करने की विधि यह है कि $u^{२३५}_{९२}$ के केन्द्र को न्यूट्रोन से चोट मारी जावे। इस न्यूट्रोन का $u^{२३५}_{९२}$ के केन्द्र में लय हो जाता है और यूरेनियम का केन्द्र २३६ पुंज में परिणित हो जाता है। किसी न किसी प्रकार यह केन्द्र विशेष रूप से अस्थिर होता है और ज्यों ही वना कि यह फुदकने लगता है। इसका रूप विकृत हो जाता है और अन्त में यह टूट जाता है। यह क्रिया कई प्रकार से होती है। वीस प्रकार के विभिन्न कणों का पता लग चुका है। इनमें महत्वपूर्ण तत्व ये है:—क्रिपटोन, जेनोन, वेरियम और लेन्थेनम। इसके अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे कण टूट-फूट मे चले जाते है। इनमें कुछ न्यूट्रोन भी होते है। हम अनुमान कर सकते हे कि $u^{२३५}_{९२}$ का विघटन किस प्रकार होता है। इनमें अत्यन्त सम्भव विधि यह है कि $u^{२३६}_{९२}$ के टूट कर वड़े वड़े खण्ड हो जाते हैं। ये वेरियम और क्रिपटन ($Ba^{१३८}_{५६} + Kr^{८६}_{३६}$) या स्ट्रोन्टियम और जेनोन ($Sr^{८८}_{३८} + Xe^{१३६}_{५४}$) और वहुत से छोटे-छोटे कण हो सकते है। यदि इस विघटन के कण पुजों को जोड़े तो उनका योग $u^{२३६}_{९२}$ केन्द्र के पुज से ०.१ प्रतिशत कम होता है। इससे यह प्रत्यक्ष अनुमान होता है कि $u^{२३६}_{९२}$ केन्द्र के टूटने के साथ ही ऊर्जा मुक्त होती है। चूकि केन्द्र टूट कर उसके खण्ड हो जाते है और उनमें दो अर्थात् वेरियम और क्रिपटन जिनको ऊपर मान लिया गया है अच्छे आकार के है, इसलिये इस क्रिया को विघटन कहते है। एक ग्राम यूरेनियम के विघटन से २४००० किलोवाट घण्टे ऊर्जा मुक्त होती है या हम एक पौंड (२३५) से एक करोड़ किलोवाट ऊर्जा प्राप्त कर सकते हे। इसकी कोयले जैसी इंधन से तुलना कीजिये। एक पौन्ड कोयले को जलाने से ३ किलोवाट घण्टे ऊर्जा मिल सकती है।

यह ऐसी भावी आशा की बात है जिसकी जांच करनी चाहिये। युद्धकाल में वैज्ञानिक शोध का कार्य बहुत जल्दी-जल्दी होने लगता था। उस समय कुछ मौलिक बातों का निश्चय हुआ था। प्रथम खोज यह हुई कि u (२३५) वाला समस्थानीय का विघटन हो सकता है, u (२३८) का नहीं। दूसरी खोज यह थी कि केवल मन्द न्यूट्रोन ही u (२३५) को तोड़ सकता है। तीसरी इस बात का पता लगा कि u (२३५) के विघटन से जो न्यूट्रोजन उत्पन्न होते हैं वे मन्द नहीं किन्तु अति द्रुत हैं। अब u (२३५) के ढेले पर विचार कीजिये जो कितने ही परमाणुओं का बना हुआ है। उसमें एक मन्द न्यूट्रोन को प्रवेश करने दीजिये और u (२३५) के केन्द्र को तोड़ने दीजिये। मान लो कि इस विघटन से दो तीव्र न्यूट्रोन निकले और किसी भाँति उनको मन्द कर दिया गया। तब इनमें से प्रत्येक मन्द न्यूट्रोन u (२३५) के केन्द्र को तोड़ देगा और उनमें से चार न्यूट्रोन उत्पन्न होंगे। यदि फिर इन चारों को भी मन्द कर दिया जावे तो ये u(२३५) के चार केन्द्रों को तोड़ कर आठ न्यूट्रोजन उत्पन्न करेंगे। इस क्रिया को निरवधि करते रहें तो इससे प्रतिक्रिया माला जारी होगी सौर इससे u(२३५) के समस्त पुंज का शीघ्र विघटन हो जावेगा जिससे u (२३५) के प्रतिग्राम से २४००० किलोवाट घंटे ऊर्जा मुक्त होगी। स्पष्ट ही है कि इस प्रकार हम अपार ऊर्जा के भंडार को खोल सकेंगे।

चित्र ३८

उपरोक्त प्रयोगों के आधार पर हम एक एक कदम आगे बढ़ सकते हैं। पहिले हमको u(२३५) का ही प्रयोग करना है और २३८ को छोड़ देना है। परन्तु u(२३८) १४० गुणा अधिक मिलता है। परन्तु यह स्वाभाविक यूरेनियम में होता है। इसके लिये समस्थानीयों को पृथक् करने की कठिन क्रिया आवश्यक है। दूसरे u(२३५) के विघटन से उत्पन्न होने वाले न्यूट्रोन को मन्द करने के लिये कोई साधन होना चाहिए। यदि कोई चलता हुआ गेंद दूसरे समपुंज से टकराता है तो उनमें आधा-आधा वेग विभक्त हो जाता है। परन्तु यदि वह अत्यधिक भारी गेंद से टकराता है तो भारी गेंद हिलेगा भी नहीं और हल्का गेंद उछल कर दूर चला जावेगा और उसके वेग में कोई अन्तर नहीं आवेगा। इसी प्रकार यदि न्यूट्रोनों को ऐसे कणों से टकराया जावे जो उनके समान ही हल्के हों तो उनका वेग बार-बार के सम्पर्क से शीघ्रता से घटेगा। इस प्रकार के कण कार्बन या बेरीलियम या ड्यूटिरन्स के केन्द्रों में मिलते हैं। ये आपतित (incident) न्यूट्रोन को आत्मसात् नहीं करते और न उन पर अन्य प्रकार का व्यवहार करते हैं। ऐसी वस्तुओं को मोडरेटर (Moderators) कहते हैं। ड्यूटिरोन भारी पानी से मिलते हैं और भारी पानी तैयार करना हम जानते हैं।

ग्रेफाइट के रूप में कार्बन का प्रयोग कई बार साम्यक (Moderator) की भाँति किया जाता है। यदि प्रतिक्रिया का अनुबंध अति शीघ्रता से चलता रहे तो यह खतरा है कि कहीं ऊर्जा की इतनी बड़ी मात्रा मुक्त हो जावें जिस पर हमारा काबू न रहे अर्थात् विस्फोट हो जावे। इस स्थिति से बचने के लिए हम न्यूट्रोनों के शोषण के हेतु केडमियम नामक धातु के गुण का उपयोग करते हैं। ठीक समय पर और ठीक विधि से केडमियम का उपयोग किया जावे तो प्रतिक्रिया का नियन्त्रण हो सकता है। केन्द्रीय ऊर्जा या परमाणु ऊर्जा को उत्पन्न करने के वास्ते जिन इकाइयों की स्थापना की जाती है उनको केन्द्रीय प्रतिकारक (Nuclear reaction) कहा जाता है। वे कई प्रकार के बनते हैं। इनमें से एक चित्र संख्या ३९ में बतलाया गया है। u(२३५) के डंडे एल्यूमिनियम की नालिका में रक्खे जाते हैं और वे L नालियों में चलाये जाते हैं। ये नालियाँ ग्रेफाइट के बड़े ढेर G में बनाई जाती हैं। u(२३५) से न्यूट्रोन ग्रफाइट साम्यक में चले जाते हैं। वहाँ उनको मन्द किया जाता है। तब वे ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं कि u(२३५) के दूसरे डंडों पर उनकी क्रिया हो सकती है। इससे प्रतिक्रियानुबंध शुरू हो जाता है और गरमी के रूप में ऊर्जा की बहुत बड़ी मात्रा मुक्त हो जाती है। यह जल, वायु या किसी अन्य शीतक (Coolant) से हटा दी जाती है जो एल्यूमिनियम की नालिकाओं के आसपास की नालियों में बहता रहता है। यदि साम्यक में ऐसे चिन्ह प्रकट होने लगें कि वह नियंत्रण से बाहर जा रहा है तो उसमें केडमियम के डंडे (c) प्रविष्ट किये जाते हैं जो न्यूट्रोनों का शोषण करते है। प्रतिकारक (Reactor) को मन्द करते हैं। जो गरमी प्रतिकारक से निकाली जाती है उसका भाप बनाने के लिये या टरबाइन चलाने के लिये या किसी अन्य प्रकार के एंजिन को चलाने के लिये उपयोग किया जाता है।
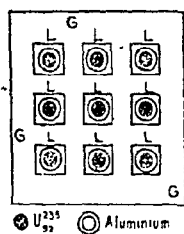
चित्र ३९

यदि u(२३८) के केन्द्र पर द्रुत न्यूट्रोन गिरता है तो उसका शोषण हो जाता है और केन्द्र u(२३९) में परिणत हो जाता है। यह नये तत्व प्लूटोनियम में परिवर्तित हो जाता है जिसका परिमाणु नम्बर है ९४ ($Pu^{२३९}_{९४}$)। यह तत्व प्रकृति में नहीं होता परन्तु यह इस प्रकार बनाया जा सकता है। यह तत्व इसलिये महत्वपूर्ण माना जाता है कि यह u२३५ की भाँति विखंडनीय है। तब यदि प्रतिकार में शुद्ध u(२३५) नहीं है परन्तु उसमें u(२३८) की भी कुछ मात्रा है तो u(२३५) के विखंडन से जो न्यूट्रोन निकलेंगे उनकी u(२३८) पर क्रिया होगी और उससे प्लूटोनियम उत्पन्न होगा। जब एक ओर u(२३५) को ईंधन की भाँति जलाया जाता है तो साथ-साथ ही नये ईंधन के रूप में प्लूटोनियम उत्पन्न होता रहता है।

थोरियम धातु है और तत्व है। इसका परमाणु नम्बर ९० है और इसका पुंज २३२ है। इस पर यदि न्यूट्रोन की किया होती है तो $Th^{२३२}_{९०}$ अन्त में $U^{२३३}_{९२}$ बन जाता है। यूरेनियम $U^{२३३}_{९२}$ का यह समस्थानीय भी विखंडनीय है और साम्यकों में इसका उपयोग किया जा सकता है। इसको प्लूटोनियम की भांति उत्पन्न किया जा सकता है। U(२३५) साम्यक में जो $Th^{२३२}_{९०}$ है उसको इसके अन्दर के न्यूट्रोनों के प्रबल प्रवाह को आगे रक्खा जाता है तब प्लूटोनियम उत्पन्न होता है। भारतवर्ष की स्थिति में यह प्रतिक्रिया विशेषतः महत्वपूर्ण है क्योंकि यद्यपि यहाँ यूरेनियम बड़ी मात्रा में नहीं मिलता है परन्तु थोरियम अमित मात्रा में है। ट्रावन्कोर के तट की "मोनेजाइट" रेत में थोरियम का बड़ा अंश है।

परमाणु प्रतिकारक (Atomic reactor) से जो लाभ हैं वे उन पुराने एंजनों में नहीं हैं जिनमें तेल या कोयला जलाया जाता है। पहिले तो ईंधन कम जलता है। ऐसे जहाज के लिए जिसमें प्रतिकारक एंजिन लगा हुआ हो यूरेनियम का केवल एक भरण साढ़े तीन वर्ष के लिये काफी होगा। इसी प्रकार जिस पावर हाउस में यूरेनियम को ईंधन की भाँति काम में लाया जाता हो उसमें बार-बार कोयला झोंकने की आवश्यकता नहीं है। जो स्थान आवागमन के साधनों से दूर हो और जहाँ कोयला आदि ईंधन आसानी से नहीं पहुँचाया जा सकता जैसे रेतीले मैदानों में, वहाँ प्रतिकारक (Reactor) विशेषतः उपयोगी हैं। परमाणु-ऊर्जा के कितने ही पावर स्टेशन संसार में जल्दी-जल्दी बनते जा रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व यह आशा नहीं थी कि ये इतनी जल्दी बन जावेंगे। ग्रेट ब्रिटेन में यह उम्मीद की जा रही है कि लगभग दस वर्ष में वहाँ खर्च होने वाली ऊर्जा की आधी से अधिक मात्रा इस प्रकार के प्रतिकारकों से मिलने लगेगी। परमाणु-ऊर्जा से चलने वाले जहाज, पंडुब्बियाँ और वायुयान भी कुछ काल में काफी प्रचलित होने वाले हैं।

**Fusion**

हम देख चुके हैं कि सूर्य और तारे अत्यन्त शीघ्र और विशाल गति से ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। पृथ्वी पर सूर्य की ऊर्जा $२.५ \times १०^{१४}$ किलोवाट के हिसाब से आती है। सूर्य के समस्त विकरण का हिसाब $५.४ \times १०^{२३}$ किलोवाट है। युगों तक लोग यह सोचते रहे कि यह अपार ऊर्जा कहाँ से उत्पन्न होती है। इतनी गर्मी निरन्तर देते रहने के कारण सूर्य शीतल क्यों नहीं हो गया। इसका कारण यह है कि जिस हिसाब से क्षति होती रहती है उसी प्रकार उसकी पूर्ति भी होती रहती है। इसका सन्तोषप्रद उत्तर है कि परमाणु-ऊर्जा तारों रूपी भट्टी में पैदा होती रहती है। ये भट्टियाँ २०,०००,०००C तापमान पर जलती रहती हैं। हम जानते हैं कि सूर्य और तारे हाइड्रोजन और हेलियम गैसों के अपार

आगार हैं। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि ये प्रोटोन, न्यूट्रोन और एल्फा कणों के अनन्त भंडार हैं। हमें ज्ञात है कि दो ग्राम न्यूट्रोन और दो ग्राम प्रोटोन मिलकर चार ग्राम हेलियम बना देते हैं और इस सम्मेलन क्रिया से ६२८००० किलोवाट घंटे ऊर्जा बन जाती है। यह पता लग चुका है कि सूर्य और तारों में सम्भवतः यह क्रिया किन अवस्थाओं में होती होगी। यह कहा जा सकता है कि सूर्य और तारों की ऊर्जा की पहेली अब हल हो चुकी है। सूर्य अनेक कोटि वर्षों से गर्मी और प्रकाश के रूप में अमित ऊर्जा का विकरण कर रहा है और इस क्रिया से उसका पुंज किंचित् घटता जा रहा है।

प्रोटोन्स और न्यूट्रोन्स की प्रतिक्रिया मिलकर एल्फा कण उत्पन्न कर सके इसके लिए आवश्यक अवस्था है २०,०००,०००C तापमान की जो सूर्य के केन्द्र में है। हम अपनी आँखों के सामने देखते हैं कि ब्रह्मांड में विश्वीय पैमाने पर पदार्थ ऊर्जा के रूप में परिणत हो रहा है और यह भी सम्भव है कि विकरण के पदार्थ रूप में परिणत होने की विपरीत क्रिया इस अपार द्यौलोक में कहीं न कहीं हो रही है।

एक रोचक सम्भवता उत्पन्न होती है। ऊर्जा उत्पन्न करने के निमित्त क्या हम इस क्रिया का अनुकरण नहीं कर सकते? क्या हम प्रोटोन्स और न्यूट्रोन्स को एल्फा कणों में विलीन करके ऊर्जा की अमित मात्रा उत्पन्न नहीं कर सकते? प्रोटोन्स और न्यूट्रोन्स यूरेनियम की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। परन्तु हम करोड़ों डिग्री का तापमान किस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं? एक सम्भव प्रतिक्रिया वह है जिसमें दो ड्यूट्रोन्स हेलियम समस्थानीय में और एक न्यूट्रोन में विलीन हो जाते हैं। $H^2{}_1 + He^2{}_1 = He^3{}_3 + n^1{}_0$। इसके लिए चालीस कोटि डिग्री तापमान की आवश्यकता है। यह हमारे वर्तमान सामर्थ्य से बाहर है। इससे अधिक आशाप्रद प्रतिक्रिया है $H^3{}_1 + H^2{}_1 = He^4_2 = n^1{}_0$। यह एक कोटि डिग्री तापमान पर हो सकता है। यह हमारे सामर्थ्य के अन्दर भी है। ऊर्जा के इस स्रोत का उपयोग करने के लिए प्रबल प्रयास किया जा रहा है। यदि इसमें सफलता हो गई तो हम ईंधन, ड्यूटिरीन और ट्रिटोन के लिए समुद्र की अनन्त जल राशि पर निर्भर हो सकते हैं। उस अवस्था में ऊर्जा उत्पत्ति का प्रश्न सदैव के लिये हल हो जावेगा।

# छठवाँ अध्याय
## जीवशास्त्र

### चिन्ताजनक भविष्य

संसार की आवादी इतनी बढ़ती जाती है कि विचारशील मनुष्यों के लिए यह चिन्ता का विषय है । संसार की वर्तमान आवादी २३० करोड़ मानी गई है । यह प्रति १० वर्ष में १७ प्रतिशत बढ़ती जाती है । यदि यह इसी प्रकार बढ़ती गई तो चक्रवृद्धि ब्याज की दर से अगले छः सौ वर्ष में इतनी हो जायगी कि एक मनुष्य के हिस्से में केवल दस वर्ग गज भूमि आवेगी । ऐसा माना गया है कि आवादी अधिक होती है तो वृद्धि भी अधिक होती है और जब वृद्धि अधिक होती है तो आवादी बढ़ती जाती है । इस विधि से मनुष्य संख्या की वृद्धि होती ही रहती है । अतः छः सौ वर्ष वाद बड़ी भयावह स्थिति हो सकती है । उस समय मनुष्यों के निर्वाहसाधनों का प्रश्न उपस्थित होगा । जिस प्रकार १३६० ई० के छः सौ वर्ष वाद वर्तमान समय आ गया उसी प्रकार अगला समय आ उपस्थित होगा । संसार के इतिहास में यह अति दीर्घ-काल नहीं माना जा सकता ।

इस निरन्तर बढ़ती हुई आवादी की दो आवश्यकतायें है । प्रथम तो विभिन्न उद्योग इस प्रकार चलते रहें कि जीवन की आवश्यकताएँ पूरी होती जावें । दूसरी वात यह है कि सैकड़ों कोटि उदरों को भरने के वास्ते पर्याप्त भोजन हो । उदर केवल मनुष्यों के ही नहीं पशुओं के भी भरने हैं । भविष्य में यह महा-प्रश्न उपस्थित होगा कि इन असंख्य उदरों की तृप्ति कैसे हो । इसलिए पशु और पौधों के जीवन का अध्ययन बहुत जरूरी है । पशुओं का निर्वाह पौधों पर ही होता है । पशु या तो केवल शाक खाता है या शाक और मांस दोनों । मनुष्यों का भी समावेश पशुओं में हो जाता है । विचार करने पर पता चलता है कि पशु भोजन भी पौधों से ही मिलता है । हमें गौ से दूध मिलता है पर गौ का निर्वाह घास से होता है । इस प्रकार हम गौ के द्वारा घास खाया करते हैं । गौ घास को मानव भोजन में परिणत करती रहती हैं । इस दृष्टि से सूअर वड़ा प्रसिद्ध पशु है । यह घास को पौष्टिक मानव भोजन में परिवर्तित कर देता है।

### जीवन के लक्षण

जीव और निर्जीव में क्या भेद है ? जीव एक स्थान से दूसरे स्थान को जाया करता है परन्तु यह वात सब जीवधारियों पर लागू नहीं होती । वृक्ष भी जीव हैं परन्तु

वह अचल है। जीवधारी को जब उत्तेजित किया जाता है तो उसमें प्रतिक्रिया या संवेदन होता है। यदि मनुष्य के पिन चुभाया जावे या उसको कुछ जलाया जावे या ठंडक पहुँचाई जावे तो उसमें प्रतिक्रिया होती है। ऐसी ही प्रतिक्रिया पौधों में भी हुआ करती है। पशुओं और पौधों में यह समान लक्षण है कि उनमें संवेदन होता है।

प्राणी भोजन को पचाता है और इससे जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसके द्वारा वह बढ़ता है और जीवन धारण करता है। मणिभ (Crystal) भी बढ़ा करता है परन्तु उसके लिये भोजन नहीं चाहिए।

पशुओं और पौधों में पाचन के लिए अपनी परिस्थिति की ओर प्रतिक्रिया होती है। वे वायु में से आक्सीजन ग्रहण करते हैं, इसके द्वारा भोजन ऊर्जा में परिणत होता है और कार्बन-डाइऑक्साइड बाहर निकलता है। यही श्वास विधि है।

पशु और पौधे कभी न कभी अपनी सन्तान उत्पन्न करते हैं। यह क्रिया आदि जीव (एमीवा) विखंडन द्वारा, पक्षी अंडे द्वारा और पौधा बीज द्वारा करता है। सन्तान केवल प्राणी ही उत्पन्न कर सकता है। ये जीव के आवश्यक लक्षण हैं।

**कोष (Cell)**

जीवधारी पदार्थ की प्राथमिक इकाई कोष है। पशु या पौधा कोषों का पुंज है। कुछ प्राणियों की रचना बिल्कुल सरल होती है परन्तु करोड़ों प्राणियों के स्वरूप बड़े जटिल होते हैं। जैसे अणुओं और परमाणुओं में पार्थक्य है उसी प्रकार जीवधारियों में भी है। प्राणमय कोष अपनी दीवार के अन्दर रहता है। और इसके मुख्य भाग केन्द्र N और परिवेष्टक द्रव, पेशीरस (Cytoplasm) हैं। दीवार का मूल भाग सेल्यूलोस (Cellulose) का बना हुआ है। पेशीरस में प्रोटोप्लाज्म (जीवरस) होता है जो कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन का बना हुआ होता है। जीवक्रिया का मुख्य स्थान केन्द्र है। जब कोष बढ़ने लगता है तो पेशीरस इसके लिए काफी नहीं होता। अतः जो स्थान खाली रह जाते हैं उनको वेक्यूओल्स (Vacuoles) कहते हैं। इसमें कोष का रस रहता है। पेशीरस (Cytoplasm) में कुछ ऐसे कण बन जाते हैं जिनमें स्टार्च (घोल) प्रोटीन और पत्तियों को हरा रंग देने वाला पदार्थ होता है।

Cytoplasm
Nucleus
Vacuoles

चित्र ४०

सरलातिसरल पशु या पौधा केवल एक कोष का बना हुआ होता है। एमीवा या आदिजीव इस प्रकार के जीवधारी का उदाहरण है। केन्द्र के विखंडन से ऐसे जीवों की संख्या बढ़ती रहती है। यह क्रिया इस प्रकार होती है कि केन्द्र के मध्य में दबाव पड़ने लगता है जिससे केन्द्र टूट जाता है और उसके दो केन्द्र बन जाते हैं। फिर परिवेष्टक पेशीरस के दो भाग हो जाते हैं और प्रत्येक भाग एक केन्द्र से लिपट जाता
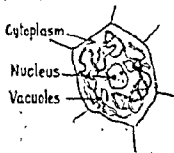
है। अन्त में सारा कोष टूट जाता है और दो कोष बन जाते हैं। कोषों के कई स्वरूप होते हैं। जैसी वे क्रिया करते हैं वैसा ही उनका स्वरूप होता है।

अधिक विकसित जीवधारियों में कोष विभाग अधिक पेचदार होता है। जब इसके एक-एक भाग को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि इनके केन्द्र में एक तन्तुवत् पदार्थ की जाली सी बनी होती है। विकास क्रिया में यह तन्तु टूट जाता है और इसके कई टुकड़े हो जाते हैं। ये बड़े ही आवश्यक हैं और केन्द्रघटक (क्रोमोसोप) कहलाते हैं। जीवधारी के वर्ग के अनुसार ये केन्द्रघटक भी जुदे-जुदे होते हैं। मानवकोष में ४८, फलमक्षिका में ८ और क्रेफिश नामक मछली में २०० जीवघटक पाये जाते हैं। प्रत्येक जीवघटक लम्बाई की ओर दो भागों में विघटित हो जाता है। दोनों भाग पेशीरस (Cytoplasm) में विपरीत दिशा में चलते हैं। जीवघटकों का प्रत्येक समुदाय मिलकर तन्तुजाल बना देता है जिससे दो केन्द्र बन जाते हैं। फिर पेशीरस प्रत्येक केन्द्र को घेर लेता है और दोनों के बीच में एक संधि (Contriction) रहता है। फिर एक कोष के दो कोष हो जाते हैं। इस क्रिया को द्विभजन या समविभाजन (Mitosis) कहते हैं।

चित्र ४१

## भूतलीय पौधों का पोषण

पौधे को अपना पोषण अपनी परिस्थिति से प्राप्त होता है। पोषण प्राप्ति के दो स्रोत हैं। वायुमंडल से कर्ब वायु (Carbon di oxide) और मिट्टी से नत्रित (Nitrates)। कर्ब वायु प्राप्त करने के लिये पौधा अपनी पत्तियों को काम में लाता है और नत्रित प्राप्ति के लिए अपनी भूमिगत जड़ों का उपयोग करता है। पौधे की रचना के मुख्य स्वरूप चित्र संख्या ४२ में देखे जा सकते हैं। इसके ऊपर पत्ते हैं, मध्य में प्रकांड (stem) है और भूमि में प्रधान मूल तथा तिर्यक मूल (lateral roots) हैं। तिर्यक मूलों पर मूलकेश हैं जो पत्थरों की सन्धियों में होकर मिट्टी में पहुंच जाते हैं। जब मिट्टी में पानी डाला जाता है तो इसके नत्रित घोल में मिल जाते हैं। मूलों पर तथा तिर्यक मूलों पर अर्द्ध भेद्य झिल्ली होती है जिसमें होकर नत्रित का घोल पौधे में प्रवेश कर सकता है परन्तु बाहर नहीं जा सकता। जिस नत्रित को पौधा आत्मसात् करता है वह प्रोटीन में परिणत हो जाता है। ये प्रोटीन पौधे में ऐसे संग्रहीत हो जाते हैं जैसे कोष या घोल में कण।
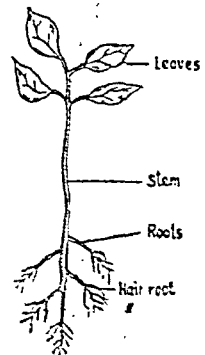
चित्र ४२

अब हम यह तलाश करें कि पौधों के प्रोटीन्स का अन्त में क्या होता है। कुछ समय बाद पौधा मर जाता है और मिट्टी में मिलकर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार पशु का शव और उसका मल भी मिट्टी में मिलकर नष्ट हो जाता है। इसको "हूमस" कहते हैं। इस 'हूमस' में नाइट्रोजन होता है। यह मिट्टी बन जाता है। यह वास्तव में एमोनियम का योग हो जाता है। यह स्वयं नाइट्रोजन और हाइड्रोजन का मिश्रण या योग ($NH_3$) है। इस अवस्था में प्रकृति का कारखाना सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा मिट्टी में अपना कार्य करने लगता है। बेक्टेरियम नाइट्रोसोमानास (Bacterium Nitrosomanas) एमोनियम के योगों को नाइट्राइट्स (Nitrites) में बदल देता है। इन नाइट्राइट्स का गुण यह है कि ये रासायनिक समूह $NO_2$ में हैं। फिर बेक्टेरियम नाइट्रोबेक्टर इन नाइट्राइट्स को नाइट्रेट्स में बदल देता है जो रासायनिक समूह $NO_3$ में हैं। उदाहरणार्थ यह अयोनियम नाइट्रेट ($NH_4$ $NH_3$) है जो जड़ों के द्वारा पौधों में रम जाता है। कुछ नाइट्रोजन वायुमण्डल से सीधा मिट्टी में जा मिलता है। यह बेक्टेरियम एज़ोटोबेक्टर (Bactarium Azotobacter) के द्वारा मिट्टी में पहुँचता है जो नाइट्रोजन को सीधा नाइट्रेट्स में परिणत कर देता है। इस भाँति मृत और नश्यमान पशुओं और पौधों का नाइट्रोजन वापिस सजीव पौधों में आ जाता है। इस प्रकार नाइट्रोजन का व्यय और पुनरुत्पादन का चक्र पूरा हो जाता है। कुछ छोटी-छोटी क्रियायें भी साथ-साथ चलती रहती हैं जो पौधों के जीवन के लिए महत्व की हैं। इनमें विशेष उल्लेख के योग्य हैं शिम्बी (Leguminous) पौधों का व्यवहार। इन पौधों में चने, मूंगफली और मटर शामिल हैं। इन पौधों की जड़ों पर गाँठें होती हैं जो बेसिलस
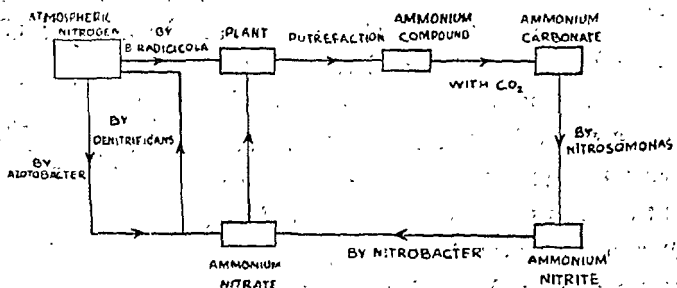
चित्र ४३

रेडिसिकोला (Becillus radiuicola) को बड़ी संख्या में कोप के पेशीरस में पहुँचा देती हैं। ये सूक्ष्म जीवाणु वायु के स्वतन्त्र नाइट्रोजन में बदल देते हैं और मिट्टी में जो सन्धियाँ होती हैं उनमें घुस जाते हैं। अन्न की खेती के पास ही शिम्बी पौधों की खेती करने से या एक बार अन्न और दूसरी बार शिम्बी पौधों की खेती करने से मिट्टी का उर्वरापन बना रहता है। यह खेती में प्रायः किया जाता है।

जब मिट्टी में नाइट्रेट्स की कमी आजाती है तो कृत्रिम खादों के द्वारा उसको पुनः उर्वरा बनाया जाता है। इनमें मुख्य खाद हैं एमोनियम सल्फेट, एमोनियम नाइट्रेट और केलशियम फोस्फेट। सिन्दड़ी जैसे खाद कारखानों में प्राकृतिक खादों की कमी पूरी करने के लिए समन्वयात्मक खाद बनाये जाते हैं।

## प्रकाश संश्लेषण और विपाक

(Photo synthesis and Metabolism)

अब हम पत्तियों की ओर ध्यान दें जो पौधों के पोषण का दूसरा साधन है।

चित्र ४४ (अ)
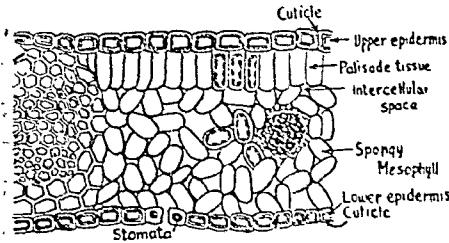
पत्ते की रचना चित्र संख्या ४४ में बतलाई गई है। इसमें नीचे की और ऊपर की स्तर का सेक्शन दिया हुआ है। पत्ते में दो त्वचायें होती हैं, एक नीचे की और दूसरी ऊपर की। इनको वाह्यत्वक (Epidermis) कहते हैं। नीचे की त्वचा में अनेक छेद होते हैं जो रन्ध्र (Stomata) कहलाते हैं। इनमें होकर जल भाप बनकर निकल जाता है और वायु में उड़ जाता है। पत्ते में दो प्रकार के पेशीसमुच्चय होते हैं—दीर्घ और विरल। इन दोनों से हरित्पेशी जाल (Mesophyll) बनता है जो ऊपर की और
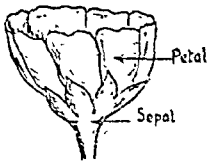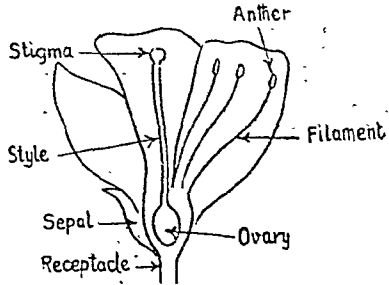
चित्र ४४ (ब)

चित्र ४४ (स)

नीचे की त्वचा को इस प्रकार ढके रहता है जैसे एक कोष का परत। पर्णरन्ध्रों (Stoma) के आस-पास रक्षक-कोष होते हैं जो भाप का नियन्त्रण करते हैं। इन्हीं में ऐसे कोष होते हैं जो हरित जीवनपिंड (Chloroplasts) कहलाते हैं। शिरायें पत्ते को काटती हैं और जल तथा नाइट्रेट के घोल आदि का ये जड़ों से वहन करती हैं।

इन्हीं से जल भी हरित पेशी जाल में पहुँच जाता है। अब पत्ते में एक विशेष क्रिया होती है जिसमें सूर्य के प्रकाश का प्रमुख भाग है। पौधा वायु में से रन्ध्रों के द्वारा कार्बनडाइओक्साइड खींचता है और मिट्टी में से पानी पत्तों तक पहुँचाता है। वहाँ सूर्य के प्रकाश की क्रिया से हरित् जीवनपिंड के अन्तर्गत जो हरित् द्रव्य होता है वह कार्बनडाइओक्साइड को कार्बोहाइड्रेट में विशेषतः घोल और शक्कर के रूप में परिणत कर देता है। इन शक्करों में ग्लूकोज है। इस प्रकार सूर्य के कृपा पूर्ण कार्य से पौधा अपना भोजन स्वयं ही तैयार कर लेता है। कार्बनसंस्थापन या प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में आक्सीजन निकलकर वायुमण्डल में चला जाता है।

अपने पोषण और वृद्धि के वास्ते पौधा स्वयं अपना भोजन तैयार करके ऊर्जा प्राप्त करता है। इस हेतु वह रन्ध्रों के द्वारा वायुमण्डल में से आक्सीजन लेता है और कुछ अपनी जड़ों से भी खींचता है। उसका भोजन अर्थात् कार्बोहाइड्रेट जिसमें ग्लूकोज सम्मिलित है, आक्सीजन की क्रिया से कार्बनडाइओक्साइड और जल बन जाते हैं और वह फिर वायुमण्डल में निकल जाते हैं। यह पौधे की श्वास क्रिया है। श्वास क्रिया के समय कुछ ऊर्जा उन्मुक्त हो जाती है। पौधा उसका अपने किसी काम में, जैसे अपनी वृद्धि में उपयोग करता है। इस प्रकार कार्बन संस्थापन और श्वासोच्छ्वास की चक्रक्रिया निरन्तर चलती रहती हैं। यों कह सकते हैं कि इनका चक्र घूमता रहता है। पौधा कार्बोहाइड्रेट और प्रोटोन्स अपने पोषण के लिये तैयार करता है। इनमें से अधिकांश उसके काम में आते हैं और कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पशुओं के काम आते हैं।

**पौधों में पुनरुत्पत्ति**

अपने वृद्धिकाल में पौधे में पुष्प आते हैं। पुष्प की रचना चित्र संख्या ४५ में दिखाई गई है। यह रचना प्रायः सब पुष्पों पर लागू हो सकती है। पुष्प का वाह्य भाग पंखुड़ियों का होता है जो सबसे अधिक सुन्दर होता है। इन पंखुड़ियों के आधार हरे दल होते हैं। पुष्प के अन्दर के भाग में पुष्प की नारी रचना है अर्थात् बीजाशय (Ovary), गर्भदण्ड (Style) और रजकोष (Stigma)। किसी-किसी पुष्प में साथ ही नर
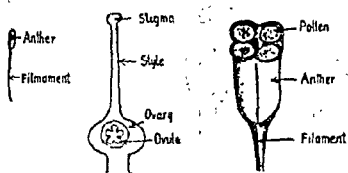
चित्र ४५

रचना भी होती है। इसमें पराग और बीजकोष (Filament & anther) होता है। कुछ पौधों के कुछ पुष्पों में नारी रचना होती है और कुछ में नर रचना अर्थात् कुछ में पुंकोष होता है और किसी में गर्भपत्र। बीजकोष में रजकण के कोष

होते हैं जिनमें पीत परागकण भरा रहता है। इसके रजधारकों में नरकोष या जनन कोष रहते हैं। परागरज का वहन वायु या कीटों द्वारा होता है और इनमें से कुछ गर्भ के रजकोष पर स्थापित हो जाते हैं। तब परागसिंचन या पराग योग होता है। यह पराग कण बढ़कर नाली का सा आकार धारण कर लेता है और गर्भदण्ड की ओर सरकता है। जब यह बीजाशय के अंडे तक पहुँच जाता है तो यह फट जाता है। इससे अंडे में गर्भाधान हो जाता है और नये पौधे का जीवन शुरू हो जाता है। बीजकण (Ovule) में कोष का विभाजन हो जाता है। फिर यह भी बढ़ता है और पेशीजाल में नया पौधा बनने लग जाता है। यह बीज है जो गर्भपत्र में चला जाता है। इससे फल बनता है।

**बीज**

बीज की रचना जैसी चित्र संख्या ४६ में दिखाई गई है प्रायः वैसी होती है। यह त्वचा में बन्द रहता है जिसको बीजावरण (Testa) कहते हैं। जब यह आवरण हटा दिया जाता है और बीज को निकाला जाता है तो दो दल (*Cotyledons*) दिखाई देते हैं इनमें भ्रूण मुकुल (*Plumula*) और मूलांकुर की अन्तर्रचना होती है। जब गीली मिट्टी में जमाया जाता है तो बीज में अंकुर उत्पन्न होने लगता है। उसका आवरण फट जाता है। मूलांकुर का आकार बढ़ने लगता है और नीचे की ओर मिट्टी में प्रवेश करता है जहाँ उसका मूल संघ बनने लगता है। भ्रूण मुकुल (Plumule) बढ़कर प्रांकुर बनने लगता है और इसमें पत्तियाँ तथा कांड बन जाते हैं। जब तक सूर्य में प्रकाश है और पृथ्वी स्थित है तब तक जीव का यह चक्रक्रम चलता रहेगा। यदि कभी भौतिक परिस्थिति में कुछ परिवर्तन हो जाये, अर्थात् तापमान अत्यन्त बढ़ जाये या घट जाये या वायुमण्डल में आक्सीजन या नाइट्रोजन अत्यधिक या अत्यल्प हो जाये या भाप बनना बन्द हो जाये तो पौधों के जीवन चक्र में सन्तुलन नहीं रहेगा, गड़बड़ हो जावेगी।

Plumule
Cotyledon
Radicle
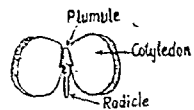
चित्र ४६

**मानव शरीर का पोषण**

पशुजीवन की वृद्धि, पुनरुत्पत्ति और विनिष्टि का अध्ययन अत्यन्त रोचक है। पशु 'एमीबा' से आरम्भ होता है और विकास होते-होते यह दूध पिलाने वाला बड़ा पशु बन गया है। पशुओं के अनेक भेद प्रभेद हैं परन्तु यहाँ हम केवल मनुष्य का अध्ययन करेंगे। मनुष्य भी पशु है। पौधों की भाँति मनुष्य के शरीर में उसका पोषण उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य पौधों से और पशुओं से पोषण प्राप्त करता है। मानव भोजन में प्रधान तत्व कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन्स और वसा होती है। इनके तिअरिक्त कुछ विटेमिन और खनिजों की आवश्यकता होती है। कार्बोहाइड्रेट कई

रूपों में मिलते हैं। इनमें शक्कर, घोल और पेशीघटक द्रव्य होते हैं। शक्कर फल, गन्ना आदि में होती है, घोल गेहूँ, चावल और मक्का आदि अन्नों से और आलू आदि शाकों से मिलता है तथा पेशीघटक द्रव्य, पौधों की जड़ों और प्रकाण्डों से प्राप्त होता है। प्रोटीन के अच्छे स्रोत हैं दूध, मांस, अंडे, मछली, चना, मटर आदि। वसा वनस्पति या प्राणियों के तेल से मिलती है। मछली के यकृत से, मक्खन से और पशुओं की चर्बी से यह ली जाती है।

पोषण क्रिया को बल देने के लिए और उसमें सन्तुलन रखने के लिए विटेमिन बहुत आवश्यक हैं। यदि भोजन में विटेमिन A न हो तो शरीर का विकास दूषित होता है। दाँत और अस्थियाँ ठीक नहीं बनती। इसकी कमी पूरी करने लिये मछली के यकृत से, हरी पत्तियों से और अन्डे आदि से विटेमिन A लिया जाता है। विटेमिन B की कमी से बेरीबेरी और कुछ चर्म रोग हो जाते हैं। विटेमिन B गेहूँ, टमाटर, अन्डे और खमीर से मिलता है। विटेमिन C के अभाव से निर्बलता होती है, मसोड़े फूल जाते हैं और फोड़े होते हैं। अन्य कई रोग हो जाते हैं। यह विटेमिन हरी पत्तियों से और नारंगी, नीबू आदि फलों से मिलता है और रासायनिक ढङ्ग से भी तैयार किया जाता है। शरीर में विटेमिन C से ही विपाक क्रियायें होती है। इससे ही आन्तरपेशीय श्वास और विपाक की व्यवस्था होती है और रक्त तत्वों की पुष्टि होती है। रोग संक्रमण और मद्यदोष से भी यह रक्षा करता है। रासायनिक दृष्टि से यह विटामिन (Ascorbic acid) एसकार्बिक एसिड है और यह बड़ी मात्रा में तैयार किया जाता है। विटेमिन की कमी से बच्चों को सूखे रोग आदि व्याधियाँ होती हैं। यह विटेमिन दूध, मक्खन, मछली के यकृत, तेल आदि में होता है। मानव शरीर के स्वस्थ विकास के वास्ते कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन्स, वसा, विटेमिन और खनिजों के संतुलित भोजन की आवश्यकता है। दैनिक औसत भोजन में १०० ग्राम प्रोटीन्स, ६०० ग्राम कार्बोहाइड्रेट और १०० गाम वसा होनी चाहिये और इसमें विटेमिन तथा खनिजों की आवश्यक मात्रा होनी चाहिये।

**पाचन और विपाक**

अब हम देखें कि जो कुछ हम खाते हैं उसका क्या होता है। मानव शरीर एक प्रकार का रासायनिक कारखाना है! पाचन क्रिया के समय इसमें विविध अनुकूल अवसरों पर भोजन में विविध रासायनिक मिलते रहते हैं। इन रासायनिक क्रियाओं के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता हुआ करती है वे एंज़िम (Enzemes) हैं। ये पशु और पौधे दोनों में उत्पन्न होते हैं। जब चर्वित भोजन मुख के अन्दर थूक से मिलता है तो उस पर एंजिम टाइलिन (Enzyme Ptyalin) की क्रिया होने लगती है जो पाचक रस है और जो थूक में विद्यमान है।

यहां घोल टूट-टूटकर सरल भोजन हो जाता है। घोल (Staroh) प्रायः अन्य घोल में मिलता नहीं है परन्तु इस क्रिया से वह घुलने वाली शक्कर में परिवर्तित हो जाता है। तब भोजन कंठनालिका में होकर उदर की थैली में पहुंच जाता है। यहां वह गाढ़ा द्रव बन जाता है। उदर की दीवार पर अन्दर की ओर ऐसी ग्रन्थियां (Glands) होती हैं जिनमें पाचक रस होता है। इस रस में हाइड्रोक्लोरिक (लवणात्म) एसिड और दो प्रकार के एन्जिम होते हैं जो पेप्सिन और रेन्निन कहलाते हैं। एन्जिम की क्रिया में एसिड से सहायता मिलती है। पेप्सिन प्रोटीन्स के विघटन की प्रथम क्रिया करता है। इससे प्रोटीन्स ऐसी वस्तुओं में परिवर्तित हो जाते हैं जिनमें नाइट्रोजन भरा रहता है। इन वस्तुओं को पेप्टोन्स (Peptones) कहते हैं। भोजन में जो दूध की मात्रा होती है वह रेन्निन से घनी भूत हो जाती है। उदर में कार्बोहाइड्रेट्स और वसा पर कोई क्रिया नहीं होती।
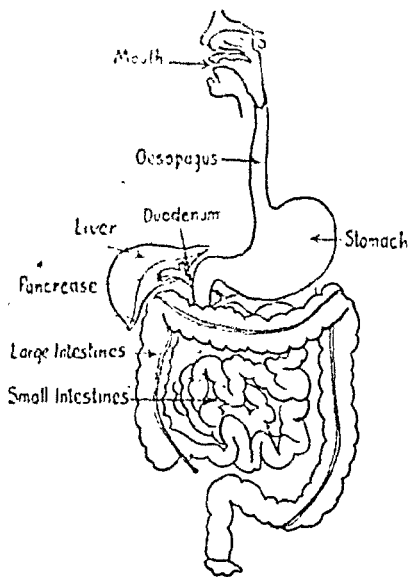
चित्र ४७

उदर में चार पांच घंटे टिकने के बाद भोजन का गाढ़ा द्रव बन जाता है और ग्रहणी (Duodenum) में चला जाता है। पास के क्लोम (Pancreas) से ग्रहणी में क्लोमरस पहुँचता है जिसमें तीन प्रकार के एन्जिम्स होते हैं—ऐमी लोप्सिन, ट्राइपसिन और स्टीपसिन। एमीलोप्सिन पुनः घोल को घुंलने वाली शक्कर के रूप में बदल देती है। ट्राइपसिन के द्वारा प्रोटीन-रूपान्तर क्रिया और आगे बढ़ती है और पेप्टोन्स और भी सरल नाइट्रोजन वाहक योगिकों में बदल जाते हैं। इनको एमिनो एसिड (Amino-Acids) कहते हैं। स्टापसिन की क्रियाएँ वसा पर होती हैं और वे आसानी से घुलने वाली वस्तुएँ बन जाती हैं। इसके बाद भोजन छोटी आंतों में पहुँचता है जो छब्बीस फुट लम्बी हैं। यहाँ एन्जिम इरेप्सिन के द्वारा जटिल शक्करें साधारण शक्करें बन जाती हैं। इसके बाद वे कार्बोहाइड्रेट में परिणत हो जाती हैं। छोटी आंतों में भोजन लगभग चार घंटे तक ठहरता है। पचित भोजन अन्त्रियों की दीवारों में होकर रक्त

धारा में चला जाता है। शेष भोजन बड़ी आंतों में पहुँच जाता है जहाँ वह चौबीस घण्टे तक टिकता है। तत्पश्चात् मल त्याग होता है।

रक्त में दो प्रकार के कोष्ट होते हैं—लोहित रक्त कनिकायें और श्वेत रक्त कनिकायें (Red Blood Corpusoles and white blood Corpuscles) मानवशरीर में ऊर्जा उत्पन्न करने में ये सदैव क्रियाशील रहते हैं। इनमें हेमोग्लोबीन (hemoglo-

चित्र ४८
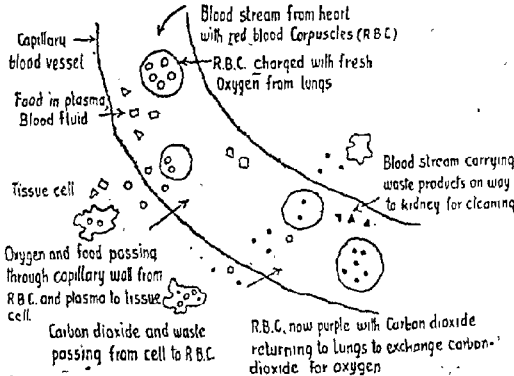
bin) नामक वस्तु होती है जो आक्सीजन को अन्तर्लीन करती है। हम श्वास लेते समय आक्सीजन को अन्दर लेते हैं। हेमोग्लोबीन का इस प्रकार आक्सीकरण हो जाता है और वे आक्सी-हेमोग्लोबीन आक्सीहेमोग्लोबीन बन जाते हैं। छोटी आंतों में पाचन होने के बाद जो भोजन उनकी दीवारों के रक्त वाहिनी नलियों के द्वारा रक्त में चला जाता है। उसको प्लाज्मा (Plasma) अर्थात् रक्त रस ले जाता है। फिर रक्तरस और लोहित रक्तकनिकाओं से आक्सीजन और भोजन दीवारों में होकर पुनः निकल जाते हैं और चारों ओर के पेशीजाल को पुष्ट करते हैं। यहाँ आक्सीजन और भोजन काम में आ जाते हैं। वर्ज्य पदार्थ (waste product) और कार्बनडाइओक्साइड रक्त धारा में तथा लोहित रक्तकनिकाओं में वापिस चले जाते हैं। तब ये लोहित रक्त कनिकायें सुर्ख होती हैं। फिर यह फेफड़ों में वापिस चला जाता है। वहाँ से कार्बनडाइओक्साइड निकल जाता है और ताजा आक्सीजन इसमें मिल जाता है। वर्ज्य पदार्थ रक्त धारा में प्रवेश करते हैं और अन्त में गुर्दे उनको बाहर निकाल देते हैं।

भोजन के द्वारा ऊर्जा उत्पन्न करने की महत्वपूर्ण क्रिया होती है। इस ऊर्जा के द्वारा मानव शरीर विविध प्रकार का कार्य करता है। छोटी आंतों में जो ग्लूकोज बनता है वह यकृत में चला जाता है। वहाँ जाकर वह ग्लाइकोजेन (Glycogen) में

परिणत हो जाता है। मानव शरीर का कार्य मांस पेशियों द्वारा होता है। हमारे शरीर में लगभग ५०० मांस पेशियाँ हैं जो हमारे सारे वजन का $\frac{3}{5}$ भाग है। माँस पेशियों के संकोच में यकृत का ग्लाइकोजेन पुनः बदल कर ग्लूकोज हो जाता है और फेफड़ों के आक्सीजन से मिल कर यह ऊर्जा उत्पन्न करता है जिससे मांस पेशियों का संकोचन होता है।
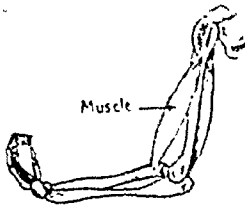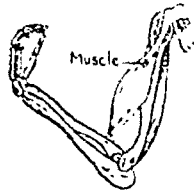
चित्र ४६ (अ) चित्र ४६ (ब)

पुनरुत्पत्ति

हम देख चुके है कि जब कोषों का विभाजन होता है तो प्रत्येक केन्द्र घटक दो भागों में विभाजित हो जाता है और इस भाँति नये कोषों में केन्द्र घटकों की संख्या पूर्ववत बनी रहती है। परन्तु स्त्री और पुरुष के कीटाणु कोषों का व्यवहार अन्य कोषों से भिन्न होता है। स्त्री और पुरुष के कीटाणु कोषों के संयोग से गर्भाधान होता है। कीटाणु कोष पूर्ण व्यवस्था में पहुँचने के ठीक पहले ही केन्द्र घटकों की संख्या आधी रह जाती है जिससे संयोग के बाद वप्तडिम्बाणु (Fertilised ovum) में केन्द्र घटकों की संख्या उतनी ही हो जाती है जितनी होनी चाहिए तब नया व्यक्ति उत्पन्न होता है और जन्मजरामरण का चक्र शुरू हो जाता है। एक व्यक्ति समाप्त हो जाता है और दूसरा व्यक्ति उसका स्थान ले लेता है। इस प्रकार जीवन प्रवाह अनविच्छिन्न रूप से चलता रहता है।

# प्रश्न

## भाग १

१—मानव सभ्यता को प्राचीन मिस्र की क्या देन है ?

२—ईराक में उदय होने वाली प्राचीन सभ्यताओं ने विद्या, लिपि और नगरनिर्माण में क्या उन्नति की थी ?

३—यूनान की संस्कृति का वर्णन करो और बतलाओ कि इसका कहाँ-कहाँ और किस प्रकार प्रचार हुआ ?

४—संस्कृति के क्षेत्र में चीन ने क्या प्रगति की थी ?

५—ईसाई धर्म ने मानव जीवन को कितना उन्नत किया ?

६—इस्लाम के उदय का संसार की तत्कालीन सभ्यताओं पर क्या प्रभाव पड़ा ?

७—प्राचीनकाल के औद्योगिक संगठन का संक्षिप्त वर्णन करो।

८—किसी साहित्यिक कृति को परखने के लिये किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये।

९—वैदिक धर्म की रूपरेखा देकर बतलाओ कि उसके कौन से तत्व वर्तमान हिन्दू धर्म में विद्यमान हैं।

१०—भारतवर्ष पर विजय प्राप्त करने में मुसलमानों को लम्बा समय क्यों लगा ?

११—अशोक और अकबर की धार्मिक नीति का तुलनात्मक विवेचन करो।

१२—हिन्दू और मुगल काल की चार प्रसिद्ध इमारतों के विषय में अपने विचार प्रकट करो।

१३—मुगल सभ्यता का हिन्दू सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ा ?

१४—हिन्दू धर्म और इस्लाम के पारस्परिक सम्पर्क से क्या नवीन विचार धारायें उत्पन्न हुई

## QUESTIONS

### PART II

1. Describe the solar system. Give some accounts of its origin.
2. Describe the various stages in the evolution of stars.
3. Give an account of the universe as a collection of stars and nebulae.
4. What are the principal factors responsible for mountain building ?
5. What are earthquakes ? How do they originate ? what information can be obtained from a study of earthquakes ?
6. Give an account of the interior of the earth.
7. Explain (i) Inertia; (ii) force, (iii) work, (iv) power.
8. How does a body fall freely ? Whichwill faster to the ground from the same height, a stone of 10 lbs weight or one of 100 lbs ?
9. Give an account of gravitation. How does this account for the fall of bodies under gravity ?
10. Why does a stone thrown vertically upwards reach a certian height only, and why does it fall back ?
11. Give an account of some of the common forms of energy.
12. Explain the principles of conservation and transformation of energy.
13. Give some useful examples of transformation of energy.
14. What are waves ? Explain the action or a wave as a carrier of energy.
15. Describe some common forms of waves.
16. Give an account of the spectrum.
17. What are atoms and molecules ?
18. How are the following molecules built up ? (i) Crystals, (ii) mineral oils, and (iii) sugars.
19. How are the following important : (i) Fats; (ii) Carbohydrates and (iii) Proteins ? Describe their molecules.
20. Give an account of coal and its products.
21. Explain; (i) Electron, (iii) proton,and (iv) neutron.
22. Describe the structure of an atom, taking as examples hydrogen. oxygen, and uranium. The atomic numbers

and weights of these respectively are : 1 and 1.8 and 16; 92 and 238.

23. Give an account of the fission of uranium, and describe an atomic reactor.
24. What is fusion ? What are the future prospects of our power resources ?
25. How are the problems of growing population, food and power, ofimportance in the future of mankind ?
26. *What is life ?*
27. Describe the cell as the ultimate unit of a living organism.
28. Give an account of plant nutrition.
29. Describe the nitrogen cycle in plant life.
30. What are fertilisers ? Describe some natural and synthetic fertilisers.
31. What is the role of sunlight in plant life ? Describe photosynthesis.
32. Describe the cycle of plant life from seed to plant, and back to seed.
33. What is diet ? What are the common constituents of food ?
34. Describe the digestive process in the human system.
35. How does the human body derive energy from food ?

## FIRST YEAR EXAMINATION
### of the
## THREE YEAR DEGREE COURSE,
### (*Faculty of Arts & Science & Com.*)
## COMPULSORY GENERAL EDUCATION
### 1959

### SECTION A—NATURAL SCIENCES

1. Explain the theories of the evolution of the earth. What is earth's place in the universe?

पृथ्वी की उत्पत्ति के सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिये। विश्व में पृथ्वी का स्थान क्या है?

2. What are earthquakes? What information do they supply about the interior of the earth? What were some of the destructive Indian earthquakes of the present century?

भूकम्प क्या है? इनसे पृथ्वी के अभ्यन्तर के सम्बन्ध में क्या सूचना मिलती है? वर्तमान शताब्दि के कौन-से प्रमुख विनाशकारी भूकम्प हिन्दुस्तान में हुए हैं?

3. Describe the principal sources of energy and power in the world with special reference to the future outlook and the role of atomic energy. Describe an atomic reactor.

भावी दृष्टिकोण तथा परमाणु शक्ति की स्थिति को ध्यान में रखते हुए शक्ति के मुख्य साधनों का वर्णन कीजिये। एक परमाणु रीएक्टर का वर्णन कीजिये।

4. What are (i) atoms. (ii) electrons, (iii) protons, and (iv) neutrons? Describe the structure of an atom taking helium as an example. Are all atoms stable?

(i) परमाणु, (ii) विद्युताणु (iii) प्राणु तथा (iv) कलीवाणु क्या हैं? हीलयम के परमाणु को ध्यान में रखते हुए परमाणुओं की बनावट को समझाइये। क्या सब परमाणु स्थिर हैं?

5. Describe how a plant manufactures and uses its own food. In what sense is the Sun the sustainer of all life on the earth?

समझाइये कि पौधे अपने स्वयं के भोजन को कैसे निर्माण करते हैं, और काम में लाते हैं। सूर्य किस अर्थ में सब प्रकार के जीवन का आधार है?

6. Describe how the human system digests food and converts it into energy.

समझाइये कि मनुष्य शरीर भोजन को कैसे पचाता है और कैसे उसको शक्ति में परिवर्तन करता है।

## SECTION B—SOCIAL SCIENCES

. Describe the salient features of ancient Greco-Roman civisation.

प्राचीन यूनानी-रोमन सभ्यता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

. Describe the main features of organisations in the fields of trae and industry during the medieval period.

मध्यकालीन उद्योग तथा व्यवसाय सम्बन्धी संस्थाओं के विशेष लक्षणों की व्याख्या कीजिये।

9. 'Each individual is the maker as well as the product of society.' Discuss the statement.

"प्रत्येक व्यक्ति समाज का निर्माता है और समाज की उपज भी।" इस कथन की व्याख्या कीजिये।

Write a note on the evolution of nationalism.

राष्ट्रवाद के प्रादुर्भाव (evolution) के सम्बन्ध में एक टिप्पणी लिखिये।

10. Give an account of the social and religious conditions and the position of women in Aryan society in ancient India.

प्राचीनकालीन भारत के आर्यों की सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति तथा उनके समाज में महिलाओं के स्थान का वर्णन कीजिये।

11. Trace the growth of a composite Indian culture.

मिलीजुली (composite) भारतीय संस्कृति के उदय का दिग्दर्शन कराइए।

What have been the main contributions of Indians in the fields of literature and fine arts during the Mughal period ?

मुग़लकाल में साहित्य तथा ललित कला के क्षेत्रों में भारतीयों की मुख्य देन क्या रही है ?

12. Describe the main features of the Indian nationalist movement from 1857 to 1947.

सन् १८५७ से १९४७ तक के भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

## 1960

## SECTION A—(NATURAL SCIENCES)

1. Give a brief account of the various theories regarding the estimation of the Age of the Earth.

पृथ्वी की आयु से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विचारों का विश्लेषण कीजिये।

2. Write short notes on :—

(a) Force. (b) Kilowatt hour unit. (c) Horse-power (H.P.)

बल, किलोवॉट-ग्रवर तथा हॉर्स-पावर पर टिप्पणियाँ लिखिये ।

3. Write an essay on the various uses of atomic energy.

परमाणु शक्ति के विभिन्न उपयोगों पर लेख लिखिये ।

4. Why is Carbon considered to be Unique ?

कार्बन को विलक्षण तत्व क्यों माना जाता है ?

5. State clearly the differences between the living and the non-living.

सजीव और निर्जीव के भेद अच्छी तरह समझाइये ।

6. What is Reproduction ? Describe briefly the various methods of Reproduction.

प्रजनन किसे कहते हैं ? उसकी विभिन्न विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिये ।

SECTION B—(SOCIAL SCIENCES)

7. Describe the salient features of ancient European Civilisation.

प्राचीन यूरोपीय संस्कृति की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

8. Bring out clearly the fundamental unity of basic principles of all great religions.

सब महान धर्मों के मुख्य तत्वों की मूलभूत एकता स्पष्टतया समझाइये ।

9. Discuss the evolution of nationalism.

राष्ट्रवाद के प्रादुर्भाव (evolution) की व्याख्या कीजिये ।

10. Point out some outstanding achievements of the classical Indian civilisation.

प्राचीन (classical) भारतीय संस्कृति के कुछ प्रमुख कार्य-कलाप बतलाइये ।

What were the main causes of disintegration of Mughal Empire in India ?

भारत में मुगल साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने के क्या प्रमुख कारण थे ?

11. Evaluate the contribution of British Administration to India's cultural and material advancement.

भारत की सांस्कृतिक व भौतिक प्रगति में ब्रिटिश प्रशासन की देन का मूल्यांकन कीजिये ।

12. Write short notes on any three of the following :—

(a) Rig Veda. (b) Tulsi (c) Industrial decline in India (d) Raja Ram Mohan Roy (e) Rajasthani Painting.

निम्नलिखित में से किन्हीं तीन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :—

(a) ऋग्वेद (b) तुलसीदास (c) भारत की औद्योगिक अवनति (d) राजा राममोहन राय (e) राजस्थानी चित्रकला ।

❋❋❋❋